



भारत की प्राणी विविधता



विश्व के 12 ऐसे देशों में जहाँ पर सर्वाधिक जीव विविधता पाई जाती है, भारत का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय जलवायु तथा पारितन्त्र के विभिन्न आयामों में हिमालय के बर्फीले क्षेत्र, थार का गर्म मरुस्थल तथा लद्दाख का ठण्डा मरुस्थल, गंगा-यमुना के मैदानी क्षेत्र, सुन्दरबन का मेंग्रोव वन, दक्खिन का पठार, दक्षिण तथा उत्तर पूर्व के उष्णकटिबंधीय वर्षा वन तथा अंडमान, निकोबार और लक्षद्वीप के द्वीप समूह हैं। इन सभी में विभिन्न प्रकार के प्राणी और वनस्पतियाँ मिलती हैं।

भारत के प्राणियों की विविधता का सही आकलन हाल के वर्षों में ही सम्भव हुआ है। प्रोटोजोआ के सूक्ष्म प्राणियों से लेकर कृमि, शंख, कीड़े-मकोड़े, मछलियों, पक्षियों तथा स्तनधारी जन्तुओं के कितने कुल, वंश तथा जातियाँ भारत में पाई जाती हैं, ऐसा विवरण इस पुस्तक में पहली बार उपलब्ध हुआ है।

भारत की प्राणी विविधता कितनी समृद्ध है, इसका पता कई लेखों से स्पष्ट होता है। कई प्राणियों का आर्थिक महत्व ज्ञात है तथा कई अन्य का, जैसे सामुद्रिक जीवों का औषधि विज्ञान में, अभी पूर्ण विश्लेषण होना बाकी है। इन सभी की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में की गई है। लेखों को तीन भागों में संकलित किया गया है: विषय प्रवेश, प्राणी वर्ग विविधता तथा पारिस्थितिकी विविधता। कई लेखों के साथ बहुमूल्य वैज्ञानिक आँकड़े तथा सारणी दी गई हैं। रंगीन तथा श्वेत-श्याम चित्रों तथा कुछ मानचित्रों से पुस्तक को सजाया गया है।

भारत की स्वतन्त्रता के पचासवें वर्ष में यह एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

भारत की प्राणी विविधता

भारत की प्राणी विविधता

भारत की स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ के उपलक्ष में प्रकाशित

संकलन

राजेन्द्र कुमार वाष्णोय
जे. आर. बी. अल्फ्रेड

सम्पादन

निदेशक

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण



सत्यमेव जयते

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार

एम-ब्लॉक, न्यू अलीपुर, कलकत्ता

1997

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना अथवा इलेक्ट्रानिकी, मशीनी, फोटो प्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की विक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय, या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

ISBN 81-85874-01-8

जुलाई, 1998 में प्रकाशित

© भारत सरकार, 1998

BHARAT KI PRANI VIVIDHTA (HINDI)

मूल्य : रु. 400.00

\$ 30 या £ 20

निदेशक, भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, एम-ब्लाक, न्यू अलीपुर, कलकत्ता-700 053 द्वारा प्रकाशित

कलकत्ता लेसर ग्राफिक्स प्राईवेट लिमिटेड, 71, हरि घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-700 006 द्वारा लेसर कम्पोज होकर प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय (PLU), फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।

आमुख

भारत एक विशाल देश है और इसके विभिन्न भागों में एक से एक विविध पारिस्थितिकी के क्षेत्र हैं—हिमालय की बर्फ से ढकी चोटियां, लद्दाख का ठण्डा मरुस्थल, राजस्थान और गुजरात का गर्म (थार) मरुस्थल, उष्ण-कटिबंधीय वर्षा-वनों के पश्चिमी घाट तथा उत्तर-पूर्वी भारत के क्षेत्र, गंगा-यमुना के मैदान, दक्षिण का पठार, अण्डमान निकोबार तथा लक्षद्वीप समूहों के द्वीप आदि। इनके अतिरिक्त हमारे यहाँ कई खाड़ियाँ तथा लम्बा समुद्री पर्यावरण भी है। इन विभिन्न पारिस्थितिकी क्षेत्रों में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु तथा पेड़-पौधे पाये जाते हैं जो भारत की जैव-विविधता (बायो-डाइवर्सिटी) की उपलब्धता में विशेष स्थान प्रदान करते हैं। विश्व के बारह (12) महाविविधता (मेगा-डाइवर्सिटी) देशों में से भारत एक है और यहाँ पर जैव-विविधता के दो चरम बिन्दु (हॉट-स्पॉट) हैं। ये दो क्षेत्र हैं—पूर्वी हिमालय के क्षेत्र तथा पश्चिमी घाट के वर्षा-वन।

इन जीव-जन्तुओं का लेखा-जोखा रखना हमारे लिए महत्वपूर्ण है। भारतीय प्राणि सर्वेक्षण (जुलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया) ने भारतीय प्राणि सम्पदा का विगत 80 वर्षों से व्यापक अभ्युद्यन किया है। यह प्रसन्नता की बात है कि अब इस संस्थान के वैज्ञानिकों ने यह सचित्र पुस्तक “भारत की प्राणी विविधता” का संकलन किया है। पुस्तक में दिए गए वैज्ञानिक आंकड़ों से तथा विकास से हमारे देश की प्राणी-समृद्धता का पता चलता है। विभिन्न प्राणि वर्गों, जातियों तथा पारिस्थितिकी का विवरण एक स्थान पर ही उपलब्ध होने से इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। भारतीय प्राणि सर्वेक्षण का यह कार्य देश को यहाँ पाये जाने वाले पशु-पक्षियों तथा अन्य प्राणियों का ज्ञान प्रदान कर विभिन्न उद्देश्यों और कार्यक्रमों की पूर्ति में महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है। इसी ज्ञानवर्धन की शृंखला में स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर इस सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने इस सचित्र पुस्तक का संकलन किया है।

मैं भारतीय प्राणि सर्वेक्षण के निदेशक तथा सभी कर्मियों को हार्दिक बधाई देता हूँ कि उन्होंने हिन्दी में अनेक विषय की जानकारी उपलब्ध कराई है। इससे देश के सभी पाठकों को लाभ होगा, ऐसी मेरी आशा है।

अगस्त, 1997
नई दिल्ली

विश्व नाथ आनन्द
सचिव
पर्यावरण तथा वन मंत्रालय
भारत सरकार

प्रस्तावना

सन 1992 में रियो-डि-जेनरो (ब्राजील) में सम्पन्न हुए पृथ्वी सम्मेलन के पश्चात पर्यावरण के एक महत्वपूर्ण विषय जैव-विविधता पर सब लोगों का ध्यान गया है और जीव-जन्तुओं तथा इनके आवासों को संरक्षित रखने पर सहमति के नये निश्चय सामने आए हैं। अब सभी देशों की नजरें ऐसे कुछ एक देशों पर लगी हैं जो कि आर्थिक रूप से तो गरीब हैं परन्तु प्राकृतिक जैव सम्पदा में बहुत धनी हैं। ऐसे इंडोनेशिया, मलयेशिया आदि बारह राष्ट्रों में से भारत भी एक है। अतएव यह समयोचित है कि भारत के लोग अपनी प्राकृतिक सम्पदा का वैज्ञानिक ढंग से आकलन करें। भारत की प्राणी विविधता पर वर्तमान पुस्तक अपने ढंग की संभवतः पहली है, जिसमें प्रमाणित तथ्यों तथा आँकड़ों को हिन्दी में प्रस्तुत किया गया है। एक ही स्थान पर इतने जटिल विषय की काफी सामग्री एकात्रित हो गई, यह पाठकों के लिये निश्चय ही सहूलियत का कार्य सिद्ध होगा।

इस पुस्तक के सभी लेख भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के कलकत्ता या अन्य स्थानों पर कार्यरत वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किये गये हैं। यह संस्थान पिछले 80 से अधिक वर्षों से देश की प्राणी सम्पदा की खोज तथा उनपर वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा पुस्तकें प्रकाशित करता रहा है। अपने सर्वेक्षण कार्यक्रम में जहाँ थोड़ा-बहुत कार्य तो देश के सभी भागों में हुआ है, वहाँ राजस्थान, उड़ीसा, अन्डमान-निकोबार, पश्चिम बंगाल, लक्षद्वीप, मेघालय तथा दिल्ली राज्यों के प्राणियों पर विशिष्ट ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। सभी वर्गों के प्राणियों का सर्वेक्षण, संग्रह, परिरक्षण और उनके वंश तथा जाति की सही पहचान तथा वर्गीकरण एक कठिन कार्य है, जिसमें इस विभाग के वैज्ञानिक लगातार लगे हुए हैं।

प्राणियों की बहुत सी जातियों का उनके शरीर या उनके उत्पादनों के कारण आर्थिक महत्व है। इसलिये मानव सभ्यता के विकास के साथ ही बहुत से जीव-जन्तु भोजन, वस्त्र, रसायन, औषधि तथा सजावट आदि के लिये प्रयुक्त होते रहे हैं। किन्तु मनुष्य की बढ़ती हुई निष्पत्ता के कारण हाथीदाँत, गेंडे के सींग, सर्प-अजगर-घाड़ियाल आदि की खाल, कस्तूरी, बाघ की

हड्डियाँ आदि दुरुपयोगों और अनेक सुन्दर चिड़ियों और तितलियों के लिये उनका दिन रात संहार चल रहा है। अस्त्र-शस्त्रों से और रासायनिक पदार्थों से निरीह प्राणी लगातार मर रहे हैं और उनकी जातियाँ संकटापन्न स्थिति में आ गयी हैं। जंगलों का सफाया हो रहा है मिल, फैक्ट्री, व्यवसाय और विकास के नाम पर। जलीय क्षेत्रों में प्रदूषण बराबर बढ़ता ही जा रहा है। जब उनका प्राकृतिक आवास ही नष्ट हो जाएगा तो ये प्राणी कहाँ रहेंगे और क्या खाएँगे? प्रति वर्ष प्राणियों की कितनी जातियाँ हम हमेशा के लिये खो रहे हैं, कोई ठीक तरह नहीं जानता है। पर यह दुष्चक्र बराबर चल रहा है। आज के समय भी बहुत से समुद्री प्राणी जो पहले किसी काम के नहीं समझे जाते थे, अब गम्भीर बीमारियों की औषधियों के लिये देश-विदेश में प्रायोगिक तौर पर इकट्ठे किये जा रहे हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में जैविक सम्पदा का आज अत्यधिक दोहन हो रहा है। इसलिये हमारे देश के लिये अपनी जैव विविधता का आकलन करना तथा उसका संरक्षण करना एक बहुत बड़ी आवश्यकता है।

भारत में पाये जाने वाले विविध प्राणियों और वनस्पतियों का क्या मूल्य है? क्या हम विदेशी फर्मों को अपनी प्राकृतिक धरोहरों जैसे नीम, हल्दी, तुलसी या रेशम के कीड़ों आदि का उनके विशेष गुणों के लिये पेटेन्ट बना लेने देंगे?

इस विषय में हाल के वर्षों में कई अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ और नियम बने हैं, जिनसे हमारे देशवासियों को बहुत सावधान होकर आगे बढ़ना है। हमें अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति को बचाना है और उसी सीमा तक उसका उपयोग होते देना है जिस तक वह हमारे प्रबन्ध में भी रहे और सहने योग्य मात्रा में व्यापार आदि के लिये भी उपलब्ध होती रहे। सरल भाषा में कहें तो मनुष्य को इन विरल होती हुई प्राणी तथा वनस्पति की जातियों को जीवित रखना है और स्वयं अपना काम भी उनसे चलाते रहना है।

इस पुस्तक में भारत के प्राणियों तथा उनके वातावरण पर विविध जानकारी एकत्रित की गई है। कुछ लेख प्राणी वर्ग पर हैं, तो कुछ पारिस्थितिकी पर। कई लेखों के साथ रंगीन या श्वेत-श्याम चित्र, तालिकाएँ, तथा सन्दर्भ के अन्तर्गत अन्य लेखों तथा पुस्तकों की सूचना दी गई हैं, जो इस पुस्तक की उपादेयता बढ़ाते हैं। इस जानकारी को एक नींव के पत्थर की तरह प्रयोग करके, अन्य तथा विस्तृत जानकारी को इकट्ठा करने के प्रयास शुरू करने चाहिये, जिससे कि हमें भारत के प्राणियों की जातियों, वंशों तथा परिवारों का पूरा विवरण मिल सके। इसी आशा के साथ भारत की स्वतंत्रता की पचासवीं वर्ष-गाँठ के शुभ अवसर पर यह पुस्तक राष्ट्र को समर्पित है।

पुस्तक के प्रकाशन के लिये हम भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के बहुत आभारी हैं। विशेषतः सचिव महोदय के जिन्होंने इसका आमुख लिखा है। सभी लेखों के लेखकों के प्रति उनके बहुमूल्य योगदान के लिये हम कृतज्ञ हैं। भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के उन सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को भी धन्यवाद है, जिन्होंने इस पुस्तक के लिये किसी भी प्रकार का सहयोग दिया है। सबका नाम देना संभव नहीं हो पा रहा, फिर भी हम श्री जी. शिवगुरुनाथन, श्री रतीराम, श्री एम. एल. डे, डा० वी० सी० अग्रवाल तथा श्री राम्भू कुमार द्वारा विभिन्न प्रकार की सहायता के लिये उनके प्रति आभार प्रकट करना चाहेंगे। कलकत्ता लेजर ग्राफिक्स के श्री स्वपन कुमार मंडल को भी उनके सहयोग के लिये धन्यवाद है।

राजेन्द्र कुमार चार्जीस
जे. आर. बी. अल्फ्रेड

1 अगस्त, 1997

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण
प्राणी विज्ञान भवन
न्यू अलीपुर
कलकत्ता-700 053

विषय सूची

आमुख	पृष्ठ
प्रस्तावना	v
प्राणी सर्वेक्षण (कविता)	राजेन्द्र वाष्ण्य 'राज'
	1

विषय प्रवेश

जैव विविधता क्या है?	आशीष कुमार बोष	3
भारत में जैविक एवं पारिस्थितिकी विविधता	जे. आर. बी. अल्फ्रेड एवं संदीप कुमार तिवारी	7
जैव विविधता: कुछ संकलित तथ्य	राजेन्द्र कुमार वाष्ण्य	13
उत्तर-पूर्व भारत में जैविक विविधता के लिये खतरे तथा लक्ष्यों की प्राप्ति	स.ज.स. हट्टर, जे. आर.बी. अल्फ्रेड एवं वी.टी. डारलांग	31
जैव विविधता (प्रतियोगिता पुरस्कृत लेख)	जय प्रकाश श्रीवास्तव	41

प्राणि-वर्ग विविधता

स्तनपायी विविधता	विजय चन्द्र अग्रवाल	47
एक नजर चूहे, घुइस, जरबिल, गिलहरी एवं साही पर	सुजीत चक्रवर्ती एवं रीना चक्रवर्ती	55
चमगादड़ों की विविधता	जयप्रकाश श्रीवास्तव	61
चार विलुप्तप्राय स्तनपायी जन्तु	सी. राधाकृष्णन एवं राधेश्याम शर्मा	65
भारतीय पक्षियों की विविधता	अनिल महाबल एवं राधेश्याम शर्मा	71
सर्पाकृति उभयचर और छिपकली	प्रकाश कुलकर्णी एवं सुपदा पाटील	85
मछलियों में जीव विविधता	अखलाक हुसैन	91
जलीय-कीट विविधता	विश्वम्भर दयाल श्रीवास्तव	105
भारतीय झींगुर, तिलचट्टे, टिट्ठी आदि	महेन्द्र सिंह शिशौदिया	113

भारतीय व्याध-पतंगों में जैव विविधता	महाबीर प्रसाद	119
हैमिप्टेरा की विविधता	लक्ष्मी कान्त घोष	123
भारतीय तितलियाँ	राजेन्द्र कुमार वाष्ण्य	129
जैविक विविधता चींटियों के संदर्भ में	आर. एन. तिवारी	137
भारतीय मकड़ी, बिच्छू, काँतर, माइट आदि (एरेकनीडा)	अशोक कान्ति सान्याल	149
रक्तचूषक आर्थोपोड	सन्तोष कुमार टण्डन एवं नीलम टण्डन	157
भारतीय प्रोटोजोआ की विविधता	अशोक कुमार दास एवं ध्रुव नारायण तिवारी	167
मीठे पानी के जू प्लैंकटन (प्राणिप्लवक)	कृष्णमूर्ति वेंकटरमण एवं ध्रुव नारायण तिवारी	171

पारिस्थितिकी विविधता

भिट्टी में प्राणी विविधता	आशीष कुमार हाजरा	175
हिमालय (उत्तर प्रदेश) की प्राणि-विविधता	अरुण कुमार	185
भारतीय थार मरुस्थल में प्राणी विविधता	क्यू. एच. बाकरी एवं पदमा बोहरा	191
ठण्डे मरुप्रदेश (लद्दाख) की प्राणी विविधता	जतिन्द्र मोहन जुल्का एवं राहुल पालीवाल	199
उत्तर पूर्वी भारत में प्राणी विविधता	स.ज.स. हट्टर	203
गंगा समभूमि क्षेत्र (बिहार) के जीवों की विविधता	यदुनाथ प्रसाद सिन्हा एवं रामाधीन कुमार	211
नदी किनारे की कीट विविधता	सतीश चन्द्र नाहर	217
सह्याद्री पर्वतमाला की प्राणी विविधता	राधेश्याम शर्मा एवं गुलाम मुहम्मद यजदानी	223
भारतीय झीलों की प्राणी विविधता	काजा बी. रामाराव एवं एस. जेड. सिद्दीकी	235

समुद्री किनारे की प्राणी विविधता	रामकृष्ण	241
पश्चिमी समुद्र तटीय प्राणी विविधता	सी. राधाकृष्णन एवं राधेश्याम तर्मा	249
सामुद्रिक पारि-तन्त्र में जीव वैविध्य	एन. वी. सुब्बाराव	255
अन्डमान एवं निकोबार द्वीपों की प्राणी विविधता	कैलाश चन्द्र एवं पी. टी. राजन	259

परिशिष्ट

परिशिष्ट—1. भारत के राष्ट्रीय उद्यान	267
परिशिष्ट—2. भारत के वन्यजीव अभयारण्य	271
परिशिष्ट—3. भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के कार्यालयों के पते तथा फोन नम्बर	287

भारत की प्राणी विविधता
भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,
कलकत्ता द्वारा प्रकाशित
1997

प्राणी सर्वेक्षण

मकड़ी कैसी गन्दी, शेर भयानक, चींटी कितनी छोटी,
मेंढक तो टर-टर करता है, लेकिन मीठा बोले कोयल,
चिड़िया भी अनगिन प्रकार की-तोता, काँआ, ठल्गु, बुलबुल,
चील, कबूतर, नीलकण्ठ, पर जोंक तो हो जाती है मोटी।

पानी के फिर जन्तु कि जैसे मगरमच्छ, बहुरंगी मछली,
विषमय बिच्छू, साँप, काँतरे, टिड्डी भी कितनी दुखदाई,
हाथी भारी इधर, उधर जीवाणु-सूक्ष्म पानी की काई,
दीमक, घोंघे और केंचुए से सुन्दर होती है तितली।

जानवरों की दुनिया में हैं जीव एक से एक विलक्षण,
जानवरों के कारण ही यह कहलाता है जगत चराचर,
मानव भी कुछ नहीं, सिर्फ है विकसित प्रतिभावान जानवर,
अपनी शिक्षा से आओ फिर कर डालें प्राणी सर्वेक्षण।

-राजेन्द्र बाघ्नी 'राज'

विषय प्रवेश

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

जैव विविधता क्या है ?

आशीष कुमार घोष

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

[शिक्षित भारतीयों ने बहुमूल्य "जीन की डकैती" के विषय में अवश्य सुना है किन्तु वास्तव में इस "वैज्ञानिक चोरी" के बारे में जानकारी हासिल करने का प्रयत्न नहीं किया। "जीन की डकैती" पर रियो डी जेनेरो में हुए शीर्ष-सम्मेलन (1992) से विशेष ध्यान गया, जब जैव विविधता से संबंधित प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने से संयुक्त राज्य अमेरिका ने इनकार कर दिया।

जैव विविधता इतनी महत्वपूर्ण क्यों है? तथा जैव विविधता का क्या तात्पर्य है?

वस्तुतः, किसी को इसकी अनभिज्ञता के कारण विशेष चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वैज्ञानिकों को भी इस संबंध में प्रारंभिक ज्ञान ही है। यह बात सामान्य जन को भी विदित है कि विश्व में व्याप्त पौधे और पशु मानवमात्र के जीवन के आधार हैं। पृथ्वी पर 80 लाख से भी अधिक जीव-जन्तु हो सकते हैं, जिनमें से दस लाख से अधिक की न तो तालिका बनी है और न ही इनका पूर्ण उपयोग किया गया है।

कलकत्ता स्थित कलकत्ता विश्वविद्यालय की रासायनिक प्रयोगशाला में डा० असीमा चटर्जी ने "सर्पगंधा" नामक लघु पुष्प देनेवाले पेड़ के आश्चर्यजनक गुणों का पता लगाया था। वनस्पतिज्ञ इसे "राबोल्फिया सर्पेटिना" के नाम से पुकारते हैं जो हृदय रोगों के लिये उपयोगी है।

मामूली नीम की कथा और भी उत्साहवर्द्धक है। हाल की खोजों से यह विश्वास किया जा सकता है कि वैज्ञानिक तरीके से नीम के विकर्षण गुण से एक कीटनाशक दवा तैयार की जा सकती है। जीव जगत की देन होने के फलस्वरूप ऐसी रासायनिक दवाओं का पारिस्थितिकी पर भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

इस साधारण नीम का आर्थिक महत्व पश्चिमी दुनिया में महत्वपूर्ण है, जो रासायनिक तत्वों से मुक्त होना चाहते हैं। इस बात को हम महसूस कर सकते हैं कि संयुक्त राज्य

अमेरिका जैव तकनीकी पर 5.8 खरब डालर खर्च करता है एवं सन 2000 तक यह उस देश में 50 खरब डालर का उद्योग हो जाएगा।

और तब, भारत की स्थिति पर विचार कीजिये। शायद भारत पूरी दुनिया में जैवविविधता के क्षेत्र में सबसे समृद्ध है। डा० आशीष कुमार घोष, भूतपूर्व निदेशक (तब संयुक्त निदेशक), भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, ने जैवविविधता के बारे में विवादों को स्पष्ट किया है। श्रीमती अदिति राय घटक द्वारा की गई यह वार्ता अंग्रेजी के "दी स्टेट्समैन" समाचार पत्र में 5 जून, 1992 को प्रकाशित हुई थी।]

प्रश्न : जैव विविधता में भारत की शक्ति क्या है?

उत्तर : भारत की भौगोलिक स्थिति विविध जैव पर्यावरणीय दशाओं के लिये संभावनायें प्रदान करती हैं। उत्तर में हिमालय पर्वत, पश्चिम में मरूस्थल तथा पूर्व एवं दक्षिण में क्रमशः विस्तृत गांगेय क्षेत्र एवं घाट प्रणाली, साथ ही उष्ण कटिबंधीय जंगल पाये जाते हैं।

उत्तर पूर्वी भारत की अद्भुत स्थिति के साथ तीन विविध जलवायु एवं जंगली क्षेत्रों को लेते हुये और आगे भूमि सीमा के बाहर देखें—भारत में करीबन 100 से अधिक बहनेवाली नदियाँ हैं एवं लगभग 6000 कि. मी. से अधिक लम्बा सामुद्रिक किनारा है। वे सभी जैव विविधताओं के लिये सशक्त श्रोत हैं।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि भारत में उत्पन्न होने वाली 4500 पौधों की प्रजातियाँ हैं जिसमें कम से कम 15,000 पुष्प वनस्पतियों की जातियाँ हैं तथा अनेक विशिष्ट क्षेत्रीय मूलक (एन्डेमिक) हैं जो भारत में ही पाई जाती हैं।

पशुओं से सम्बद्ध जैव विविधताओं में स्तनपायी जन्तुओं की जातियाँ एवं उपजातियाँ 850 के लगभग हैं, पक्षियों की जातियाँ एवं उपजातियाँ 2000 से अधिक, रेंगने वाली सरीसृप जातियाँ 450 एवं स्वच्छ जल तथा सामुद्रिक मछलियों की 2500 जातियाँ हैं। इनके अतिरिक्त अब तक अभिलेखित करीबन एक लाख मेरुदंड विहीन प्राणियों की जातियाँ हैं और जबकि देश के विस्तृत भागों में पूर्णतः सर्वेक्षण अभी भी किये जाने हैं।

प्रश्न : इन शक्तियों की तुलना विश्व के, खासकर विकसित विश्व के साथ कैसी है?

उत्तर : दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों तथा उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका के साथ-साथ भारत विश्व की जैव विविधताओं में सबसे सम्पन्न आधार प्रदान करता है। जलवायु एवं मिट्टी की विभिन्नताओं के कारण विविध पुष्प बाली वनस्पतियाँ होती हैं।

उष्ण देशों के अन्तर्गत भारत वनस्पतियों एवं प्राणियों के मूल आवास के रूप में सबसे धनी है जो अपने घरेलू तथा व्यावसायिक उत्पाद के तौर पर उपयोग किये जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर सामान्य मुर्गी पालन उत्तर पूर्व भारत की जंगली मुर्गियों से उद्गमित हुआ है।

एक सर्वमान्य नियम के बतौर कोई भी कह सकता है कि भारत के एक वर्ग किलोमीटर जंगल में 400 से 1000 तक वनस्पति जातियाँ पाई जाती हैं। एक पश्चिमी देश में सामान्यतया यह आशा नहीं की जा सकती कि उसके अछूते जंगलों में 40 से लेकर 100 से अधिक पौधों की जातियाँ हों। किन्तु मुख्य बात यह है कि यहाँ सर्वेक्षण करना है तथा जंगली पौधे एवं प्राणियों के नमूनों को एकत्रित करना है एवं उनकी अधिकृत पहचान, परिरक्षण तथा सूची तैयार करना है।

उदाहरण के तौर पर इंग्लैण्ड में 1400 से अधिक पौधों की जातियाँ नहीं हैं लेकिन वहाँ पर 2000 से अधिक वनस्पतिशास्त्री पौधों की टेक्सोनोमी (पहचान, सूची बनाने) पर कार्य करते हैं।

कोस्टारिका जैसे छोटे से देश में 20,000 पौधों की जातियाँ हैं, किन्तु वहाँ पर 200 से अधिक वनस्पतिशास्त्री नहीं हैं। इस प्रकार जो आवश्यक है वह सिर्फ अन्वेषण ही नहीं, बल्कि मानक पहचान, परिरक्षण एवं प्रलेखन पर्याप्त विशेषज्ञों का विकास कार्यक्रम भी है।

प्रश्न : विकसित देशों के साथ तब क्या हुन्द है कि जैव विविधता पर रियो डि जेनेरो में एक उचित सहमति होनी चाहिये?

उत्तर : जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हाल ही में अनुसंधानों ने जो चमत्कार कर दिखाए हैं, उनमें खाद्य उत्पादन, औषधि एवं प्रदूषण नियंत्रण आदि के क्षेत्रों में जैविक द्रव्यों पर जैव प्रौद्योगिकी के प्रतिपादन से है। दुर्भाग्यवश भारतीय वैज्ञानिक जैव प्रौद्योगिकी के परीक्षणों में आरम्भिक स्तर पर ही हैं; जबकि पश्चिम में बहुदेशीय संस्थाओं ने अनुसंधान तथा विकास पर काफी पूँजी निवेशित की है। क्योंकि हमारे पास जर्ब-प्लाज्म के भरपूर भंडार हैं, जिन्हें कच्ची सामग्री के बराबर माना जा सकता है, और उनके पास अभिनव जैविकी के प्रयोग हैं, तब क्या हमें मिलकर सहमति के ज्ञापन नहीं तैयार करने चाहिये ?

प्रश्न : अकस्मात ऐसा महसूस होता है कि हम अपनी प्राकृतिक विरासत पर अपना नियंत्रण खो रहे हैं, अथवा क्या वैज्ञानिक समुदाय ने देश की जैव विविधता को बचाये रखने के लिये गम्भीर काम किया है? तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर भिड़न्त हेतु तैयार हैं?

उत्तर : यह एक अकस्मात हुआ तथ्य नहीं है। शासकीय नीति यह है कि दूसरे देशों से आये वैज्ञानिकों के द्वारा किये गये जैविकी अन्वेषण को देखें। वास्तव में ऐसे सभी प्रयास राष्ट्रीय सर्वेक्षण संस्थानों के दलों के साथ संयुक्त रूप से सम्पादित हुये हैं। फिर भी अभी तक तो भारत जैसे विकासशील देश में 1000 जातियाँ हैं-शल्क धारी प्राणियों

की 2750 जातियाँ हैं और झींगा, केकड़े आदि परिचित प्राणी जैसे प्रान, श्रिम्प, लोबस्टर, क्रेब शामिल हैं। यहाँ पर हजारों छोटे-छोटे अकशेरुकी सामुद्रिक जीव हैं, जिनकी ओर हाल में हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ है क्योंकि ये जैविक चिकित्सा उपयोग के लिये महत्वपूर्ण हैं। कई सामुद्रिक वनस्पतियाँ एवं प्राणिजात ज्ञात हुए हैं। अब हमने वनस्पतियों की दो जातियाँ तथा प्राणियों की 7 जातियों का पता लगाया है, जो जैव क्रियाशील गुणों तथा वाइरस विरोधी क्रियाशीलता के कारण उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त कम से कम 11 प्राणियों की एवं 4 वनस्पतियों की जातियाँ हैं जिनमें जन्मनिरोध औषधि के रूप में उपयोग हेतु गुरुत्वपूर्ण गुण पाये गये हैं। कम से कम एक ऐसा सामुद्रिक पौधा मिला है जिसमें दर्द निवारक होने का गुण है। कम से कम 6 ऐसे पौधे एवं जन्तु हैं जिनमें स्पष्टतः स्नायुविक गड़बड़ी में, अवसिक्त अथवा उत्तेजक रूप में भविष्य में उपयोग किये जाने हेतु जैव-क्रियाशील होने के गुण पाये गए हैं। मूत्र दोषों के निवारण हेतु कम से कम 6 पौधे एवं 10 ऐसे जीव हैं जिनमें रोग मुक्त करने के सिद्ध लक्षण हैं। इनपर बोस इंस्टीट्यूट कलकत्ता, केन्द्रीय भेषज अनुसंधान केन्द्र लखनऊ, राष्ट्रीय सामुद्रिक संस्थान गोवा में, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण की मदद से अनुसंधान कार्य हो रहा है।

प्रश्न : रियो में जैव विविधता संबंधी क्या करार होगा तथा क्या वह भारत के लिये संतुष्टिप्रद होगा?

उत्तर : भारतीय सहमति को विचार करते हुये हमारा देश एक ऐसे करार का स्वागत करेगा जिसके द्वारा जैव विविधता की सम्पदा को जैव प्रौद्योगिकी के उत्पादन के बराबर माना जाय, जो भारत जैसे “जीन-धनाढ्य” देशों से प्राप्त कच्चे माल पर ही मूलतः आधारित होंगे।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारत में जैविक एवं पारिस्थितिकी विविधता

जे० आर० बी० अल्फ्रेड

एवं

संदीप कुमार तिवारी

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

भारतवर्ष भौतिक, पारिस्थितिकी, जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं बहुभाषी विविधता का देश है। शताब्दियों से भारत के लोग प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध रखते रहे हैं। यहां की प्रत्येक प्राणि-जाति का एक अपना विशेष महत्व है, और प्रत्येक जीव, किसी न किसी रूप में प्रकृति एवं जैविक वातावरण से जुड़ा हुआ है। बड़े महत्व की बात है कि विश्व में जैविक संरक्षण सर्वप्रथम तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक के राज्य काल में प्रारम्भ हुआ था। जैविक संरक्षण भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों ने यहाँ के जीव-जन्तुओं को पालना प्रारम्भ किया, जो उनके सामुदायिक लाभ के साथ-साथ जैविक विविधता को भी उन्नत करने में हितकर सिद्ध हुआ, उदाहरणार्थ बट वृक्ष (बरगद) एवं पीपल की पूजा की ताकि इन वृक्षों को कोई क्षति न पहुँचाये। इसी प्रकार, आम, केला इत्यादि पेड़ों के पूजन में भी वही भाव समाहित है।

भारत का भू-भाग प्रायः 3290 लाख हेक्टर में फैला हुआ है, और इसका विस्तार अक्षांश 6 डिग्री उत्तर से 34 डिग्री उत्तर तथा देशांश 69 डिग्री पूर्व से 79 डिग्री पूर्व के बीच है। यह उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी एवं पश्चिम में अरब सागर से घिरा है। इस भूभाग को निम्न तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है:—

- (1) ट्रान्स हिमालयन क्षेत्र :— जिसमें उत्तर-पूर्व की पर्वत श्रृंखलाएँ शामिल हैं।
- (2) मध्य का गांगेय क्षेत्र :— वह समतल भूमि जिससे होकर गंगा तथा सहयोगी नदियाँ बहती हैं।
- (3) दक्षिणी पठार :— जिसमें पूर्वी एवं पश्चिमी घाट तथा विन्ध्य सतपुड़ा की पहाड़ियाँ शामिल हैं।

हिमालय केवल जैविक विविधता का केन्द्र बिन्दु ही नहीं रहा, बल्कि वह भारत के विभिन्न भागों में वर्षा का श्रोत भी रहा है। बंगाल की खाड़ी से उठते हुए वर्षा के बादल, हिमालय के ऊँचे शिखरों से टकराकर लौटते हुए मैदानों एवं तराई वाले क्षेत्रों में वृष्टिपात करते हैं। यही वर्षा धीरे-धीरे मध्य एवं उत्तर पश्चिम भाग तक फैल जाती है, फलस्वरूप पूरे देश में वर्षा संभव हो पाती है। इसी प्रकार पश्चिमी घाट में अरब सागर से उठते हुए बरसाती बादल, इन पहाड़ियों से टकराकर ज्यादा वर्षा करते हैं। इस मानसूनी वर्षा के कारण इन क्षेत्रों की जैविक-विविधता में बढ़ोतरी हुई है।

भारत का बृहत्तर खेती-बाड़ी वाला भूमि भाग अपनी अलग विशेषता रखता है। उदाहरणस्वरूप गंगा का मैदान एवं समुद्र किनारे वाले क्षेत्र ऐल्यूवियल मिट्टी जो नदियों द्वारा लाई जाती है, से निर्मित हुए हैं। काली मिट्टी वाला पठार क्षेत्र, विशेषकर गुजरात में पाया जाता है जो कपास की खेती के लिए बड़ा ही उपयुक्त माना जाता है। देश के दक्षिण में लाल मिट्टी वाले क्षेत्र पाए जाते हैं, जो चट्टानों के टूटते अवशेषों से निर्मित हुए हैं, एवं विभिन्न कृषि उत्पादों के लिए उपयुक्त हैं।

भारत की जैविक विविधता में पारिस्थितिकी तंत्र, जाति-विविधता तथा वंशानुगत प्रकार शामिल हैं। इसका मुख्य आधार यहाँ की ऋतुएँ, मौसम एवं विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र हैं*, जिसके फलस्वरूप एक ऐसे पारिस्थितिकी का सृजन होता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु अपने अनुकूल वातावरण पाते हैं। विश्व के भौगोलिक रीम्स में से दो रीम्स पैलीआर्कटिक तथा इण्डोमलायन, तथा तीन मुख्य जीवोम (बायोम) ट्रापिकल ह्यूमीड वन, ट्रापिकल-ड्राई-डेसीड्युअस वन तथा गर्म रेगिस्तानी या अर्ध रेगिस्तानी वन, भारत में मिलते हैं। इसमें 12 बायोज्यूग्राफिक क्षेत्र तथा 21 ऐग्रोइकोलोजिकल क्षेत्र शामिल हैं।

भारत की प्राणि-विविधता अपनी विशेषता रखती है। अनुमान किया जाता है कि यहाँ पर 81,000 प्राणी जातियाँ पायी जाती हैं, जो कि विश्व की प्राणी जातियों का 6.4 प्रतिशत है। यहाँ पर शंख जाति (मोलस्का) की 5,000 जातियाँ, मत्स्य वर्ग की 2,546, उभयचर (एमफिबियन) की 204, सरीसृप (रेप्टाइल्स) की 446, पक्षी वर्ग की 1,228, तथा स्तनपायी (मेमल्स) की 372 जातियाँ पायी गयी हैं। कीट-पतंग की कुल जातियों की संख्या लगभग 51450 है। कुछ विशेषज्ञ ऐसा मानते हैं कि उपरोक्त जातियों में से 62 प्रतिशत जातियाँ स्थानिक (एन्डेमिक) हैं।

सूक्ष्म जीवों (माइक्रो-आर्गनिजम्स) की, जैविक विविधता के बारे में ज्यादा आँकड़े उपलब्ध नहीं हो सके हैं। पर इस क्षेत्र में भी निष्ठा से शोध कार्य चल रहा है एवं अनुमान किया जाता है कि इस क्षेत्र में भी जैविक विविधता अपनी चरमसीमा पर ही होगी। 14 गहरी नदियों, 44 मध्यम नदियों एवं 55 छोटी नदियों के “बायोटा” के बारे में सर्वेक्षण चल रहा है, और थोड़े बहुत उपलब्ध आँकड़ों से ऐसा लगता है कि नदियों के जीव-जन्तुओं की विविधता भी काफी धनी होगी।

* मानचित्र पृष्ठ 77 पर देखें—सं०

भारतीय समुद्र की जैविक विविधता भी कुछ कम नहीं है। समुद्रों में नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं का एक अपना ही संसार है। इस क्षेत्र में भी भारत में शोध कार्य जारी है। अन्य संस्थानों के अतिरिक्त भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के मद्रास, बहरमपुर तथा कैनिंग केन्द्रों में भी शोध कार्य चल रहे हैं। भारत का समुद्र तट प्रायः 7,500 किलोमीटर तक फैला हुआ है, (इसमें समुद्र का नाउटिक माईल्स संलग्न है,) और इसे "विशेष आर्थिक क्षेत्र" (एक्सक्लूसिव इकोनामिक जोन) की संज्ञा दी गयी है। इन क्षेत्रों में इस प्रकार के सामुद्रिक प्राणी पाए जाते हैं, जिनका आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत महत्व है।

जहाँ तक पालतु जानवरों की विविधता का संबंध है, भारत इस क्षेत्र में भी प्राचीन काल से ही आगे रहा है। यहाँ पर पशुपालन की पुरानी परम्परा रही है। इसी प्रथा के कारण, भारत में कई प्रकार के जानवरों को पाला जाता है, जिसमें भैंसों की 8 जातियाँ, जो गांगेय प्रदेश में बहुतायत से पायी जाती हैं, विश्व के भैंसों की प्रजातियों में सराहनीय हैं। इसके अलावे भारत में गाय-बैलों की 26 जातियाँ, ऊँटों की 8, खच्चरों की 2, मुर्गों की 18 जातियाँ, जैविक विविधता के प्रधान अंग हैं।

जैविक विविधता एवं इसका संरक्षण

जहाँ भारत में एक तरफ जैविक विविधता अति धनाढ्य है वही दूसरी तरफ इसके संरक्षण में गिरावट आती जा रही है। इस गिरावट का मुख्य कारण है प्राणियों के आवास में विचटन तथा अवैध ढंग से हो रहा जंगली जानवरों का हनन। भारत के प्रमुख जंगली जानवरों में से कुछ जातियों को "लुप्त" घोषित किया जा चुका है, कारण गत अनेक दशकों से इन जातियों को देखा नहीं गया। इस शताब्दी में भारतीय चीता, गुलाबी सिर वाले बत्ख तथा पहाड़ी बटेर आदि लुप्त जातियों के कुछ उदाहरण हैं। इसके अलावे स्तनधारियों की 77 जातियाँ, पक्षियों की 55, सरीसृपों की 20, उभयचरों की 1 तथा तितलियों, शलभों एवं अन्य कीट-पतंगों की कई जातियाँ प्रायः लुप्त होने के कगार पर आ खड़ी हैं। अनुमान किया जाता है कि अगर संरक्षण के उपायों को लागू नहीं किया गया तो ये जातियाँ भी लुप्त हो जाएँगीं। ठीक इसी प्रकार पौधों की 1,500 प्रजातियाँ भी प्रायः लुप्त होती जा रही हैं। हाथी दाँत के लिए हाथियों का हनन एवं सींग के लिए गैंडों (राइनो) का हनन, इस तथ्य का उदाहरण है कि इन दोनों जीवों की संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। इस अवैध व्यवसाय को रोका नहीं गया तो वह दिन दूर नहीं जब ये जीव इतिहास के पन्नों तक ही रह जाएँगे। यही अवस्था है कुछ अन्य लुप्त होती हुई जातियों की।

पालतु जानवरों के आनुवंशिक (जेनेटिक) ह्रास के फलस्वरूप उनके अस्तित्व को खतरा हो गया है। इसका मुख्य कारण है उच्चकोटि के पौधों एवं जानवरों की उन जातियों का संमिश्रण जो बाहर से लाए गए हैं, उनके साथ संकर प्रजनन के फलस्वरूप स्वदेशी जीव-

जन्तुओं की नस्लों का हास होता जा रहा है।

हाल ही में, जैविक विविधता पर हुए विश्व सम्मेलन में भारत सरकार ने अपने “नेशनल एक्शन प्लान आन बायो-डाइवर्सिटी” के तहत, ऐसे नियम को लागू करने के पक्ष में राय दी जिसके फलस्वरूप जेनेटिक हास को रोका जा सकता है।

संरक्षित स्थान

भारतीय वन्य जीव परिषद 1952 में स्थापित हुआ तथा वन्य-जीव संरक्षण धारा 1972 (परिमार्जित 1991) के तहत विरल होते जीव-जन्तुओं को और भी संरक्षण प्रदान किया गया है। आज भारत में 80 राष्ट्रीय उद्यान और 441 अभयारण्य हैं जिसका कुल क्षेत्रफल 1,48,849.01 वर्ग किलोमीटर है। वन्य जीव संस्थान का परामर्श है कि भारत में 148 राष्ट्रीय उद्यान एवं 503 अभयारण्य होने चाहिए। इसके फलस्वरूप बायोजियोग्राफिक इकाइयों एवं बायोमास के बीच रिक्त स्थान कम करने में सफलता मिलेगी।

भारतीय नमभूमि (वेटलेण्ड), मैंग्रोव एवं कोरल रीफ कमेटी ने 21 नमभूमि, 15 मैंग्रोव एवं 4 कोरल रीफ को संरक्षण एवं वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु स्वीकारात्मक अनुमति प्रदान की है।

रामसर कनवेंशन (1981) के तहत, भारत में 6 नमभूमि घोषित की गई हैं, जो इस प्रकार हैं:—

हरिके (पंजाब), बुल्लार (जम्मू एवं काश्मीर), लोकताक (मणीपुर), केवलादेव (राजस्थान), चिल्का (उड़ीसा), एवं सांभर (राजस्थान)।

“वर्ल्ड हैरिटेज कनवेंशन” के तहत भारत के 5 प्राकृतिक स्थानों को “वर्ल्ड हैरिटेज साइट्स” के रूप में चयन किया गया है, जो इस प्रकार हैं:—

- (1) काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान (असम)
- (2) मानस अभयारण्य (असम)
- (3) सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान (प० बंगाल)
- (4) नन्दादेवी राष्ट्रीय उद्यान (उत्तर प्रदेश)
- (5) केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान)।

गारो हिल्स (मेघालय) के तूरा रेन्ज को “जीन सेंक्चुरी” के रूप में घोषित करने के लिए प्रस्ताव किया गया है, जिसके तहत पौधों में “साइटस” (नीबू) और “मूसा” (केला) प्रजातियों को संरक्षण मिल सकता है। “रोडोडेनड्रान” और “आर्कीड्स” के लिए सिक्किम में सेंक्चुरी बनायी गयी है।

“प्रोजेक्ट टाइगर” जो 1973 में प्रारम्भ हुआ, उसके तहत 23 टाइगर रिजर्व क्षेत्र हैं जिसका कुल क्षेत्रफल 30,479 वर्ग किलोमीटर है। 1993 तक इस प्रोजेक्ट के फलस्वरूप, भारत में बाघ (टाइगर) की संख्या 3750 तक पहुँच गयी, जो एक बड़ी उपलब्धि है।

1991-92 में “प्रोजेक्ट ऐलीफेन्ट” प्रारम्भ किया गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य हाथियों को संरक्षण प्रदान करना एवं इनको उचित वातावरण उपलब्ध कराना है। दिन-प्रतिदिन हाथियों की संख्या में होते-ह्रास को दृष्टि में रखते हुए, यह प्रोजेक्ट संरक्षण की दिशा में एक बड़ा कदम है। इस प्रोजेक्ट में मानव एवं हाथियों के बीच होनेवाले तनाव, हाथियों के स्थानान्तरण एवं इनके झुण्डों की अध्ययन की दिशा में, अच्छे फल की आशा की जा रही है। इस प्रोजेक्ट के कार्यान्वयन होने पर हाथियों के आस-पास रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर में भी उन्नति होने की आशा है।

भारतीय संविधान में, पर्यावरण सुरक्षा का भार स्थानीय राज्य सरकारों का सौंपा है। भारतीय संविधान की धारा 58 ए. और आर्टिकल 51 के अन्तर्गत, राज्य सरकारें पर्यावरण की स्थिति सुधारने की पूरी कोशिश करेंगी और राज्य स्थित जंगलों एवं जंगली जीव-जन्तुओं के संरक्षण का पूरा भार वहन करेंगी। फॉरेस्ट एक्ट 1927, 1980 तथा अन्य प्राणी संरक्षण एक्ट 1972 के अन्तर्गत विभिन्न अधिनियमों के आधार पर राज्य का उत्तरदायित्व बन जाता है कि जंगल एवं जंगली संपदा की पूर्ण रक्षा करे। क्योंकि भारत “साइटिस” अर्थात् “कनर्वेशन आन इण्टरनेशनल ट्रेड इन वाइल्ड स्पीसीज ऑफ इन्डोर्जर्ड फ्लोरा एण्ड फौना” का एक अंग है, अतः उन सभी जातियों को, जो लुप्त होने की अवस्था में हैं, के संरक्षण के लिए पूर्णरूपेण जिम्मेदार है।

“नेशनल कनजर्वेशन स्ट्रेटेजी” एवं “पॉलिसी स्टेटमेंट फॉर एनवायरनमेंट डेवलपमेंट (1980)” ने “जैविक विविधता” के संरक्षण का पूरा ध्यान रखा है। “नेशनल फॉरेस्ट पॉलिसी 1988” ने उन जंगलों को, जहाँ पर पारिस्थितिकी में गिरावट आ चुकी है, किन्तु जहाँ की जैविक संपदा बहुत उन्नत है, के संरक्षण को पूरा आश्वासित किया है। साथ ही साथ “वाइल्ड लाइफ एक्शन प्लान 1993”, के अन्तर्गत जंगली जीव-जन्तुओं के संरक्षण के लिए कटिबद्ध है। इनके अन्तर्गत जंगलों में पुनः वृक्षरोपण के माध्यम से जंगलों की पारिस्थितिकी तंत्र को उन्नत करने की भरपूर चेष्टा है।

भारतीय वन संपदा का सर्वेक्षण

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण एवं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण वैज्ञानिक सत्ता के रूप में उभर कर आए हैं और साइटिस, रामसर, सी. एन. एस. एवं आई. यू. सी. एन. जैसी प्रमुख संस्थाओं को सभी प्रकार के प्राणी एवं वनस्पति संबंधी प्रमुख सूचनार्थ उपलब्ध कराने में उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

भारतीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों तथा विश्व विद्यालयों को अनुदान देकर पर्यावरण संबंधी विषयों पर अध्ययन करने के लिए प्रेरणा दी है। जो अन्ततः पर्यावरण को और भी उन्नतिशील बनाने में उपयोगी होंगे। इन अनुसंधानों के विषय हैं: पर्यावरण संरक्षण, नमभूमि एवं मैंग्रोव के पारिस्थितिकी तंत्र, बायोस्फीयर रिजर्व, जाति स्तर पर विविधता तथा पारिस्थितिकी तंत्र एवं जातियों में तालमेल इत्यादि।

भारत की प्राणी विविधता
भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

जैव विविधता : कुछ संकलित तथ्य

राजेन्द्र कुमार वाष्णीय
भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

भूमिका

भारत की समृद्ध प्राणि-विविधता को समझने के लिये उससे सम्बद्ध अब तक के उपलब्ध आँकड़ों को इकट्ठा करना एक प्रारम्भिक आवश्यकता है। भारत में कितना वन क्षेत्र है? कितनी नदियाँ हैं? संरक्षित क्या-क्या क्षेत्र कहाँ पर हैं और किन्ने क्षेत्रफल के हैं? ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर जैविक विविधता के सन्दर्भ में चाहिए। इस लेख में उनमें से कुछ तथ्य एकत्र किये गये हैं। इनका संकलन भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की हाल के वर्षों की वार्षिक रिपोर्ट से तथा कुछ अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं से किया गया है। प्रारम्भ में एक संक्षिप्त अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली भी तैयार कर दी है, जिससे पाठकों को सुविधा हो। लेख के अन्त में भारत में तथा विश्व में अब तक आकलित प्राणी जातियों की संख्या बताई गई है, जिसे भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने हाल के वर्षों में शोध पूर्वक निर्धारित किया है। अधिकांशतः सभी तथ्य तालिका-रूप में प्रस्तुत हैं, जिससे समझने में सुविधा हो।

(i) संक्षिप्त शब्दावली

अंग्रेजी शब्द	हिन्दी शब्द
Phylum	फाइलम
Class	क्लास
Order	ओर्डर
Family	फेमिली
	संघ
	वर्ग
	गण
	कुल, परिवार

क्रमशः

अंग्रेजी शब्द	हिन्दी शब्द
Genus	जीनस
Species	स्पीशीज
Subspecies	सबस्पीशीज
Morphology	मॉर्फोलोजी
Biology	बायोलोजी
Zoology	जूलोजी
Botany	बोटनी
Ecology	ईकोलोजी
Taxonomy	टेक्सोनोमी
Bioecology	बायोईकोलोजी
Biotechnology	बायोटेकनोलोजी
Distribution	डिस्ट्रीब्यूशन
Tropical	ट्रॉपिकल
Temperate	टेम्परेट
Vegetative Zones	वेजीटेटिव जोन्स
Host	होस्ट
Parasite	पेरासाइट
Vector	वैक्टर
Ecosystem	ईकोसिस्टम
Pollution	पोल्यूशन
Conservation	कन्जर्वेशन
Extinct	एक्सटिंक्ट
Endangered	एन्डेन्जर्ड
Vulnerable	वल्नरेबिल
Rare	रेयर
Threatened	थ्रेटिन्ड
Indeterminate	इनडिटरमिनेट
Biodiversity	बायोडाइवर्सिटी
Environment	एन्वायरमेंट
	वंश
	जाति, प्रजाति
	उपजाति
	आकृति विज्ञान, आकारिकी
	जीव विज्ञान, जैविकी
	प्राणी विज्ञान, जन्तु विज्ञान
	वनस्पति विज्ञान
	पारिस्थितिकी परिस्थिति विज्ञान
	वर्गीकरण विज्ञान, वर्गिकी
	जीव 'पारिस्थितिकी
	जैवतकनीकी
	वितरण
	उष्णकटिबंधीय
	शीतोष्ण
	वनस्पतिय क्षेत्र
	परपोषी
	परजीवी
	रोगवाहक, संकारक
	पारितंत्र, पारिस्थितिक तंत्र
	प्रदूषण
	संरक्षण
	विलुप्त
	विपदग्रस्त, विरल
	संकटापन्न
	दुर्लभ, दुष्प्राप्य
	संकट में, सन्कटग्रस्त
	अल्पज्ञात
	जैव विविधता
	पर्यावरण

अंग्रेजी शब्द	हिन्दी शब्द
Endemic	एन्डेमिक विशेष क्षेत्रीय, स्थानीय, स्थानिक
Germplasm	जर्मप्लाज्म जनन द्रव्य
Mammal	मैमल स्तनपायी
Bird (Aves)	बर्ड (एव्स) पक्षी
Reptile	रेप्टाइल सरीसृप
Amphibia	एम्फीबिया उभयचर
Fish (Pisces)	फिश मात्स्य, मछली
Vertebrate	वर्टीब्रेट कशेरुकी, मेरुदण्डधारी
(Chordata)	(कार्डेटा)
Invertebrate	इन्वर्टीब्रेट अकशेरुकी, मेरुदण्डविहीन
(Non-Chordata)	(नान-कार्डेटा)

(ii) जैव विविधता संरक्षण

जैव विविधता संरक्षण से संबंधित मुद्दों से जुड़ी विभिन्न एजेंसियों के मध्य उचित समन्वय स्थापित करने और उसकी समीक्षा, निगरानी करने तथा उनके लिए व्यापक नीतियाँ तैयार करने के लिए 1991-92 के दौरान जैव विविधता संरक्षण की योजना प्रारम्भ की गई थी।

जैव विविधता कन्वेंशन, जिस पर भारत सहित 171 देशों ने रियो सम्मेलन के दौरान और उसके बाद हस्ताक्षर किये थे, 29 दिसम्बर, 1993 से अमल में आया। भारत ने 18 फरवरी, 1994 को कन्वेंशन पर अपना अनुसमर्थन दिया है और इस तरह भारत के लिए यह कन्वेंशन 19 मई, 1994 से अर्थात् अनुसमर्थन के 90 दिन बाद लागू हुआ है।

भारत द्वारा कन्वेंशन पर हस्ताक्षर कर लेने के पश्चात् कन्वेंशन के उपबंधों की विविधताओं का विश्लेषण करने के लिए राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर गहन विचार-विमर्श किए गए हैं। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तरों पर कार्यान्वयन किए जाने के लिए 50 कार्य बिन्दुओं का पता लगाया गया है। इनमें से 26 कार्य बिन्दुओं को अमलीजामा पहनाने के लिए गैर-सरकारी संगठनों की सक्रिय भागीदारी अपेक्षित होगी।

जून, 1992 में कन्वेंशन पर हस्ताक्षर करने के बाद विभिन्न स्तरों पर शुरू किए गए विचार-विमर्शों की प्रक्रिया आलोच्य वर्ष के दौरान भी जारी रही। कन्वेंशन में पता लगाए गए प्राथमिकता वाले 50 कार्य बिन्दुओं के लिए रिपोर्ट तैयार करने हेतु निम्नलिखित विशिष्ट क्षेत्रों

में अग्रणी संगठनों/विशेषज्ञों की पहचान कर ली गई है:

- सर्वेक्षण, पहचान और निगरानी
- मूल स्थल पर ही संरक्षण
- मूल स्थल के बाहर संरक्षण
- सतत् उपयोग
- प्रौद्योगिकी की सुलभता और उसका हस्तांतरण
- अनुसंधान, प्रशिक्षण तथा सहयोग
- कानूनी उपाय
- प्रभाव मूल्यांकन प्रक्रियाओं का सुदृढीकरण
- जैव सुरक्षा

“जैव विविधता संरक्षण की स्थिति पर व्यापक रिपोर्ट” (कम्प्रिहेन्सिव स्टेटस रिपोर्ट ऑन बायो-डाइवर्सिटी कन्जरवेशन) के खण्ड-II के मसौदे प्राप्त हो गये हैं और प्रकाशित किए जाने के लिए इन्हें अंतिम रूप दिया जा रहा है।

जैव विविधता से संबंधित मौजूदा 24 केन्द्रीय कानूनों के एक विश्लेषण से पता चलता है कि जैव विविधता के संरक्षण को सुनिश्चित करने के मौजूदा कानूनी/विनियामकी उपाय में काफी खामियां हैं। हमारे देश में आनुवंशी सामग्री के बेरोक-टोक अन्यत्र चले जाने पर जन समुदायों द्वारा प्रायः गहरी चिंता व्यक्त की जाती रही है और इसे विनियमित करने के लिए किसी व्यापक कानूनी ढाँचे के न होने से यह प्रक्रिया खुले आम जारी है। इसी बात को देखते हुए देश की स्वदेशी आनुवंशी सामग्री के हस्तांतरण को विनियमित करने के लिये कार्रवाई शुरू की गई है। कन्वेंशन के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए संबंधित मंत्रालयों, विभागों तथा सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों के साथ विचार-विमर्श करने के बाद जैव विविधता पर एक व्यापक अधिनियम बनाए जाने में शामिल किए जाने वाले मुख्य तत्वों का पता लगाया जा रहा है।

मंत्रालयों ने जैव-विविधता पर एक राष्ट्रीय कार्य योजना तैयार करने के संबंध में पहल की है। इसके लिए विशेषज्ञों का एक कोर ग्रुप गठित किया गया है। कार्य योजना का विस्तृत ढाँचा तैयार कर लिया गया है और विभिन्न कार्य बिन्दुओं को निम्नलिखित पांच प्रमुख समूहों में बांटा गया है जिनके लिए अभिनिर्धारित विशेषज्ञ कार्य योजना तैयार कर रहे हैं:

- प्रलेखन, संरक्षण, अनुसंधान तथा निगरानी।
- सतत् उपयोग, जन-भागीदारी तथा लाभों की हिस्सेदारी।
- नीति और आयोजना तैयार करना, आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना।

—संस्था वर्द्धन कार्यकलाप, प्रौद्योगिकी विकास कार्यक्रम और मानव संसाधन विकास।

—कानूनी उपाय, जैव सुरक्षा।

पर्यावरण और वन मंत्रालय ने यू एन ई पी की सहायता से बंगलौर में 22-23 अगस्त, 1994 को सार्क, एशियान तथा क्षेत्र के अन्य देशों की एक आधिकारिक स्तर की बैठक आयोजित की थी। इस अन्तराष्ट्रीय विचार गोष्ठी का मुख्य उद्देश्य कन्वेंशन के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए जैव विविधता से जुड़े मुद्दों पर क्षेत्रीय सहयोग के लिए प्रक्रिया तंत्र तैयार करना था। विचार-गोष्ठी में क्षेत्र के ग्यारह देशों नामतः अफगानिस्तान, बंगलादेश, भूटान, भारत, जापान, माले, मलेशिया, म्यानमार, फिलीपीन्स, थाइलैण्ड तथा वियतनाम ने शिरकत की। सात अन्तराष्ट्रीय संगठनों के पर्यवेक्षकों, कुछ गैर-सरकारी संगठनों, राज्य सरकारों के अधिकारियों, प्रमुख वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों ने भी इस विचार-गोष्ठी में भाग लिया।

एक भारतीय शिष्ट मण्डल ने नैरोबी में जून-जुलाई, 1994 में हुए जैव-विविधता कन्वेंशन पर अन्तर सरकारी समिति की दूसरी बैठक में भाग लिया। इस बैठक में भारत को एक कार्य दल के उपाध्यक्ष के रूप में चुना गया।

भारत ने नसाऊ, बाहामास में नवम्बर-दिसम्बर, 1994 में हुए कन्वेंशन के पक्षकार देशों के सम्मेलन की पहली बैठक में भी भाग लिया। इस अवसर पर मंत्रालय द्वारा "भारत में जैव-विविधता संरक्षण : एक दृष्टिकोण" पर एक ब्रॉशर निकाला गया। मंत्रालय द्वारा बाहामास सम्मेलन में लिए गए निर्णयों पर अनुवर्ती कार्रवाई की जा चुकी है।

मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए अन्तराष्ट्रीय कन्वेंशन

रियो-डि-जेनेरो में जून, 1992 में बुलाए गए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन के तुरन्त बाद संयुक्त राष्ट्र की आम सभा के एक संकल्प द्वारा मरुस्थलीकरण पर एक अन्तर सरकारी वार्ता समिति स्थापित की गई। इस अन्तर सरकारी वार्ता समिति के पेरिस में जून, 1994 में हुए 5 वें सत्र जिसमें भारत ने प्रतिनिधित्व किया था, के दौरान मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए अन्तराष्ट्रीय कन्वेंशन के मसौदे को अंतिम रूप दिया गया।

भारत ने पेरिस में 14 अक्टूबर, 1994 को कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं। कन्वेंशन के अनुच्छेद 9 तथा 10 के अनुपालन में प्रत्येक प्रभावित देश को मरुस्थलीकरण के लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाने और उनसे निपटने के लिए आवश्यक व्यावहारिक उपाय सुझाने तथा सूखे के कारण पड़ने वाले प्रभावों को कम करने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार करना होगा। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सचिव (पर्यावरण और वन) की अध्यक्षता में एक अन्तरमंत्रालयी समिति गठित की गई है। यह समिति मरुस्थलीकरण से निपटने तथा सूखे के कारण पड़ने वाले प्रभावों को कम करने हेतु भारत में लिए गए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार करेगी।

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से)

(iii) भारत में जीवमंडल रिजर्व के उद्देश्य

जीवमंडल रिजर्व कार्यक्रम, प्रमुख पारि-प्रणालियों के संरक्षण से अभिप्रेत है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:—

1. समग्र पादपों, प्राणियों तथा सूक्ष्म-जीवों की, प्राकृतिक पारि-प्रणालियों के भाग के रूप में आनुवंशिक अभिन्नता तथा जैव विविधता का संरक्षण करना ताकि वे स्वयं शाश्वत बने रह सकें और जीवित संसाधनों की उत्पत्ति में कोई व्यवधान न उत्पन्न हो सके;
2. ऐसे अनुसंधानों को बढ़ावा देना जो इन रिजर्वों में और इनके आस-पास के क्षेत्रों में पारिस्थितिकी के संरक्षण में मददगार साबित हों;
3. जीवमंडल की समग्र जीव जलवायु और जीव भौगोलिक परिस्थिति में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा लोगों और पर्यावरण के मध्य संबंध स्थापित करने के लिये सुविधायें प्रदान करना; और
4. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये जन-भागीदारी के अवसर जुटाना।

अब तक निम्नलिखित जीवमंडल रिजर्व स्थापित किये जा चुके हैं :—

- कर्नाटक, केरल तथा तामिलनाडु राज्यों में नीलगिरि;
- उत्तर प्रदेश में नन्दादेवी;
- अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह में ग्रेट निकोबार;
- तामिलनाडु में मन्नार की खाड़ी;
- पश्चिम बंगाल में सुन्दरबन;
- मेघालय में नॉकरेक;
- असम में मानस; और
- उड़ीसा में सिम्लीपाल।

सिम्लीपाल जीवमंडल रिजर्व, आलोच्य वर्ष 1994-95 के दौरान स्थापित किया गया है।

नीलगिरि, सुन्दरबन, मन्नार की खाड़ी, नॉकरेक, नन्दादेवी तथा अण्डमान तथा निकोबार जीवमंडल रिजर्व के लिये प्रबंध कार्य योजनायें आलोच्य वर्ष के दौरान राष्ट्रीय जीवमंडल रिजर्व समिति द्वारा स्वीकृत की जा चुकी हैं।

इन कार्य योजनाओं में निम्नलिखित शामिल हैं:—

1. पारि-विकास तथा प्रदर्शन परियोजनायें तैयार करना;
2. सामाजिक कल्याण संबंधी कार्यकलाप;
3. मूल प्रजातियों के लिये संरक्षण योजनायें और
4. शिक्षा, प्रशिक्षण तथा स्थानीय लोगों आदि में जागरूकता पैदा करना।

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से)

(iv) भारत में जीव मंडल

भारत में जीव मंडल (बायोस्फीयर रिजर्व)				
स्थल	राज्य	पायेजानेवाले जीव जन्तु	लुप्त प्राय जातियाँ	क्षेत्रफल (वर्ग कि० मी० में)
1. नीलगिरी	कर्नाटक, केरल, एवं तमिलनाडु	1. 100से ज्यादा जातियों के स्तनपायी 2. 550 जातियों के पक्षी 3. 30 जातियों के सरीसृप और उभयचर	1. नीलगिरी धार 2. साईनटेन्ड मेकाक	5520
2. नंदादेवी	उत्तरप्रदेश	1. 86 से ज्यादा जातियों के स्तनपायी 2. 534 जातियों के पक्षी 3. 45 जातियों के सरीसृप और उभयचर	1. कस्तुरीमृग 2. हिमालयन धार 3. काले भालू, धुंधला भालू 4. छां लंपर्ड	2000
3. नामधापा	अरुणाचल प्रदेश	1. 61 जातियों के स्तनपायी 2. 105 जातियों के पक्षी 3. 20 जातियों के सरीसृप	—	6500
4. उत्तराखंड (फूलोंकी घाटी)	उत्तर प्रदेश	1. 31 जातियों के स्तनपायी 2. 300 जातियों के पक्षी 3. 10 जातियों के सरीसृप 4. 15 जातियों की मछलियाँ।	—	3941
5. उत्तरी अण्डमान एवं निकोबार	अण्डमान एवं निकोबार	1. 350से 400 जातियों के स्तनपायी 2. 242 जातियों के पक्षी 3. 77 जातियों के सरीसृप 4. 10 जातियों के उभयचर 5. 750 जातियों की मछलियाँ 6. 1500 जातियों के अपृष्ठवंशी	—	1375
6. मन्नार की खाड़ी	तमिलनाडु	—	—	10500
7. काजीरंगा	असम	1. 39 जातियों के स्तनपायी 2. 105 जातियों के पक्षी 3. 20 जातियों के सरीसृप	—	600
8. मानस	असम	1. 60 जातियों के स्तनपायी 2. 312 जातियों के पक्षी 3. 42 जातियों के सरीसृप 4. 54 जातियों की मछलियाँ 5. 103 जातियों के अपृष्ठवंशी	—	2837
9. सुन्दरवन	पश्चिमबंगाल	1. 29 जातियों के स्तनपायी 2. 144 जातियों के पक्षी 3. 55 जातियों के सरीसृप 4. 7 जातियों के उभयचर	1. रायस बंगाल टाइगर 2. फिशिंग कैट 3. गैंगोटिक डोल्फिन 4. क्रिग क्रैब	9630
10. नोकरेक	मेघालय	देश के 63 प्रतिशत स्तनपायी	—	80
11. कान्हा	मध्य प्रदेश	225 जातियों के पक्षी	—	2136
12. धार परुस्थल	राजस्थान	1. 300 जातियों के पक्षी 2. 60 जातियों के स्तनपायी	बनैक बक	3100
13. कच्छ की रन	गुजरात	—	—	5000
14. ग्रेट निकोबार	अण्डमान एवं निकोबार	1. वाटर स्प्रिङ 2. निकोबार स्केवीरिस 3. काला बन्दर 4. निकोबार पिंग	निकोबार मेगापीड निकोबार कबुतर	885

('पर्यावरण' से)

(v) भारत में वन क्षेत्र (1993 मूल्यांकन)

क्रम सं०	राज्य/संघ राज्य	घने वन (घनत्व 40% से अधिक)	खुले वन (घनत्व 10-40%)	कच्छ वनस्पति (मैंग्रोव)	कुल वन क्षेत्र (वर्ग कि. मी)
1.	आन्ध्र प्रदेश	25,008	21,870	378	47,256
2.	अरुणाचल प्रदेश	54,510	14,151	—	68,661
3.	असम	15,998	8,510	—	24,508
4.	बिहार	13,172	13,415	—	26,587
5.	गोआ	995	249	3	1,247
6.	गुजरात	6,301	5,324	419	12,044
7.	हरियाणा	329	184	—	513
8.	हिमाचल प्रदेश	9,565	2,937	—	12,502
9.	जम्मू तथा कश्मीर	10,953	9,490	—	20,443
10.	कर्नाटक	24,852	7,491	—	32,343
11.	केरल	8,421	1,915	—	10,336
12.	मध्य प्रदेश	95,537	39,859	—	135,396
13.	महाराष्ट्र	25,680	18,024	155	43,859
14.	मणिपुर	5,307	12,314	—	17,621
15.	मेघालय	3,305	12,464	—	15,769
16.	मिजोरम	4,238	14,459	—	18,697
17.	नागालैण्ड	3,487	10,861	—	14,348
18.	उड़ीसा	27,151	19,799	195	47,145
19.	पंजाब	481	862	—	1,343
20.	राजस्थान	3,581	9,518	—	13,099
21.	सिक्किम	2,395	724	—	3,119
22.	तामिलनाडु	9,422	8,283	21	17,726
23.	त्रिपुरा	1,819	3,719	—	5,538
24.	उत्तर प्रदेश	22,965	10,996	—	33,961
25.	पश्चिम बंगाल	3,362	2,705	2,119	8,186
26.	अण्डमान और निकोबार	6,567	91	966	7,624
27.	चण्डीगढ़	4	1	—	5
28.	दादरा और नगर हवेली	159	47	—	206
29.	दमन और दीव	—	3	—	3
30.	दिल्ली	12	10	—	22
31.	लक्षद्वीप	—	—	—	—
32.	पंडिचेरी	—	—	—	—
योग		3,85,576	2,50,275	4,256	640,107

('वन स्थिति रिपोर्ट 1993 ' से)-

(vi) भारत में सरक्षित नमभूमि

अब तक 21 नमभूमि क्षेत्रों का उनके गहन संरक्षण तथा प्रबंध के 1 मित पता लगाया जा चुका है। ये नम भूमि क्षेत्र निम्न प्रकार हैं:

नमभूमि का नाम	राज्य
कोल्लेर	आन्ध्र प्रदेश
बुल्लर और से मोरारी	जम्मू और कश्मीर
चिल्का	उड़ीसा
लोकतक	मणिपुर
भोज	मध्य प्रदेश
साम्भर और पिछोला	राजस्थान
सस्थमकोटा और अष्टमुडी	केरल
नालसरोवर	गुजरात
हरिके, कांजली तथा रोषड़	पंजाब
ठजनी	महाराष्ट्र
रेणुका, पोंगबांध टैंक तथा चन्द्रताल	हिमाचल प्रदेश
काबर	बिहार
पूर्वी कलकत्ता नमभूमि	पश्चिम बंगाल
सुखना	चण्डीगढ़

अंतराष्ट्रीय महत्व की नमभूमि विशेषकर जल कुक्कट आवास पर हुये कन्वेंशन, जिसे अगमतौर पर रामसर कन्वेंशन (1971) कहा जाता है, पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में से भारत एक है। कन्वेंशन के अंतर्गत निम्नलिखित 6 नमभूमि क्षेत्रों को शामिल किया गया है:

- चिल्का (उड़ीसा)
- केवलदेव घाना राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान)
- साम्भर (राजस्थान)
- बुल्लर (जम्मू और कश्मीर)
- लोकतक (मणिपुर)
- हरिके (पंजाब)।

(vii) भारत में मेंग्रोव वन क्षेत्र

राज्य	क्षेत्रफल (वर्ग कि.) *	क्षेत्रफल (वर्ग कि.) **
पश्चिम बंगाल	4,200	1,619
अन्डमान एवं निकोबार	1,190	770
उड़ीसा	150	187
आन्ध्र प्रदेश	200	480
तामिलनाडु	150	90
गुजरात	260	1,166
महाराष्ट्र	330	138
गोआ	200	15
कर्नाटक	60	19
केरल	छिटपुट	छिटपुट
योग	6,740	4,474

* भारत सरकार की स्टेटस रिपोर्ट 1987 से।

** भारतीय रिमोट सेंसिंग डाटा 1993 से।

(‘शेवैयाना’ 1995 से)

(viii) भारतीय प्राणियों की विशेष क्षेत्रीय तथा संकटग्रस्त जाति-संख्या

प्राणी वर्ग	जातियों की कुल संख्या	विशेष क्षेत्रीय (एन्डेमिक) जातियाँ	प्रतिशत	संकटग्रस्त (थ्रेटिन्ड) जातियाँ
स्तनपायी	372	38	10.21	77
पक्षी	1,228	69	5.61	55
सरीसृप	446	214	47.98	22
उभयचर	204	110	53.92	1
कीट (कीड़े)	53,430	16,214	30.34	?
मृदुकवची (शंख, सीप)	1,723	967	56.12	?

(भारतीय प्राणि सर्वेक्षण के प्रकाशनों से)

(ix) भारत में राष्ट्रीय उद्यान (नेशनल पार्क) एवं अभयारण्य (सेंक्चुरी)

राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र	राष्ट्रीय उद्यान की संख्या	कुल क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	अभयारण्य की संख्या	कुल क्षेत्रफल (वर्ग कि. मी.)
आन्ध्र प्रदेश	1	352.62	20	12084.99
अरुणाचल प्रदेश	2	2468.23	9	6777.75
असम	2	930.00	9	1381.58
बिहार	2	567.32	19	4624.3
गोआ	1	107.00	4	335.43
गुजरात	4	479.67	21	16744.27
हरियाणा	1	1.43	9	229.18
हिमाचल प्रदेश	2	1295.00	29	4576.92
जम्मू और कश्मीर	4	3810.07	16	10163.67
कर्नाटक	5	2472.18	20	4229.213
केरल	3	536.52	12	1810.36
मध्य प्रदेश	11	6143.12	32	10847.29
महाराष्ट्र	5	956.45	24	14309.51
मणिपुर	2	81.80	1	184.85
मेघालय	2	386.70	3	34.207
मिजोरम	2	250.00	3	720.00
नागालैण्ड	1	202.02	3	34.35
उड़ीसा	2	1212.70	17	6175.49
पंजाब	—	—	6	294.82
राजस्थान	4	3856.53	22	5694.02
सिक्किम	1	850.00	4	161.1
तामिलनाडु	5	307.86	13	2527.29
त्रिपुरा	—	—	4	603.62
उत्तर प्रदेश	7	5409.05	28	8078.52
पश्चिम बंगाल	5	1692.65	16	1064.29
अण्डमान और निकोबार द्वीप	6	315.61	94	437.16
चण्डीगढ़	—	—	1	25.42
दादरा और नगर हवेली	—	—	—	—
दमन और दीव	—	—	1	2.18
दिल्ली	—	—	1	13.2
लक्षद्वीप	—	—	—	—
पोंडिचेरी	—	—	—	—
योग	80	34684.53	441	114164.5

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की सूची से)

[विस्तृत जानकारी के लिये परिशिष्ट-1 तथा - 2 देखें - सं०]

(x) भारत में बाघ रिजर्व

क्र० सं०	बाघ रिजर्व का नाम	राज्य	कुल क्षेत्रफल (वर्ग कि० मी० में)
1	बांदीपुर	कर्नाटक	866
2.	कार्बेट	उत्तर प्रदेश	1316
3.	कान्हा	मध्य प्रदेश	1945
4.	मानस	असम	2840
5.	मेलघाट	महाराष्ट्र	1597
6.	पलामू	बिहार	1026
7.	रणथम्भौर	राजस्थान	1334
8.	सिम्लिपाल	उड़ीसा	2750
9.	सुन्दरबन	पश्चिम बंगाल	2585
10.	पेरियार	केरल	777
11.	सरिस्का	राजस्थान	866
12.	बक्शा	पश्चिम बंगाल	759
13.	इन्द्रावती	मध्य प्रदेश	2799
14.	नागार्जुनसागर	आन्ध्र प्रदेश	3568
15.	नामधापा	अरुणाचल प्रदेश	1985
16.	दुधवा	उत्तर प्रदेश	811
17.	कालाकड-मुन्दनथुरै	तमिलनाडु	800
18.	वाल्मीकि	बिहार	840
19.	पेंच	मध्य प्रदेश	758
20.	टाडोबा-अन्धेरी	महाराष्ट्र	620
21.	बांधवगढ़	मध्य प्रदेश	1162
22.	पन्ना	मध्य प्रदेश	542
23.	दम्फा	मिजोरम	500
योग			33046

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से)

(ख) भारत की बड़ी नदियाँ

क्र० सं०	नदी का नाम	लंबाई (कि. मी.)	जलग्रहण क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)	वार्षिक जल का बहाव (लाख घनमीटर)	उद्गम स्थल	अंत स्थल
1.	गंगा	2,525	8,61,404	49,34,000	गंगोत्री, उत्तरकाशी, उत्तरप्रदेश	बंगाल की खाड़ी
2.	सिंधु	1,270	3,21,290	4,19,550	मानससरोवर झील, तिब्बत	अरब सागर
3.	गोदावरी	1,465	3,12,812	10,50,000	नासिक, महाराष्ट्र	बंगाल की खाड़ी
4.	कृष्णा	1,400	2,58,948	6,76,750	महाबलेश्वर, महाराष्ट्र	बंगाल की खाड़ी
5.	ब्रह्मपुत्र	7,20	1,87,110	51,04,500	कैलाश पर्वत, चीन	बंगाल की खाड़ी
6.	महानदी	857	1,41,600	6,66,400	रायपुर, मध्यप्रदेश	बंगाल की खाड़ी
7.	नर्मदा	1,312	9,87,96	4,07,050	अमरकंटक, मध्य प्रदेश	अरब सागर
8.	कावेरी	800	87,900	2,09,500	कुर्ग, कर्नाटक	बंगाल की खाड़ी
9.	तापी	724	65,145	1,79,820	बेतूल, मध्य प्रदेश	अरब सागर की खाड़ी
10.	पेन्नार	597	55,213	32,380	चेन्नकैसवा पहाड़ी, कर्नाटक	बंगाल की खाड़ी
11.	झाड़मणी	800	39,003	1,83,100	राँची, बिहार	बंगाल की खाड़ी
12.	माही	533	34,842	85,000	रतलाम, मध्य प्रदेश	अरब सागर की खाड़ी
13.	साबरमती	300	21,674	32,000	अरावली पहाड़ियाँ, गुजरात	अरब सागर की खाड़ी

('परिचय' से)

(xii) भारत की प्रदूषित नदियाँ

नदी	प्रदूषित खंड
यमुना	दिल्ली से इटावा; दिल्ली, मथुरा और आगरा की शहर सीमा।
चंबल	नागदा और कोटा के बाद ।
काली	मोदीनगर के बाद से गंगा में मिलने तक।
हिंडन	सहारनपुर से यमुना के मिलने तक।
खान	इंदौर की शहर सीमा; इंदौर के बाद।
क्षिप्रा	उज्जैन की शहर सीमा; उज्जैन के बाद।
दामोदर	धनबाद के बाद से हल्दिया तक।
गोमती	लखनऊ से गंगा में मिलने तक।
कावेरी	तालकावेरी से मैसूर की सीमा से पांच किलोमीटर आगे तक; के. आर. सागर बांध से होगनेच्छल तक; पगलूर से ग्रांड एनीकट होकर कुंभाकोनम तक।
भोगडोई	जोरहाट शहर की सीमा।
इंफाल	इंफाल शहर की सीमा।
साबरमती	अहमदाबाद से साबरमती आश्रम होकर वाळुथा तक।
सतलुज	लुधियाना से हरिके।
सुवर्णरेखा	हटिया बांध से भारगोरा।
गोदावरी	नासिक से नांदेड; नासिक और नांदेड की शहर सीमा; तथा रामगुंडम से भद्राचलम।
कृष्णा	कराड से सांगली; धोमबांध से नरसरोबाड़ी; नागार्जुन सागर बांध से रेपेला तक।
भद्रा	उद्गम से भद्रा बांध तक।
ब्राह्मणी	अंगुल से भुवान तक।
तुंगा	तीर्थाहली से भद्रा में मिलने तक।
नर्मदा	जबलपुर शहर में।
तापी	नेपानगर से बुरतानपुर तक।
बेतवा	मंडीदीप से विदिशा तक।
ब्यास	मनाली से मंडी होकर हिमाचल प्रदेश की सीमा तक।

(xiii) भारत में नमक, प्रभावित मिट्टी के क्षेत्र

राज्य	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)
आन्ध्र प्रदेश	240,000
बिहार	4,000
गुजरात	1,214,000
हरियाणा	526,000
कर्नाटक	404,000
केरल	16,000
मध्य प्रदेश	242,000
महाराष्ट्र	534,000
पंजाब	404,000
उड़ीसा	688,000
राजस्थान	728,000
तामिल नाडु	4,000
उत्तर प्रदेश	1,295,000
पश्चिम बंगाल	850,000
दिल्ली	16,000
योग	7,165,000

(‘कॉपेक’ 1995 से)

(xiv) विश्व और भारत में प्राणि-जातियों की संख्या

प्राणी वर्ग	भारत में	विश्व में
प्रोटोजोआ	2577	31290
पोरीफेरा	516	5100
साइफोनोफेरा	118	180
नीडेरिया	850	10000
टीनोफोरा	10	100
प्लेटीहेलमिन्थस	1650	17500
मीसोजोआ	6	50
रोटीफेरा	310	2550
गेस्ट्रोट्रिका	88	500
काइनोरिका	10	99
निमेटोडा	2850	25000
एकेन्थोकिफेला	110	800
साइपन्कुला	38	202
मौलस्का	5050	66535
इक्यूरा	33	127
टार्डीग्राडा	30	370
एनीलीडा	840	12700
ओनाइकोफोरा	1	100
आर्थ्रोपोडा		
क्रस्टेशिया		
अनोस्ट्राका	72	175
नोटोस्ट्राका	11	15
कोंकोस्ट्राका	27	180
क्लेडोसिरा	90	400
ओस्ट्राकोडा	120	2000
कोपीपोडा	540	4500
ब्रैक्यूरा	4	75
सिरिपीडिया	104	750

क्रमशः

प्रजाती वर्ग	भारत में	विश्व में
आइसोपोडा	200	4000
एम्फीपोडा	143	3600
डेकापोडा	1535	8500
स्टोमेटोपोडा	124	180
योग में कुल	250	14465
इन्सेक्टा (कीट)		
बाइसान्यूरा	23	1250
डार्फ्यूरा	16	355
प्रोटूरा	20	260
कोलेम्बोला	200	5000
इफीमेराटेरा	94	2146
ओडोनेटा	491	5500
प्लेकोटेरा	113	2100
आर्थ्रोटेरा	759	14491
फेसमीडा	60	2500
डर्मेटेरा	320	1800
एम्बीओटेरा	33	200
ब्लैटेरिया	156	4200
मेन्टोडिया	161	2000
आइसोटेरा	300	2000
सोकोटेरा	85	2500
थीरेटेरा	400	3000
हेमिटेरा	6500	80000
बाइसानोटेरा	691	6000
न्यूरोटेरा	315	5000
कोलियोटेरा	15000	350000
स्ट्रेपसिटेरा	8	300
मेकोटेरा	15	180
साइफोनेटेरा	52	2000
डिटेरा	6093	96600

प्राणी वर्ग	भारत में	विश्व में
लेपिडोप्टेरा	13000	142500
ट्राइकोप्टेरा	812	7000
हाइमेनोप्टेरा	5000	100000
योग में सुधार	14293	14028
पिक्नोगोनीडा	16	600
सिम्फाइला	4	120
डिप्लोपोडा	162	7500
काइलोपोडा	100	3000
मेरोस्टोमाटा	2	4
एरेकनीडा		
स्कोरपिओनीडा	102	1500
पेल्योग्राडी	25	85
सोलपूजीडा	15	900
ओपीलिओन	167	3500
स्यूडोस्कोरपिओनीडा	100	2300
एकेरी	2025	36800
एरेनी (मकड़ी)	1015	35000
फोरोनीडा	3	11
ब्रायोजोआ	170	4000
एन्टोप्रोक्टा	10	60
ब्रेकिओपोडा	3	300
कीटोग्राथा	30	100
इकाइनोडरमाटा	765	6226
हेमीकोरडेटा	12	118
कोरडेटा		
प्रोटोकोरडेटा	116	2173
पिसेज (मत्स्य)	2546	21723
एम्फीबिआ (उभयचर)	204	5145
रेप्टीलिया (सरीसृप)	446	5680
एवज (पक्षी)	1228	9672
मेमेलिया (स्तनपायी)	372	4629
योग	81257	1217612

(भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के प्रकाशनों से)

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

उत्तर पूर्व भारत में जैविक विविधता के लिये खतरे तथा लक्ष्यों की प्राप्ति

स० ज० स० हट्टर

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण
पूर्वीय प्रादेशिक केन्द्र
शिलांग

जे. आर. बी. अल्फ्रेड

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण
मुख्य कार्यालय
कलकत्ता

बी. टी. डारलांग

क्षेत्रीय कार्यालय
वन एवं पर्यावरण मंत्रालय
शिलांग

संसार की जैविक विविधता

मानव इतिहास की अवधि में प्राकृतिक संसाधनों के असंमित व्यवहार में लाने का विरोधी रहा है। सभी स्रोतों, जीवांत संसाधनों या जैविक विविधता को मानव के द्वारा अत्यधिक दोहन से गम्भीर खतरा है।

जीवित प्राणियों की संरचना, जाति और परिवेश में विविधता, वैज्ञानिकता, शैक्षणिकता, सांस्कृतिक, मनोरंजनात्मक और ज्ञानेन्द्रिय बोधात्मक कारणों के लिए अमूल्य है। प्राकृतिक विकास और जीवन मंडल के रहन-सहन या जीवन को संतुलित बनाये रखने के लिए विविधता का होना बहुत जरूरी है। संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या के संरक्षण, पोषण हेतु जैविक विविधता का प्रयोग आहार, स्वास्थ्य और अन्य विभिन्न आवश्यकताओं के लिए अति महत्वपूर्ण है।

जैविक विविधता "पृथ्वी पर जीवन" का ही एक पर्याय नाम है। क्योंकि सभी वस्तुएं और सेवाएँ जो इसमें निरंतर शक्तिशाली और अंतरनिहित हैं, जैविक विविधता संसार की सबसे मूलभूत पूंजी अंकित की जाती है।

संसार की जैविक विविधता की अनुमानित संख्या 50 लाख से 3 करोड़ जातियों में से केवल 14-17 लाख को अंकित किया गया है। परन्तु यह अविवादित है कि जीव विभिन्नता को खो देना एक बहुत बड़ी चेतावनी है, खासकर प्रगतिशील देशों की आर्द्र सीमा रेखा, जहाँ भूवासी विविधता उच्चतर है। इस तेजी से हो रही कमी की प्रवृत्ति जैविक विविधता के लिए एक चेतावनी है, जो कि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्ता का विषय बन गई है।

भारतीय उपमहाद्वीप में जीव विविधता का खतरा विभिन्न कारणों से बहुत ज्यादा है, विशेषकर उन कारणों से, जो मानव गतिविधियों से उत्पन्न हो रहे हैं। इसलिए भारत में जैविक विविधता के बढ़ रहे विभिन्न प्रकार के मानव प्रवृत्त खतरों को पहचानना है और जैविक विविधता के संरक्षण के लिए देश में चलाए जा रहे कार्यों के उद्देश्यों का सारांश समीकरण करना है।

भारत में जैविक विविधता

भारत संसार के 12 महाविविध देशों में से एक है। यह जैविक विविधता, पारिस्थितिक तंत्र, जाति और अनुवंशिक विभिन्नता के पहलुओं में काफी समृद्ध है। लगभग 329 मिलियन हैक्टेयर भूगोलिक क्षेत्र के साथ, भारत अकेले ही विभिन्न परिवेश में बर्फीले पहाड़ों से गर्म और ठण्डे रेगिस्तान, सदाबहार वनों से तट्टीय दलदल तक और संभवतः प्रत्येक पारिस्थिति इसमें घिरी हुई है। भारत वास्तव में तीन महान जीव भूगोलज्ञ राज्यों जैसे इन्डोमलायान, इयूरेशियन और अफ्रीकी उष्ण कटिबंध के मिलने का खास स्थल है। इसलिए भारत के पास इन तीन क्षेत्रों में से प्रत्येक के कई रूचिकर प्राणी हैं। साथ ही कई प्रकार की जातियां इस देश के लिए स्थानीय हैं।

प्राकृतिक स्थानों की विविधता से भारत को 10 जीव भूगोलिक पृथक खंडों में विभक्त किया जा सकता है; जैसे हिमालय, रेगिस्तान, अर्धबंजर, पश्चिमी घाट, दक्षिण प्रायदीप, गंगा के मैदान, उत्तर-पूर्व भारत, समुद्र-तट्टीय भाग और द्वीप समूह। इन जैवीय वनखंडों के आर्द्रभूमि, रेगिस्तान, समुद्र तटीय और ज्वार नदमुखीय प्रभागों में भारत के 422 वन्य पशुविहार, 75 राष्ट्रीय उद्यान, 11 जीव मण्डलीय वृत्त बनाये गये हैं , इसमें 6 रामसर नमभूमि स्थल व 5 संसार वंशागति स्थल हैं।

दस्तावेजों के आधार पर प्राणियों और पौधों की जातियों की भारत से विभिन्नता, अनुमानतः 75000 से अधिक प्राणी और 45000 से अधिक पौधों की जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें लगभग 15,000 फूलों वाले पौधों का वर्णन है। अन्य प्रलेखी पौधों में अनुमानतः 5,000 काई, 1,6000 शैवाक (लाइकेन), 20,000 कवक, 2,700 ब्रायोफाइट और 600 टेरिडोफाइट (संवहनी क्रिप्टोगम) की जातियां सम्मिलित हैं। पशुओं की जातियों में 50,000 कीट, 4,000 मृदु कवचीय, 2,000 मछलियां, 140 जलस्थलचरी, 420 रेंगनेवाले जन्तु, 1,200 पक्षी, 372 स्तनधारी जन्तु शामिल हैं। प्रायः यह माना जाता है कि आगे के समय में बिना रीढ़वाले जन्तुओं की भारत में लगभग 1,50,000-2,00,000 प्राणि जातियों की वृद्धि होने की आशा है।

उत्तर पूर्व भारत में जैविक विविधता

भारत विशेषकर उत्तर पूर्व राज्य, संसार के उन 18 समीकरण “गर्म स्थल” वाले क्षेत्रों में से एक है, जिसे जैविक विविधता के खतरे का सामना करना पड़ा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

भारत ने, वैदिक शासन व्यवस्था अपना कर नियमानुसार समय-समय पर जैविक विविधता को सुरक्षित रखने में सहायता की है। भारतीय वन निगम (पालन-पोषण, रक्षा) नियम 1972, वन संरक्षण नियम 1986 आदि कुछ उदाहरण हैं। अविभाजित भारत जिसमें पाकिस्तान और बांग्ला-देश सम्मिलित हैं सन 1891 में कुल जनसंख्या 282 मिलियन (28.2 करोड़) थी। एक सौ साल बाद 1991 में अकेले भारत की आबादी 870 मिलियन (8.7 करोड़) थी। यद्यपि कुछ विशेषज्ञों के अनुसार आबादी कोई खतरा नहीं है, इसके स्थान केवल अर्थशास्त्र के आधार पर और अच्छे बाजार के पैमाने पर ही उत्पादकता को नहीं बढ़ाया जा सकता है। परन्तु ज्यादा लोगों के ज्ञान और तकनीकी उन्नति के अतिरिक्त सहयोग के द्वारा भी बढ़ाया जा सकता है। तथापि कारण यह है कि मानव आबादी सीमित साधनों के विरुद्ध खुरदरी है, और मानव आबादी पृथ्वी की धारक क्षमता को तेजी से तहस-नहस कर रही है। वास्तव में पर्यावरण सम्बंधी दुर्गति और भूख यह संकेत करते हैं कि कुछ स्थानों पर मानव आबादी पहले ही पृथ्वी की क्षमता से बाहर हो चुकी है।

जैविक विविधता को अनिवार्यतः दो और कारणों से खतरा है जैसे प्राकृतिक और मानव प्रवृत्त। प्राकृतिक खतरों या घटनाओं में ज्वालामुखीय घटनाएँ, भूकंप, प्राकृतिक बाढ़ें, महामारियाँ और—यहां तक कि जंगली पशुओं द्वारा किसी एक ही दिशा में ज्यादा चारा चराई करना सम्मिलित है। मानव प्रवृत्त खतरों में विभिन्न मूल स्तंभों के द्वारा साधनों का उत्पादकीय प्रभाव, अधिक्रमण संदोहन शोषण करना, व्यक्तिगत द्वारा प्रवृत्त प्राकृतिक साधनों का विनाश, प्रवधन, मानव साधनों का प्रबंध, सामाजिक, राजनैतिक प्रकरण, व्यापार और पर्यावरणीय राजनीतिक और इसी तरह के अन्य कारण हैं।

विकासात्मक प्रभाव तथा खतरे

उत्तर-पूर्व भारत में जैव विविधता की सुरक्षा को मुख्य खतरा आधुनिक विकासात्मक क्रियाओं के प्रभाव से है। इन क्रियाओं में मुख्यतः वन भूमि को वनरहित उद्देश्यों के लिए बदलना शामिल है। इनमें सड़कें, उच्चमार्ग आदि बनाना, रेलवे मार्ग, परिवहन, उत्पादन, बांध और तालाब बनाना, खादान व सुरंगें (विशेषकर खुली खुदाई) तेल के बरमे, उद्योगीकरण (विशेषकर वनों पर आधारित सिलमिट पदार्थ) प्रदूषण इत्यादि सम्मिलित हैं।

अधिक्रमण

उत्तर-पूर्व भारत में राष्ट्रीय पार्क, वन या आर्द्रभूमि जैविक विविधता के संरक्षण के लिए एक गम्भीर खतरा पैदा कर रहा है। सुरक्षित स्थानों के आस-पास भारी बंदोबस्त के कारण अधिक्रमण हो रहा है तथा प्रत्यक्षतः जनसंख्या की वृद्धि का कारण विस्तारित बंदोबस्त के कारण होता है जैसे अधिक्रमण कृषि एक धान्य कृषि, वाणिकी प्रयोग और अकाष्ठ जाति के

वृक्षों को साफ करने, खेती स्थानांतरण, चराई आदि पालतू पशुओं द्वारा अधिक्रमण, आवास, विनाश या बदलाव तथा चाय, कॉफी, रबड़, यूकोलिप्टस, टीक और इसी तरह के अन्य पौधों से होता है। इसी तरह सूक्ष्म जलवायु, या स्थानीय जलीय परिवर्तन में वृद्धि के कारण, आवासीय परिवर्तनों से भी जैविक विविधता को भारी खतरा हो रहा है। इसके अतिरिक्त जीव विभिन्नता को आर्द्रभूमि, नदियों के बढ़ने से भूमि के कटाव और गाद मल एवं सीधे अधिक्रमण के परिणाम स्वरूप या मनुष्य द्वारा जल ग्रहण या नदी पात्र आदि से खतरा है।

शोषण

उत्तर-पूर्व भारत में जैव विविधता का शोषण विभिन्न तरीकों से जैसे अधिक्रमण या अनाधिकृत शिकार करना, आहार में प्रयोग होना, छात्रों द्वारा अध्ययन के लिए नमूने एकत्रित करना या यहाँ तक कि वैज्ञानिक अन्वेषण, वन्य जन्तुओं का अवैध व्यापार और इसी तरह के शोषण हैं। कुछ स्थानों पर मछलियाँ पकड़ने के लिए नदियों में जहर डाला जाता है। परन्तु यह अन्य जीवित वस्तु (जन्तु) को भी मार देता है। मनुष्य द्वारा प्रवृत्त यह एक गम्भीर खतरा है। अवैध शिकार करना कुछ एक बचे हुए आकर्षक जीव जन्तुओं के लिए गंभीर खतरा है। हाथी दांत, सींग (गेंडा), बर्फ में पाए जाने वाले चीते, तेन्दुआ, बिड़ाल, आदि की खालों (चर्म/सांप) पंख (मोर के) और पक्षियों जैसे, पहाड़ी मैना आदि का अवैध व्यापार लगातार जारी है।

मनुष्य द्वारा प्रवृत्त विपत्ति

उत्तर-पूर्व भारत में मानव-प्रवृत्त विपत्तियों में दावानल है। उत्तर पूर्व भारत में वन कटाई के कारण बाढ़ों में वृद्धि हुई है जिससे वन्य जन्तुओं और निम्न भूमि प्रदेश में सुरक्षित स्थानों में जैसे कि काजीरंगा राष्ट्रीय पार्क के गेंडा और अन्य पशुओं को गंभीर खतरा है। हाल के वर्षों में उत्तर पूर्व में बांधों की दरारों से अनगिनत दुर्गति और वन्य जन्तुओं की हानि हुई है। जिसके कारण जैव विविधता को उल्लेखनीय घाटा हो रहा है। दावानल, विशेषकर उन्हें जो स्थानांतरण खेती से सम्बंधित हैं, उत्तर पूर्व जैविक विविधता के लिए लगातार एक गंभीर खतरा है।

प्राकृतिक साधनों का प्रबंध

वर्तमान प्राकृतिक साधनों के प्रबंध के व्यवहारिक प्रयोगों में बहुतों का उत्तर पूर्व में जैविक विविधता पर विपरीत प्रभाव भी हो सकता है। उदाहरण के तौर पर विजातीय जाति का प्रवेश यूकेलिप्टस, उत्तर पूर्व भारत के बहुत से भागों में पैत्रिक जातियों के लिए बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा,

विदेशी रोग का प्रवेश (विशेषकर विदेशी जाति के पशुओं का समाविष्ट होना) क्षतिपूर्ण हो सकता है, दूसरों का शिकार करने जैसे अस्वस्थ सम्बंध इत्यादि। वर्णसंकर जातियों का अधिक प्रयोग या अधिक बलपूर्वक अप्रतिबोधित संरक्षण या वर्णसंकर जैसे जातियों की, पैत्रिक जातियों के खर्चे पर अधिक वृद्धि करना अप्रतिबंधित संरक्षण की ओर ले जायेगा। उत्तर पूर्व भारत में झुम खेती आदिकाल से प्रचलित है जिसके द्वारा वनों के लगातार कटाव द्वारा जैविक विविधता को सम्पूर्ण खतरा है। बढ़ती हुई सिकुड़ने और खण्डित प्राकृतिक आवास का बंटवारा, पशुओं को मारने वालों के संबंध, जंगली जन्तुओं को खाने की कमी और पक्षियों के प्रवास को असंतुलित कर सकता है।

मानव संसाधनों का प्रबन्धन

उत्तर पूर्व में जैविक विविधता को सबसे गम्भीर खतरा मानव संसाधनों के कुप्रबंध से संबंधित है। जैसे अनुपयुक्त भूमि का उपयोग, प्रभावी प्रशासन के व्यवहार या पद्धति की कमी, प्रशासनिक संसाधनों की कमी इत्यादि। उत्तर पूर्व भारत के बहुत से भागों में जीव विविधता के शीघ्र समाप्तिकरण में साधारण अज्ञानता के मूल और जीव विविधता के महत्व और लालची लोगों का नाकारात्मक सोच-विचार का भी योगदान है। दोबारा पर्यटन का अत्यधिक प्रभाव, विशेषकर हिमालय के पहाड़ों में, जीव विविधता को गंभीर खतरा हो सकता है। और इन सबसे ज्यादा परस्पर विरोधी मांग और मनुष्यों का जीवित संसाधनों पर निर्भर होना, जनसंख्या के सदा बढ़ते हुए दबाव जैसे गंभीरतम खतरे उत्तर पूर्व भारत में जीव विविधता को हैं।

सामाजिक राजनैतिक विषय

नागरिक, जन अशांति, शस्त्र संघर्ष तथा विभिन्न भागों में जमीन के ऊपर संघर्ष उत्तर पूर्व में जैविक विविधता की सुरक्षा को लगातार गंभीर खतरा है। उदाहरणार्थ उत्तर पूर्व के कुछ राज्यों में लड़ाई में लगे हुए उग्रवादी वन्य स्थलों या सुरक्षित वनों का प्रयोग अपने छिपने वा आधार शिविर के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। उससे भी वन्य जीवन को गम्भीर खतरा हो रहा है। बहुत से सुरक्षित भागों के आकार में सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव के कारण हो रही कमी, सुरक्षित वनों में वैध आधार पर बदलाव या राजनैतिक प्रभाव के कारण सुरक्षित क्षेत्रों का निर्देशन भी उत्तर पूर्व में जीव विविधता की संरक्षता को लगातार खतरा हो रहा है।

व्यापार संधियाँ और पर्यावरणात्मक राजनैतिक सिद्धांत

चालू पर्यावरणात्मक राजनीतिक सिद्धांत में विभिन्न समूह और कार्यकर्ता जैसे कि देश राज्य, अंतर्राष्ट्रीय/राष्ट्रीय गैरसरकारी संगठन संयुक्त/व्यापारिक संगठन को सामान्य व्यापार अनुबंध और

शुल्क सूची जीव विविधता के संरक्षण को गंभीर इंडेंट में लपेट सकते हैं। जैविक विविधता को कौन अपनाता है? क्या मानसिक योगदान जो इन संसाधनों पर अपनत्व स्थापित कर परिमित या अभिलेख का मंत्र स्थापित कर सकता है? परम्परागत किसानों, स्वदेशीय लोगों के द्वारा ज्ञान और अनुवंशगत संसाधनों को निष्पक्ष और स्वच्छ अनुदान के योगदान की विधियाँ क्या हैं? ऐसे अनसुलझे प्रश्न अभी तक मानसिक, धन सम्पत्ति नियम पर विचार-विमर्श के लिए सामान्य अनुबंध, व्यापार और शुल्कसूची में शेष हैं।

प्रतिभासम्पन्न सम्पत्ति अधिकार विशेषतः गाट के द्वारा निम्न प्रतिबंधों पर धोपा जा रहा है:

(1) पहला प्रतिबंध सामान्य अधिकारों से निजी अधिकारों तक जो कि प्रतिभासम्पन्न सम्पत्ति अधिकार केवल निजी अधिकारों के रूप में मान्यता दी गई। जिसके अनुसार सभी प्रकार के ज्ञान, विचार और नवीकरण बाहर निकाल दिये गये, जिन्होंने गांवों के किसानों के बीच, वनों में आदिवासी लोगों के बीच “साधारण प्रतिभासम्पन्न” का स्थान पाया।

(2) प्रतिभासम्पन्न सम्पत्ति अधिकारों के दूसरा प्रतिबंध यह है कि वे केवल तभी मान्य होंगे जब ज्ञान और नवीकरण लाभ उत्पन्न करें, न कि जब इन्हें सामाजिक आवश्यकतायें प्राप्त हों।

(3) सबसे आवश्यक प्रतिबंध जो प्रतिभासम्पन्न सम्पत्ति अधिकार ने प्राप्त किया है वह पूर्णव्यापार संबंधी है, जिसके द्वारा निषेध एकाधिकार के परम्परागत समितियों में उन्नत और तीसरी दुनियाँ के देशों के मान्यता नवीकरण से स्थानीय और घरेलू स्तर पर अनेक देशों/निगमों, बहुमुखी व्यापार संगठनों में स्थान पा लिया है।

तीसरी दुनिया और उन्नत देशों में पारस्थितिक और आर्थिक दरिद्रता दोनों के कारण प्रतिभासम्पन्न सम्पत्ति अधिकार और विशिष्ट प्रतिबंधों के कारण जीव विविधता और इसके उपयोग के बारे में ज्ञान विचार से पहले जन भूसम्पत्ति धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। भारतीय किसानों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणात्मक अधिनियमों के विरोध में शुरु किया गया प्रतिरोध सम्भवतः देश की जैविक विविधता के संरक्षण पर एक लम्बी अवधि के समझौते की ओर इशारा हो सकता है। दूसरी तरफ गाट समझौते को अपना लेने से जैव विविधता में आर्थिक व्यवस्था पर अतिरिक्त लाभ हो सकता है। वाणिज्यिक तौर पर जैविक विविधता के शोषण के लालच में संरक्षण को बिना उचित ध्यान दिये बगैर व्यापार पद्धति में सम्मिलित करना, जनन उत्पत्ति को नष्ट करने की है।

जैविक विविधता के संरक्षण के लिए प्रमुख लक्ष्य कार्य

उत्तर पूर्व भारत में जैविक विविधता के संरक्षण के लिए जनता और पद्धति बनाने वालों, दोनों में ही विचारणीय चिन्ता का विषय है। राष्ट्रीय कुशल संरक्षण और पर्यावरण और उत्पादन 1992 में पद्धति सारणी प्रकाशन द्वारा स्थापित प्रवृत्ति झुकाव और गोलाकार जीव विविधता संरक्षण के चिन्हों पर सरकारी तौर पर चिन्ता व्यक्त की गई है। तब से उत्तर-पूर्व भारत जैव

विविधता के संरक्षण के लिए प्रमुख लक्ष्यों, कार्य बिन्दुओं और कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने की प्रक्रिया की पहचान करने में क्रियाशील है। एक क्षेत्रीय स्तर की कार्यशाला फरवरी 1992 में आयोजित की गई और कुछ परामर्श कार्यशालाएँ मण्डल स्तर पर नियम बनाने वालों, गैर सरकारी संगठनों और बिरादरी नेताओं के बीच समय समय पर आयोजित की गईं।

उत्तम आवास एवं खतरे में पड़ी जातियों का बचाव

पहली प्रमुखता जिसे बचाया जाना है, हमारे उत्तम आवास के तौर पर क्या बचा हुआ है। वन, आर्द्रभूमि, ही प्राकृतिक विरासत को अधिक पदस्थित और सुरक्षित करने की आवश्यकता है। वर्तमान में प्रमुख प्राकृतिक वास को उपयुक्त भूमि एवं जल प्रबंधन के लिए जरूरी वंश रचना की कमी है। साथ ही लाल सांख्यिकीय पुस्तक में सूचीबद्ध पौधों और पशुओं की जातियों को बचाने के लिए अपर्याप्त व्यवस्था के कारण हैं।

जैव विविधता के सम्पूर्ण क्षेत्र की सुरक्षा

द्वितीय प्राथमिकता जैव विविधता के संरक्षण की सम्पूर्ण क्षेत्र के सूक्ष्म जीवाणुओं और भूमि वनस्पतियों तथा प्राणियों से पौधों और पशुओं की संरक्षणता उच्च है। जीनोटाइप, स्पीसीज और आर्थिक परिवेश जो कि हमारे जीवन के आधार पद्धति और बाढ़ नियंत्रण के आधार हैं उन्हें संरक्षण करने की आवश्यकता है। जैव विविधता के संरक्षण की यथावत और तत्वावत के चालू माणकों के लिए महान समाकलन की आवश्यकता है।

पारिस्थितिकी पोषणीय दिशा में लोगों को न्यूनतम सुविधाओं का मिलना

साधन संरक्षण और उन्नति में अगली प्रमुखता लोगों की अर्धव्यवस्था का परिवेश बंधन के साथ सम्बंध होना है। जैविक विविधता के प्रबंधक योजना के आधार पर परिवेश का विकेन्द्रीकरण चाहते हैं जिसके लिए क्रिया विधि वर्तमान में नहीं है। राष्ट्रीय उत्पादन पद्धति को लोगों की आजीविक सम्बंधी छोटी-छोटी जरूरतों, भोजन, ईंधन, चारा, रेशेयुक्त तत्व, जल आदि को पूरा करना। व्यापार से अलग हुए व्यापारियों को पक्ष तथा विपक्ष में समर्थन को ध्यानपूर्वक विचार के आधार पर फैसला सूचित करना होगा। इस संबंध में पारिस्थिति विज्ञान अर्धव्यवस्था एक दृष्टिगोचर क्षेत्र है। और इस क्षेत्र में क्षमता बनाने की आवश्यक जरूरत है।

संरक्षण सम्बंधी आचरण को शिक्षा और ज्ञान के द्वारा ऊपर उठाना

जैव विविधता के संरक्षण के लिए शिक्षा और मानव संसाधन विकास महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं।

शिक्षा और ज्ञान उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि विनियमन, और दोनों का साथ-साथ विकसित होना अनिवार्य है। पेशेवरों, प्रबंधकों और लोगों के विचारों और ज्ञान का आपसी आदान-प्रदान जैव विविधता के संरक्षण विकास और उनके पोषणीय प्रबंध का उचित आचरण का इच्छित रवैया सही तौर पर प्राप्त हो सके।

जैव विविधता के लिए सुगम साम्प्रदायिक गतिविधियां

संयुक्त सम्पत्ति संसाधनों के प्रबंधन को सुव्यवस्थित और न्यायनीति को बढ़ावा देने के लिए साम्प्रदायिक गतिविधियों का सुगम होना अनिवार्य है। जैविक और सांस्कृतिक विविधता का आपस में निकट का संबंध है। हम परंपरागत जीवन शैली को आदर्श नहीं बना सकते हैं जो कभी-कभी बहुत ही नीरसता और मुश्किल पैदा करता है। हमारी विभिन्न परम्पराओं का इसमें क्या मूल्य है और इस पर बनते आज के बदलते हालातों को मानना होगा। ग्रामीण जावन की बनावट बदल रही है, लोगों की जरूरतें बदल रही हैं और लोग आधुनिकता पर प्रत्यक्ष निर्भरता वस्तुओं के निर्माण के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से बदल रही हैं। यह दाग स्थानीय जैव विविधता को सुरक्षित रखने की प्रेरणा है। अभी घास की जड़ों की गतिविधि अकेले ही जैव विविधता को बचा सकती है।

राष्ट्रीय प्रभु सत्ता पर अन्तरराष्ट्रीय सहयोग/समझौतों का मूल्यांकन करके, लागू करना

आनुवंशिक विज्ञान संसाधनों और जैव विविधता पर अन्तराष्ट्रीय सहयोग/समझौतों का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन और निरीक्षण करने की आवश्यकता है। जैविक साधनों के नष्ट होने के खतरे के समानांतर इन साधनों के असार्वजनिक होने से खतरा है। हमें इसे लागू करने और समझने की जरूरत है। और अन्तराष्ट्रीय समझौतों की जो बातचीत हो रही है उसके निष्कर्ष के पूर्वानुमानी कदम उठाने हैं। मानव जातीय और आर्थिक समस्या, विशेषकर जीवन ढांचा स्पष्ट समीक्षात्मक है। किसानों का हित, लाभ, राष्ट्र का हित, दक्षिण विनियम या लेन देन और वैज्ञानीय अन्वेषण को बचाना है। यह सभी हित भूल से भी संकट में नहीं डालने चाहिए।

जैव विविधता के संरक्षण के लिए विकसित/शक्तिशाली प्रभावशाली विधान

जैविक विविधता की सुरक्षा का संरक्षण के लिए कार्यनीति को प्रोत्साहित करने के लिए जहां आवश्यक हो, विद्यमान कानूनों और नये विधानों के विकास को अधिक शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। वर्तमान में हमारे पास केन्द्रीय और राज्य के कानूनों की बाहुल्यता है जो जैव विविधता के बहुत से पहलुओं को चला रहे हैं। इनमें से कुछ नियम पहले समय में बनाए

गये थे, और आज के हालात में वे प्रासंगिक नहीं हैं। कुछ क्षेत्र इन वर्तमान नियमों में नहीं आते हैं। उदाहरण के तौर पर वर्तमान में कोई वैधिक समर्थन नहीं है जो आनुवंशिक संसाधनों के ऊपर राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की पुष्टि करता हो। वैधिक नियमों को उनसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए जो इस समय हैं वे तरीकों को और भी निर्मित किया जाना चाहिए। जैव विविधता संरक्षण के वैधिक पहलुओं की सूचनाएं जो बिखरी पड़ी हैं, जनता को उपलब्ध नहीं होती हैं।

प्रशासनिक तन्त्र को जाति, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर शक्तिशाली और सम्पूर्ण करना

प्रभावशाली प्रशासनिक ढांचा जो पद्धति परिणामों को जीवनतम कार्यक्रमों और परियोजनाओं में बदले अति महत्वपूर्ण प्रमुखताओं में से एक है जो कि कार्यान्वित और पोषित किया जा सकता है। अलग-अलग क्षेत्र (खंड) और प्रशासन के अलग-अलग स्तर बनाये जाने की भी आवश्यकता है। वर्तमान में जैविक विविधता के संरक्षण के लिए ढांचा और तन्त्र मुख्यतः राष्ट्रीय स्तर के हैं। जाति स्तर का ढांचा कुछ हद तक नकार दिया गया है। और राज्य स्तर का संरक्षण तन्त्र आमतौर पर कमजोर है। इसलिए राज्य तन्त्र को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। और जाति तन्त्र को भी बनाने की आवश्यकता है।

पर्याप्त वित्तीय और तकनीकी संसाधन उपलब्ध करवाना

यह कहा जाता है कि बिना वित्तीय साधनों के संरक्षण वार्तालाप मात्र होता है। यदि हमारी बहुमूल्य आनुवंशिक सम्पत्ति पौधों और पशुओं के वर्तमानकालिक और भविष्य के लिए सुरक्षित करना है, तब पर्याप्त वित्तीय, तकनीकी और संस्थानीय साधनों का आवंटन आवश्यक है। सभी स्तरों पर संरक्षण लक्ष्यों और संसाधनों के आवंटन का आपस में उचित मेल होना चाहिए। गत वर्षों में प्राणी विविधता के संरक्षण ने न केवल पारिस्थिक रचना के संतुलित रखरखाव के लिए अपितु जैविक संसाधनों के प्रयोग के द्वारा वन्य प्राणियों के रहन-सहन एवं कल्याण के लिए भी विशाल महत्व ग्रहण कर लिया है। उत्तर पूर्व भारत प्राणी विविधता के संरक्षण में वृहद प्रयत्नों के लिए रूचि लेने की उचित दहलीज पर है। यद्यपि पर्यावरणात्मक एवं विकासात्मक संबंधी लक्ष्यों के बीच संघर्ष उभरता दिखाई देता है, आगे आने वाला कार्य निरुत्साहित करने वाला है। फिर भी बहुत से सार्थक कारणों से उत्साहवर्धक है जो कि लोगों का अपना जैविक विविधता वृहत्तर सार्वजनिक और पर्यावरणात्मक विषय के लिए साधन (मिडिया) सम्बंधी और बच्चों, युवकों और औरतों में पर्यावरणात्मक जागरूकता फैलाने का आन्दोलन है। यह उत्तर पूर्व भारत के लोगों तक जैसे राज्यों और नागरिकों को उनकी अपनी बची हुई समृद्ध जैविक विविधता के लम्बी अवधि तक पोषणीय संरक्षण के लिए उन्हें अपने परम्परागत, पत्रिक और पोषणीय नीति को पुनः जागृत करना होगा।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

जैव विविधता

जयप्रकाश श्रीवास्तव

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

[सन 1995 के हिन्दी दिवस समारोह में हिन्दी भाषी लोगों के लिये निबन्ध प्रतियोगिता का विषय था— जैव विविधता । उस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त लेख-सं०]

यह पृथ्वी ही नहीं बल्कि यह पूरा ब्रह्माण्ड ही विविधताओं से भरा पड़ा है। चाहे तारे हों या फिर ग्रह या नक्षत्र हों, दो एक दूसरे से पूरी तरह समानता नहीं रखते। वायुमंडल में मिलने वाले विभिन्न गैस भी विभिन्न गुण रखते हैं। यहाँ तक कि दो जगहों का पानी भी एक दूसरे से कुछ भिन्न अवश्य होता है। पृथ्वी का जलवायु भी सभी जगह समान नहीं होता है। कहीं ज्यादा गर्मी पड़ती है तो कहीं ज्यादा सर्दी पड़ती है, कहीं बरसात कम होती है तो कहीं अत्यधिक। इस तरह जिस वातावरण में हम रहते हैं, अगर वही विविधताओं से भरा पड़ा है, तो जीव-जन्तुओं में विविधता होना स्वाभाविक ही है।

जीव-जन्तुओं का प्रारम्भ पृथ्वी पर कैसे हुआ, पहला जीव कब और कैसे पैदा हुआ, पहले बीज हुआ या पेड़ अथवा पहले मुर्गी हुई या अंडा, इन सब बातों पर अक्सर विवाद होते रहते हैं, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि इनका निश्चित उत्तर अभी भी जीव वैज्ञानिकों के पास नहीं है। फिर भी सैकड़ों वर्षों के अध्ययन एवं अनुसंधान के फलस्वरूप आज हम पृथ्वी पर मिलने वाले विभिन्न जीवों के प्रकार, उनके रहन-सहन, आहार, प्रजनन एवं उनसे होने वाली लाभ-हानि तथा वातावरण पर उनके प्रभाव इत्यादि के विषय में काफी ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं।

जीव-जगत को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया है:—

1. वनस्पति जगत 2. प्राणि-जगत

I. वनस्पति-जगत के अन्दर हम पेड़ पौधों का अध्ययन करते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया है :

1. फूल तथा बीज पैदा न कर सकने वाले पौधे:

इस समुदाय में दो तरह के वनस्पति आते हैं। पहले किस्म में वे आते हैं जिनमें क्लोरोफिल नामक रसायन नहीं मिलता और इस तरह अपना खाना खुद नहीं बना सकते और दूसरे जीवों

के ऊपर परजीवी की तरह रहते हैं। इनमें जीवाणु (बैक्टीरिया) तथा फफूँटी (फन्जाई) आते हैं। जीवाणुओं से तो सभी परिचित हैं। हमारे शरीर में होने वाले अधिकतर रोगों का कारण यही हैं। ये एक कोशिकीय होते हैं और बिना माइक्रोस्कोप की सहायता के इन्हें देखना सम्भव नहीं है। दूध को दही में बदलने की प्रक्रिया भी जीवाणु ही करते हैं। फफूँटी को बरसात के मौसम में आसानी से देखा जा सकता है। जूतों पर, रोटी पर या नम जगहों पर ये आसानी से उग आते हैं। कुछ फन्जाई रोग भी फैलाती हैं जैसे दाद। इस समुदाय में पड़ने वाले दूसरे वनस्पतियों में क्लोरोफिल नामक रसायन पाया जाता है। इस तरह वे हरे रंग के होते हैं और अपना खाना खुद बना सकते हैं और दूसरों पर आश्रित नहीं होते। इनमें कुछ छोटे आकार के वनस्पति आते हैं जैसे एली या शैवाल—ये अक्सर पानी में मिलते हैं या फिर नम जगहों पर उग आते हैं। कुछ पौधे काफी बड़े आकार के होते हैं जो कि पेड़ों की तरह दिखाई देते हैं। इनमें मुख्य हैं फर्न, पाइन, साइकस, लाइकोपोडियम इत्यादि। ये पौधे हमें फल और फूल भले ही न दें, लेकिन हमारे बगीचों की सोभा बढ़ाने में ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें से कुछ पौधों से औषधियों का निर्माण भी होता है।

2. फूल तथा बीज पैदा कर सकने वाले वनस्पति:

इस समुदाय में हमारे आस-पास मिलने वाले पेड़ पौधे आते हैं। इनसे हमें फल, फूल, बीज इत्यादि मिलते हैं तथा अपने आहार के लिए सिर्फ मनुष्य को ही नहीं बल्कि अन्य प्राणियों को भी इन्हीं के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है: —

- (i) काफी छोटे आकार के पौधे या हर्ब :— ये काफी छोटे आकार के पौधे होते हैं और इनके तने कमजोर, मुलायम और हरे रंग के होते हैं जैसे मटर, सरसों इत्यादि।
- (ii) मध्यम आकार के पौधे या श्रब्स :— इनके तने मजबूत होते हैं किन्तु ज्यादा मोटे नहीं होते। ये झाड़ी की तरह दिखते हैं जैसे गुलाब, ओलिव्ण्डर इत्यादि।
- (iii) पेड़ या वृक्ष :— ये आकार में काफी बड़े होते हैं। इनके तने काफी मोटे एवं मजबूत होते हैं। आम, पीपल, जामुन, नीम इत्यादि इनके उदाहरण हैं।

कुछ विचित्र प्रकार के पौधे भी मिलते हैं जो कि कीड़ों-मकोड़ों को खा जाते हैं जैसे पिचर पौधा तथा वेनस फ्लाई ट्रैप। इसके अलावा कुछ पौधे काफी संवेदनशील होते हैं और छूने पर सिकुड़ जाते हैं जैसे माइमोसा या छुई मुई। इस तरह से अब तक वनस्पतियों की पाँच लाख से भी अधिक जातियों की पहचान हो चुकी है।

II. प्राणि-जगत:— प्राणि-जगत विविधताओं से भरा पड़ा है, जहाँ एक ओर एक कोशिकीय सूक्ष्म प्रोटोजुआ है, वहीं दूसरी ओर विशालकाय हाथी अथवा ह्वेल भी आते हैं। इनके बीच में विभिन्न प्रकार के प्राणी मिलते हैं और अब तक इनकी दस लाख से अधिक जातियों की पहचान हो चुकी है। प्राणि-जगत को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है:

I. रीढ़ की हड्डी न रखने वाले प्राणी या इनवर्टिब्रेटा :— अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें कई फाइलमें में विभाजित किया गया है:

1. प्रोटोजुआ :— इनमें एक कोशिकीय प्राणी आते हैं और इनका एक कोशिकीय शरीर ही जीवन के लिए आवश्यक सभी कार्य करने में समर्थ होता है। इसके उदाहरण हैं अमीबा एवं पैरामीसियम। ये अकसर गंदे पानी में मिलते हैं। कुछ प्रोटोजुआ हमारे शरीर में रोग पैदा करते हैं। इनमें मुख्य है प्लैमोडियम नामक प्रोटोजुआ जो कि मलेरिया जैसे घातक बीमारी का कारण है और एन्टामीबा जो कि पेट की बीमारी खासकर आँव जैसा रोग पैदा करता है।

2. पोरिफेरा- इनके शरीर में असंख्य छिद्र होते हैं जिसकी सहायता से पानी इनके शरीर के अन्दर प्रवेश करता है। ये आम तौर पर समुद्र में मिलते हैं जैसे साइकन तथा स्पंज।

3. सीलेन्टेरेटा :— ये भी पानी में रहने वाले जानवर हैं लेकिन केवल समुद्र में ही नहीं बल्कि हर तरह के पानी जैसे नदी इत्यादि में भी मिलते हैं। इनके शरीर के अन्दर एक धीली होती है जो शरीर के बाहर एक छिद्र द्वारा खुलती है और यही छिद्र मुख तथा मलद्वार दोनों का काम करती है। उदाहरण हाइड्रा, जेली फिश इत्यादि।

4. प्लैटीहेल्मिन्थ या चपटे कीड़े :— ये देखने में चपटे होते हैं और रंग कर चलते हैं। इनमें कुछ स्वतंत्र रूप से रह सकते हैं जैसे प्लैनेरियन्स तथा कुछ परजीवी होते हैं जैसे लीवरप्लूक तथा फीता कृमि।

5. गोल कीड़े या राउन्ड वर्म :— इस समुदाय में आने वाले जानवरों का शरीर लम्बा, बीज में मोटा तथा दोनों किनारों पर पतला होता है। ये स्वतंत्र रूप से रह सकते हैं या परजीवी हो सकते हैं जैसे सूत-कृमि तथा गोल कृमि। देखने में ये केंचुए की तरह होते हैं।

6. एनीलिडा :— इस समुदाय में आने वाले जानवरों में मुख्य हैं केंचुआ तथा जोंक। इनका शरीर ऐसे लगता है जैसे बहुत से अँगुठी को जोड़कर बनाया गया हो। केंचुआ हमारे खेतों को उपजाऊ बनाने में सहायक होता है। अपने आदत के अनुसार यह मिट्टी में बिल बनाता है और इससे मिट्टी ढीली हो जाती है।

7. आर्थ्रोपोडा :— इस समुदाय में आने वाले प्राणियों की विशेषता यह है कि इनका पैर कई ज्वाइन्ट्स या जोड़ों से मिलकर बना होता है। यह समुदाय काफी बड़ा है। इसमें मिलने वाले प्राणी पंख वाले तथा बिना पंख वाले दोनों होते हैं। उदाहरण-तेलचट्टा, बिच्छू, गोंजर, तितली इत्यादि। सभी तरह के कीड़े मकोड़े इसी समुदाय में आते हैं जिनमें से कुछ हमारे लिए तथा हमारे फसलों के लिए काफी हानिकारक होते हैं। इनमें पैरों की संख्या दो जोड़ों से अधिक होती है। गोंजर में तो छोटे-छोटे काफी संख्या में पैर होते हैं।

8. मोलस्का:— ये पानी में मिलते हैं या कुछ जातियाँ मिट्टी में भी मिलते हैं। इनका शरीर काफी मुलायम होता है। अधिकतर प्राणियों में शरीर एक कड़े आवरण से ढँका होता है। घोंघा, आक्टोपस इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

9. एकानोडमेंटा :— इस समुदाय में आने वाले अधिकतर प्राणी समुद्र में मिलते हैं और इनकी विशेषता यह है कि इनका पूरा शरीर छोटे-छोटे काँटों से भरा रहता है। कुछ जातियाँ पौधों की तरह एक ही स्थान पर रहते हैं तथा दूसरी जातियाँ स्वतंत्र रूप से एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं। उदाहरण स्टारफिश तथा समुद्री अर्चिन।

II. रीढ़ की हड्डी रखने वाले प्राणी या बर्टिब्रेटस :— इस समुदाय में पड़ने वाले समस्त प्राणियों में रीढ़ की हड्डी पाई जाती है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित कक्षाओं में विभाजित किया गया है:

1. पिसेस या मछलियाँ :— सभी तरह की मछलियाँ इस कक्षा में आती हैं। इनका शरीर चोइयों या स्केल्स से ढँका होता है। श्वसन के लिए इनमें गलफड़े होते हैं। ये अंडे देते हैं जैसे रोहू, सिघरी, टेंगरा इत्यादि। कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं जिनमें हवा की थैली होती है अतः वे पानी के बाहर भी काफी देर तक जीवित रह सकती हैं जैसे माँगुर, सिंही इत्यादि।

2. एम्फीबिया:— इसमें आने वाले जानवर जल एवं थल दोनों जगह रह सकते हैं जैसे मेंढक, टोड इत्यादि। इनमें फेफड़े होते हैं जो श्वसन का काम करते हैं लेकिन पानी में रहने पर ये अपनी मुखगुहा अथवा चमड़े द्वारा भी साँस ले सकते हैं। मेंढक के बच्चों को टैडपोल कहते हैं जो देखने में मछलियों जैसे होते हैं तथा श्वसन के लिए इनमें गलफड़े भी होते हैं। मेंढक हमारे लिए काफी लाभप्रद है। हर साल करोड़ों की संख्या में प्राणी विज्ञान के अध्ययन के लिए इन्हें मारा जाता है। अमेरिका में इसका माँस काफी लोकप्रिय है। ये अंडे देते हैं।

3. एवीस या पक्षी :— सभी तरह के पक्षी इस कक्षा में आते हैं। इनमें उड़ने के लिए पंख होते हैं जो कि अगले हाथ का ही बदला हुआ रूप हैं। फेदर्स या परों का होना इस कक्षा की एक विशेषता है। हवा में उड़ने के लिए भी इनके शरीर की बनावट काफी हद तक सहायक होती है। जैसे इनका शरीर स्ट्रीमलाइन्ड या हवाई जहाज के आकार का होता है जिससे हवा के अवरोध को कम किया जा सके। इनकी हड्डियाँ काफी हलकी होती हैं जिससे इन्हें उड़ने में मदद मिलती है। इनमें दाँत नहीं होते बल्कि चोंच होते हैं। ये अंडे देते हैं। उदाहरण कौआ, गौरैया, मैना, तोता इत्यादि। आस्ट्रिच नामक पक्षी उड़ने में असमर्थ होता है।

4. रेप्टीलिया या रेंगने वाले जन्तु :— इस समुदाय में आने वाले रेंग कर चलते हैं। चिड़ियों की तरह ये भी अंडे देते हैं तथा श्वसन के लिए फेफड़े होते हैं। इनमें कुछ बिना पैर के होते हैं जैसे साँप तथा पैर वाले प्राणियों में गिरगिट, छिपकिली इत्यादि आते हैं। ये हमारे लिए काफी लाभप्रद हैं। जहाँ एक ओर साँप चूहों की आबादी को संतुलित रखता है, वहीं दूसरी ओर छिपकिली हमारे घरों में छिपे कीड़ों को खाकर हमारी रक्षा करती है।

5. स्तनपाई या मैमेलिया :— इस कक्षा में पड़ने वाले प्राणियों की विशेषता यह है कि ये अपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाकर उन्हें बड़ा करते हैं। इनके शरीर में बाल होते हैं और ये बच्चों को जन्म देते हैं। इसके कुछ अपवाद अवश्य हैं जैसे आस्ट्रेलिया में मिलने वाले

स्पाइनी ऐन्टईटर तथा डक बिल प्लैटीपस अंडे देते हैं। कुछ स्तनपाई अपने बच्चों को पेट के नीचे एक थैले में रखकर बड़ा करते हैं जैसे कंगारू। स्तनपाई प्राणी काफी विकसित हैं। इनके बुद्धि का विकास अन्य प्राणियों की तुलना में काफी अधिक है। यही कारण है कि मनुष्य आज समस्त विश्व पर अपना अधिकार जमाए हुआ है। कुछ स्तनपाई चिड़ियों की तरह उड़ सकते हैं जैसे चमगादड़। स्तनपाई पानी में, जमीन पर या फिर पेड़ों पर रहते हैं। पानी में रहने वालों में ह्वेल, सील इत्यादि हैं तो पेड़ों पर रहने वालों में बन्दर, गिलहरी, उड़ने वाली गिलहरी इत्यादि हैं। जमीन पर रहने वालों में कुत्ता, बिल्ली, गाय, चूहे इत्यादि आते हैं। चूहे हमारे लिए हानिकारक हैं और इनकी सैकड़ों जातियाँ हमारे देश में मिलती हैं। लाखों टन अनाज प्रति वर्ष ये नष्ट कर देते हैं या खा जाते हैं। पृथ्वी पर मिलने वाला सबसे बड़ा जानवर ह्वेल भी स्तनपाई ही है लेकिन लोग इसे मछली समझते हैं।

विविधताओं से भरा हुआ यह जीवजगत एक दूसरे पर आधारित है। जहाँ प्राणी अपने खाद्य एवं आक्सीजन के लिए वनस्पतियों पर आधारित हैं वही वनस्पतियाँ भी प्राणियों के ऊपर कार्बनडाइ आक्साइड के लिए आश्रित होते हैं जिससे वे अपना खाना बना सकते हैं। आक्सीजन, कार्बनडाइआक्साइड तथा नाइट्रोजन का संतुलन भी दोनों के द्वारा बना रहता है। एक का विनाश दूसरे के अस्तित्व के लिए खतरा बन सकता है।

प्राणि-वर्ग विविधता

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

स्तनपायी विविधता

विजयचन्द्र अग्रवाल

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

स्तनपायी जन्तुओं में, जैसा नाम से ही विदित है, मादाओं में अपने बच्चों के पोषण के लिए स्तन होते हैं, और शरीर रोमयुक्त होते हैं। अपने मस्तिष्क के विकास के कारण मनुष्य इन प्राणियों में शिखर पर है।

सम्पूर्ण भारत में स्तनपाइयों की 372 जातियाँ पाई जाती हैं जो विश्व में पाई जाने वाली 4629 जातियों का 8 प्रतिशत है। भारत के भौगोलिक क्षेत्रफल (विश्व का मात्र 2 प्रतिशत) को देखते हुए यह विविधता सन्तोषजनक है।

भारत एक विशाल देश है। यह विभिन्न प्रकार के पारितन्त्रों में विभाजित है। स्तनपायी प्रत्येक पारितन्त्र में पाए जाते हैं। ये हिमालय के बर्फीली चोटियों पर, गंगा-यमुना के मैदानों में, घने वनों से लेकर थार-मरुस्थल तक, पश्चिमी पर्वतीय श्रृंखलाओं तथा दक्षिण के पठार में, और पूर्व तथा पश्चिम के समुद्री तटों तथा द्वीपों में पाए जाते हैं। ये पेड़ों पर, झाड़ियों में, चट्टानों के नीचे, पहाड़ की खोहों और बिलों में तथा कुछ जल के अन्दर भी रहते हैं। जल में वास करने वाले स्तनपायी ज्यादातर खारे पानी में रहते हैं, जैसे ह्वेल और ड्यूगिंग, तथा कुछ मीठे पानी में भी मिलते हैं, जैसे उदविलाव और सूँस। कुछ स्तनपायी जैसे चमगादड़ उड़ सकते हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में सबसे अधिक, लगभग 150 जातियाँ पाई जाती हैं तथा मरुस्थल में सबसे कम, लगभग 70 जातियाँ। भारतीय स्तनपायी प्राणिजाति चीन, इन्डोचीन, मलयेसिया, अफ्रीका तथा पूरे यूरोप में पाई जाने वाली जातियों का सम्मिश्रण है। भारत में पाई जाने वाली मात्र 37 जातियाँ ही ऐसी हैं जिन्हें स्थानिक जाति कहा जा सकता है, क्योंकि वे अन्य देशों में नहीं मिलती हैं।

बीसवीं शताब्दी में, भारत में दो स्तनपायी जातियाँ, शिकारी चीता बाघ तथा एक सींग वाला छोटा गैंडा विलुप्त हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त स्तनपाइयों की 50 प्रतिशत जातियाँ ऐसी हैं जिनका देश में प्रसार कम हुआ है और संख्या सीमित हुई है।

प्राणि-विविधता

भारत में स्तनपाइयों के गण, कुल, वंश तथा जातियों की विविधता और स्थानिक जातियों को निम्नलिखित सूची में दर्शाया गया है। कोष्ठक में विश्व में पाई जाने वाली संख्या दी गई है।

गण का नाम	कुल की संख्या	वंश की संख्या	जातियों की संख्या	स्थानिक जातियों की संख्या
कीटाश गण (इन्सेक्टीवोरा)	3 (6)	9 (61)	17 (354)	4
आरोही गण (स्कैनडेन्शिया)	1 (1)	2 (5)	3 (16)	2
चमगादड़ गण (काइरोटेरा)	8 (18)	34 (189)	109 (988)	6
नर-वानर गण (प्राइमेट्स)	3 (12)	5 (58)	15 (181)	3
फोलीडोटा	1 (1)	1 (2)	2 (7)	-
मांसाहारी गण (कार्नीवोरा)	8 (12)	29 (108)	57 (266)	3
हाथी गण (प्रवोशीडिया)	1 (1)	1 (2)	1 (2)	-
साइरेनिया	1 (2)	1 (3)	1 (5)	-
विषम खुरीय गण(पैरिसो- डैक्टाइला)	2 (3)	2 (6)	3 (18)	-
समखुरीय गण(आरटियो- डैक्टाइला)	5 (10)	19 (76)	30 (192)	3
शशक गण (लैगोमार्फा)	2 (2)	3 (12)	10 (59)	-
कृन्तक गण (रोडेन्शिया)	4 (29)	49 (393)	99 (1738)	16
तिमि गण (सीटेशिया)	6 (9)	20 (39)	25 (78)	-
कुल संख्या	45 (106)	169 (954)	372 (3904)	37

इन्सेक्टीवोरा (कीटभक्षी) : इस गण में छछुंदर, हेजहाग तथा टालपा आते हैं। छछुंदर की बहुत सी जातियाँ तथा उपजातियाँ हैं जो सम्पूर्ण भारत में फैली हुई हैं। हेजहाग के शरीर पर कैंटे होते हैं, तथा यह मरुस्थलीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं। टालपा मध्य और पूर्वी हिमालय के जंगलों में पाए जाते हैं और भूमि में गहराई पर रहते हैं। इन सभी जन्तुओं का थूथन लम्बा होता है।

काइरोप्टेरा (चमगादड़) : भोजन के आधार पर इन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है: (I) फल खाने वाले जैसे टीरोपस और साइनोप्टेरस जो मुख्यतः पेड़ों पर रहते हैं। (II) कीड़े खाने वाले जैसे पिपिस्ट्रेल, स्कोटोफिलस, इत्यादि जो शाम को उड़ते हुए दिखलाई देते हैं; (III) मांसाहारी जैसे मेगाडरमा जो समूह में पुराने मकानों, कुओं तथा पुग्ने पेड़ों के खोह में पाये जाते हैं। कीड़े खाने वाले चमगादड़ों की सबसे अधिक जातियाँ हैं।

प्राइमेट्स (वानर) : इस गण के उदाहरण बन्दर, लंगूर, वनमानुष और लोरिस हैं। बन्दरों का मुँह लाल और पूँछ छोटी होती है। लंगूरों का मुँह काला और पूँछ लम्बी होती है। वनमानुष को पूँछ नहीं होती। इसका नर काला तथा मादा पीले रंग की होती है। लोरिस की आँखें बड़ी तथा पूँछ नहीं के बराबर होती है। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में बन्दर और लंगूर की तीन-तीन, तथा लोरिस और वनमानुष की एक-एक जाति पायी जाती है। दक्षिण में बन्दर और लंगूर की दो-दो तथा लोरिस की एक जाति पाई जाती है। उत्तर भारत में बन्दर एवं लंगूर की एक-एक जाति पायी जाती है। प्राइमेट्स मुख्यतः शाकाहारी होते हैं। लोरिस कीड़े-मकीड़े भी खाते हैं।

स्कैनिडेन्शिया : इस गण में पेड़-वाले छछुंदर आते हैं। ये देखने में गिलहरी के समान होते हैं परन्तु इनका थूथन लम्बा होता है। ये कीड़े-मकोड़े तथा फल खाते हैं। इनकी एक जाति उत्तर-पूर्वी भारत में तथा दूसरी मध्य तथा दक्षिण भारत में पायी जाती है।

कार्नीवोरा (मांस भक्षी) : इस श्रेणी में शेर, बाघ, बिछरी, भालू, नेवला, सिवेट-बिल्ली, उदबिलाव, भेड़िया, सियाल, लोमड़ी, लकड़बच्चा, पान्डा, मोर्टन इत्यादि जन्तु आते हैं। रेडपान्डा को छोड़कर जो शाकाहारी है, ये सभी जन्तु मांसाहारी होते हैं। ये हिमालय पर्वत से लेकर कन्याकुमारी तक विभिन्न प्राकृतिक आवासों में पाए जाते हैं। मांस खाने के लिए इनके कैंनाइन तथा कारनैसियल दाँत बहुत विकसित होते हैं।

पेरिसोडैक्टाइला : इस गण में जंगली गदहे, क्यांग तथा एक सींग वाले गैन्डे आते हैं। गदहे गुजरात के रण में, क्यांग लद्दाख में तथा गैन्डा पश्चिमी बंगाल, आसाम और नेपाल में मिलते हैं। ये सभी शाकाहारी होते हैं।

आरटियोडैक्टाइला : इस श्रेणी में जंगली गाय, भैंस, याक, भेड़, बकरे, धार गोराल, हिरण, एन्टीलोप, नीलगाय, चिन्कारा, सूअर इत्यादि जन्तु आते हैं। इनमें से जंगली भेड़ बकरे, धार गोराल, बारहसिंहा (हांगुल), याक इत्यादि जानवर हिमालय के जंगलों में, और एन्टीलोप और चिन्कारा इत्यादि मरुस्थलीय क्षेत्रों में अधिक पाए जाते हैं।

प्रबोशिडिया (हाथी) : हाथी केरल, कर्नाटक, उड़ीसा, बिहार, उत्तरी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा उत्तर-पूर्वी भारत के जंगलों में पाए जाते हैं। नर हाथी के बड़े-बड़े दाँत होते हैं। जिनके लिए दुर्भाग्यवश इन्हें मारा जाता है। हाथी जंगली बाँस तथा ईख खाना बहुत पसन्द करते हैं।

फोलीडोटा (वज्रकीट) : इस गण में वज्रकीट (पेन्गोलिन) आते हैं। इनका शरीर स्केल से ढँका होता है। इनकी जीभ बहुत लम्बी होती है जिसके द्वारा ये चींटियाँ तथा दीमक पकड़कर

खाते हैं। ये पूरे भारत में पाए जाते हैं। परन्तु इनकी संख्या अब बहुत कम हो गई है।

रोडेन्शिया (कृन्तक गण) : इस श्रेणी में चूहे, गिलहरियाँ तथा साही आते हैं। गिलहरियाँ घने जंगलों में तथा शहरों में पेड़ों पर पाई जाती हैं। चूहे खेतों में, जंगलों में, पहाड़ों पर तथा घरों के अन्दर मिलते हैं। ये घर के सामानों तथा फसल को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। साही पहाड़ी क्षेत्रों, मैदानों, जंगलों तथा मरुस्थल में पाए जाते हैं, जहाँ ये बिलों में रहते हैं। ये सभी शाकाहारी हैं। कभी कभी ये कीड़े मकोड़े भी खाते हैं।

लैंगोमार्फा (खरगोश) : खरगोश, हिसपिड खरगोश तथा चूहा-खरगोश इस वर्ग के उदाहरण हैं। ये सभी शाकाहारी हैं। चूहा-खरगोश चूहों के बराबर होते हैं और इनके पूँछ नहीं होती। ये हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। खरगोश के रोंए मुलायम तथा हिसपिड खरगोश के कँटीले होते हैं। खरगोश पूरे भारत में तथा हिसपिड खरगोश आसाम में मिलते हैं।

साइरेनिया : हस्तिमकर या समुद्री गाय कच्छ तथा मन्नार की खाड़ियों और अण्डमान द्वीप समूह के किनारे पर पाए जाते हैं। ये समुद्री घासों को खाना पसन्द करते हैं।

सीटेशिया : ह्वेल, डालफिन, सूँस इत्यादि इस गण में आते हैं। सूँस को छोड़कर, जो गंगा के मीठे जल में पाए जाते हैं, बाकी सभी समुद्र में रहते हैं। ह्वेल गहरे पानी में तथा डालफिन समुद्र के किनारे किनारे पाए जाते हैं। ये विभिन्न प्रकार की मछलियों, कैकड़ा, झींगा इत्यादि को खाते हैं। मरने पर ह्वेल यदाकदा समुद्रतट पर आ टकराती हैं। इन्हें तेल और चर्बी के लिए मारा जाता है।

स्थानिक वंश तथा जातियाँ

भारत में पाए जाने वाले 169 स्तनपायी वंशों में 48 ऐसे हैं जो विश्व में केवल एक ही जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं और 98 ऐसे हैं जिनकी केवल एक ही जाति भारत में पाई जाती है। इस प्रकार की विविधता होने से मात्र एक जाति के विलुप्त होने पर पूरे वंश के विलुप्त होने का खतरा बना रहता है। इन 169 वंशों में से 8 वंश तथा 37 जातियाँ भारत में स्थानिक हैं जो कि सबसे अधिक अण्डमान-नीकोबार द्वीप समूह में (11) तथा पश्चिमी घाट (12) में केन्द्रित हैं।

स्तनपाइयों की उपयोगिता

मनुष्य तथा विभिन्न स्तनपाइयों के सम्बन्ध बहुत प्राचीन हैं। इनका वर्णन वेद-पुराण में भी मिलता है। ये सम्बन्ध नैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा उपयोगिताके मूल्यों पर आधारित हैं।

कुछ स्तनपायी जन्तु जैसे चूहा, लंगूर, हाथी, साँड़, शेर, बाघ आदि विभिन्न देवी-देवताओं के वाहन के रूप में हिन्दुओं द्वारा पूजे जाते हैं।

प्राचीन काल से ही यूनानी तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियों में स्तनपाइयों से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग होता रहा है। वानर, शशक तथा चूहों की कुछ जातियों का उपयोग औषधि-सम्बन्धित अनुसंधान में भी किया जाता है। चूहों की बहुत सी जातियाँ मनुष्य तथा पशुओं की बीमारी के कीटाणुओं की वाहक हैं।

मनुष्य स्तनपाइयों से चमड़ा (हिरन, एन्टीलोप, बिछी, शेर, बाघ का), ऊन (भेड़), सींग (हिरन, गाय, भैंस, गैंडा), दाँत (हाथी), यकृत और पित्त थैली (भालू), कस्तूरी (कस्तूरी मृग), चर्बी और तेल (स्वेल, क्यूगोंग), वेंजोअर (स्वेल), हर्बियॉ (बाघ, कैट) इत्यादि से प्राप्त करता है और इनका व्यापार करके धन अर्जित करता है। इन सबके अतिरिक्त बहुत प्रकार के स्तनपाइयों को भोजन के लिए मारा जाता है। बहुत से जानवर जैसे गदहा, घोड़ा, हाथी, बैल इत्यादि को पालतू रख कर वाहन तथा बोझा ढोने के काम में लिया जाता है। पिछली शताब्दी में राजा-महाराजा लोग जंगली जानवरों का शिकार अपने शौर्य का प्रदर्शन करने के लिए भी करते थे।

लेकिन कुछ स्तनपाइयों से बहुत नुकसान भी होता है जैसे विभिन्न प्रकार के चूहे, शसक, वानर, लंगूर, हिरन, एन्टीलोप, जंगली-सूअर, हाथी, गाय, भैंस इत्यादि खेतों में खड़ी फसल को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। इनसे प्रतिवर्ष देश में करोड़ों रुपए की क्षति होती है।

विलुप्त होती स्तनपायी जातियाँ- कारण

भारत की मानव जनसंख्या, विश्व की तुलना में इसके क्षेत्रफल को देखते हुए 8 गुण्य है, और अभी भी उसमें निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस जनसंख्या के प्रसार से मनुष्य के भोजन, रहने के लिए आवास, स्वच्छ जल, कपड़ा, बिजली, दैनिक आवश्यकताओं की चीजों की माँगों में वृद्धि हुई है। उसकी पूर्ति के लिए खेती-चारी बढ़ रही है, नए-नए कल-कारखाने लगाए जा रहे हैं, खनन में वृद्धि हुई है, सिंचाई के लिए बाँध बनाए जा रहे हैं और विद्युत के लिए विद्युत उत्पादक यन्त्र लगाए जा रहे हैं। इन सब का सांघुहिक असर वनों पर पड़ा है जिन्हें शनैः शनैः नष्ट किया जा रहा है। बाँधों के बनने से बहुत सी भूमि जलमग्न हो गई है, जिससे प्राकृतिक आवास का ह्रास हो रहा है। इसके अतिरिक्त स्तनपाइयों की विभिन्न जातियों को उनके माँस, चमड़े, ऊन, सींग, कस्तूरी, दाँत, चर्बी, तेल इत्यादि वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए मारा जा रहा है। इन सब का भारत के वन्यजीवन पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है।

परिणाम यह है कि भारत में पाई जाने वाली 372 स्तनपायी जातियों में 165 जातियाँ (173 जातियाँ और उपजातियाँ) विलुप्त होने के कगार पर हैं। इनमें से कुछ जातियाँ अधिक संकट में हैं तथा कुछ कम। संकट के आधार पर इन्हें चार श्रेणियों में - विपदग्रस्त, संकटापन्न, बिरल और अज्ञात अथवा अल्पज्ञात विभक्त किया गया है।

संरक्षण

भारत में प्राणियों की विपदग्रस्त जातियों के संरक्षण का मुख्य उद्देश्य संतुलित पारितन्त्र का प्रतिपादन करना है। इससे इन पारितन्त्रों में रहने वाले जीव जन्तुओं के अधिक दिनों तक जीवित रहने की संभावना बढ़ जाती है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए देश में अधिक से अधिक वैज्ञानिक रूप से प्रबन्धित 'संरक्षित क्षेत्र' घोषित किए जा रहे हैं जहाँपर वन्यजीवों को न केवल संरक्षण मिल रहा है बल्कि उनके प्राकृतिक आवास को भी नष्ट होने से बचाया जा रहा है। भारत सरकार, देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 4.6 प्रतिशत भाग, 'संरक्षित क्षेत्रों' के अन्दर लाने का प्रयास कर रही है जहाँ पर रह कर वन्य जीव बेखटक तथा स्वस्थ रूप से अपना जीवन यापन कर सकें।

गण के नाम	जातियों की कुल संख्या	संरक्षित जातियों की संख्या			
		सूची 1	सूची 2	सूची 3	सूची-4
कीटाश गण	17	—	—	—	1
आरोही गण	3	—	—	—	—
चमगादड़ गण	109	—	—	—	—
नर-वानर गण	15	9	6	—	—
फोलीडोटा	2	2	—	—	—
मांसाहारी गण	57	29*	26*	1	7*
हाथी गण	1	1	—	—	—
साइरेनिया	1	1	—	—	—
विषमखुरीय गण	3	3	—	—	—
समखुरीय गण	30	24	—	8*	—
शशक गण	10	1	—	—	9
कृन्तक गण	99	2	16	—	2
तिमि गण	25	3	22	—	—

* इनमें उपजातियाँ भी सम्मिलित हैं।

भारत सरकार ने वन्यजीव संरक्षण के लिए सन 1972 ई० में एक कानून बनाया है जो "वन्यजीव संरक्षण कानून, 1972" के नाम से जाना जाता है। इस कानून के अन्तर्गत आने वाली सूची 1 के वन्यजीव के किसी भी जाति को कोई पकड़ या मार नहीं सकता। इस कानून का उल्लंघन करने वाले पर जुर्माना तथा कारावास का प्रावधान है। इस कानून में समय-समय

पर आवश्यकतानुसार संशोधन किए जाते हैं। इसमें 66 धाराएँ तथा 5 सूचियाँ हैं। संकट के हिसाब से स्तनपायी जातियों को सूची 1,2,3 और 4 में रक्खा गया है, जो निम्नतालिका में दिखलाया गया है। सूची 5 में नुकसान पहुँचाने वाले कुछ जन्तुओं जैसे चूहा, चुहिया, फल खाने वाले चमगादड़ इत्यादि को रक्खा गया है। इन्हें मारने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इस तालिका को देखने से विदित होता है कि लगभग सभी मध्यम तथा बड़े आकार वाले स्तनपायी विपदग्रस्त या संकटापन्न हैं और उनका संरक्षण आवश्यक है।

इन संकटाधीन स्तनपायी जातियों को व्यापार के लिए मारा न जा सके, इसके लिए एक विश्वव्यापी कानून सन 1976 में बनाया गया है, जिसे संक्षिप्त में 'साइटिस' कहते हैं। इस कानून के अन्तर्गत आने वाली सभी वन्य जीव जातियों को उस देश की सरकार से, जहाँ उसे पकड़ना या मारना है, बिना लाइसेंस प्राप्त किए व्यापार करना अपराध है और ऐसा करने वाले लोग कानूनन दंडनीय हैं। सबसे पहले उनका माल जब्त कर लिया जाता है और जुर्माना तथा कारावास का प्रावधान है।

कुछ विपदग्रस्त स्तनपायी जातियों, जैसे बाघ, शेर, काश्मीरी बारहसिंघा, धामिन, कस्तूरी मृग, हाथी, सुनहली बिल्ली, बर्फीला तेन्दुआ इत्यादि के प्राकृतिक आवास के संरक्षण तथा प्रतिपादन के लिए, और उनके रहन-सहन, खान पान, प्रसार, प्रजनन, इत्यादि के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भारत सरकार तथा बहुत से गैर सरकारी संगठनों की आर्थिक सहायता द्वारा अध्ययन किया गया है। जिनसे उनके संरक्षण की सुचारू व्यवस्था की जा सके और जहाँ ये जन्तु उन्मुक्त रूप से प्रजनन करके अपनी संख्या बढ़ा सकें। इन परियोजनाओं को काफी सफलता मिली है तथा न केवल इन जानवरों के प्राकृतिक आवासों की उन्नति हुई है बल्कि उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई है।

इसके अतिरिक्त कुछ विपदग्रस्त स्तनपायी जातियों जैसे धामिन, शेर, गैंडा इत्यादि को जिनकी संख्या बहुत सीमित हो गई है, चिड़ियाखानों में प्रजनन कराया जा रहा है जिससे इनकी संख्या में वृद्धि हो सके।

इन सभी उपायों की सफलता के लिए जनता में वन्यजीवों के प्रति मोह तथा उनके संरक्षण से लाभ के बारे में जानकारी पैदा करना आवश्यक है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

एक नजर चूहे, घुइस, जरबिल, गिलहरी एवं साही पर

सुजीत चक्रवर्ती एवं रीना चक्रवर्ती

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

विश्व में स्तनधारियों की लगभग 4629 जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें आधे से बड़ा कम कृन्तक गण (रोडेन्ट्स) की हैं। कृन्तक जन्तुओं में छेनी के आकार के एक जोड़ी इन्साइबर दाँत होते हैं जो प्रतिदिन बढ़ते रहते हैं। चूहे, घुइस, जरबिल, गिलहरी, मारमोट, साही इत्यादि इस गण के उदाहरण हैं। भारत में कृन्तकों के 4 कुल, 43 वंश और 99 जातियाँ पाई जाती हैं। जब से मनुष्य ने स्थायी जीवन जीना प्रारम्भ किया तभी से कृन्तकों की विभिन्न जातियों ने उनके आस-पास अपने को स्थापित कर लिया। विविधता, वातावरण, स्वास्थ्य एवं आर्थिक महत्व को देखते हुए गिलहरी, साही, चूहे, घुइस और जरबिल विशेष स्थान रखते हैं। इस लेख में इन सबकी विविधता, विस्तार तथा महत्व के बारे में चर्चा की गई है।

भारत में जरबिल, चूहे और घुइस के 13 वंश और 63 जातियाँ मिलती हैं। इनके दोनों जबड़ों में 3-3 चबाने वाले दाँत होते हैं। इनकी अधिकतम जातियाँ जैसे माइक्रोमीस माइन्पूटस, रैटस एडवार्डसी, रैटस इहा, रैटस सवेनस, रैटस कुमोरीवेन्टर, रैटस वावर्सी, मस पहाड़ी, काइरोपोडोमीस गिलरायडस, हाइड्रोमिस ह्युमिआई आदि पूर्वोत्तर भारत में सीमित हैं। टेटेरा इन्डिका, मेरिओनस हुरियानी, निसोकिआ इन्डिका, जरबिलस गिलडोवी, जरबिलस नैनस, रैटस कुचिकस आदि मुख्यतः मरुस्थल के वासी हैं। एपोडिमस सिलवेटिकस, रैटस वेसिरेक्स, रैटस निविवेन्टर, रैटस टरकेस्टेनिकस आदि हिमालय के ऊँचाई में पाए जाते हैं। रैटस रंजनी, रैटस अलविरा, मिलार्डिथा कोन्डाना आदि दक्षिण भारत में मिलते हैं। अन्डमान और निकोबार द्वीप पुंज में रैटस मुलेरी, रैटस रागर्सी, रैटस पामेरम, रैटस वैरुलस आदि सामान्य रूप से मिलते हैं। कुछ जातियाँ जैसे बैन्डीकूटा बेन्गोलेंसिस, बैन्डीकूटा इन्डिका, रैटस रैटस, मस मसकुलस, मस बूदूगा, मस प्लैटीथिक्स, गोलुन्डा इलियोटी, बेन्डीस्पूरिया ओलेरीसिया आदि भारत में सर्वत्र पाई जाती हैं। चूहों की 18 जातियाँ केवल भारत में मिलती हैं। इनमें अधिकतम जातियाँ अन्डमान और निकोबार द्वीप पुंज में सीमित हैं।

साही के शरीर पर लम्बे कँटे होते हैं। इनकी तीन प्रजातियाँ भारत में मिलती हैं। हिसट्रिक्स इन्डिका भारत का सबसे बड़ा तथा भारी कृन्तक है और यह सम्पूर्ण देश में मिलता है। बाकी दो जातियाँ हिसट्रिक्स हागसोनी और एथेरयूरस मेकुरस पूर्वोत्तर पहाड़ियों में पाई जाती हैं।

भारत में गिलहरियों की विविधता भी लाजवाब है। 12 वंश की 29 जातियाँ हमारे देश में मिलती हैं। गिलहरियों में चबाने वाले दाँत 5 ऊपर के जबड़े में तथा 4 नीचे के जबड़े में पाए जाते हैं। केवल रटूफा में ऊपरी जबड़े में 4 दाँत होते हैं। इनकी पूँछ लम्बी तथा घनी रोमयुक्त होती है। इसका शरीर लाल पीले, चाकलेट तथा काले रंग के रोमों से ढका होता है। दो जातियों को छोड़ कर बाकी गिलहरी अधिकतम समय पेड़ों पर व्यतीत करती हैं। मारमोट (मारमोटा बोबाक तथा मारमोटा काउडेटा) हिमालय की ऊँचाई में बिलों में रहते हैं। अधिकतर गिलहरियाँ जंगल पसन्द करती हैं परन्तु फनाम्बूलस की जातियाँ बाग-बगीचों, सब्जी के खेतों एवं मानव बस्ती के आस-पास पेड़ों तथा मकानों की दराओं में रहती हैं। टेमियाप्स मैक्लिन्डो, कैलेस्क्यूरस इरिथियस, कैलेस्क्यूरस पाइगेरिथिस, ड्रेमोमीस लाक्रिया, पेटाउरिस्टा नोबिलिस, विश्वमयोटेरस विश्वासी इत्यादि पूर्वोत्तर भारत में मिलती हैं। रटूफा इन्डिका, रटूफा माइक्रा, फनैम्बूलस लेयार्डी, फनैम्बूलस ट्रिसट्रिएटस, पेटीनोमस फुस्कोकेपीलस आदि दक्षिण भारत में तथा इउपेटारस साइनेरियस, हाइलोपेटिस फिमब्रियेटस और हाइलोपेटिस बाबेरी पश्चिमी हिमालय में व्याप्त हैं। फनैम्बूलस पेनान्डी उत्तर भारत में तथा फनैम्बूलस पापेरम दक्षिण भारत में देखी जा सकती है। पेटाउरिस्टा, इउपेटारस, हाइलोपेटिस, पेटीनोमिस आदि वंशों की जातियों में शरीर के दोनों ओर पतली खाल होती है, जिनकी सहायता से वे एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक हवा में तैर कर जा सकते हैं।

चूहों की 18 प्रजातियाँ केवल भारत में मिलती हैं। इनमें अधिकतर अन्डमान-नीकोबार द्वीप पुंज में सीमित हैं। गिलहरियों की चार प्रजातियाँ जैसे विश्वमयोटेरस विश्वासी, इउपेटारस साइनेरियस, पेटीनोमीस फुस्कोकैपिलस और फनैम्बूलस ट्रिसट्रिएटस भारत के बाहर नहीं मिलती हैं।

ऊपर वर्णित जातियों में कुछ की संख्या करोड़ों से अधिक है। इनकी संख्या उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। इसका मुख्य कारण इनकी असीम प्रजनन क्षमता और हर वातावरण में रहने की शक्ति है। बैन्डीकूटा, रैटस, मस, मिलार्डिया, टैटेरा, फनैम्बूलस आदि वंशों की जातियाँ सिमे शामिल हैं। इनकी कुछ जातियों में बच्चे बहन करने का समय केवल 18 दिन होता है। ये वर्ष में एक से आठ बार तक तथा एक बार में 1-18 तक बच्चे देते हैं। इनके बच्चे 4 से 6 माह के भीतर ही प्रजनन करने योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार कुछ वर्षों में एक जोड़े से कई हजार कृन्तक पैदा हो जाते हैं। ये 5000 मीटर की ऊँचाई से लेकर मरुस्थल की भीषण गर्मी तक, जंगल से बस्ती तक, मिट्टी के नीचे, पेड़ों पर तथा घरों के अन्दर पाए जाते हैं। ये जिस वातावरण में रहते हैं अपनी जीवनचर्चा

तथा आकार उसी के अनुसार परिवर्तित कर लेते हैं। इससे इन्हें दैनिक कार्यों को करने में कोई कठिनाई नहीं होती और इनकी संख्या तथा विविधता में निरन्तर वृद्धि होती चली जा रही है।

इसके विपरीत सभी उड़ने वाली गिलहरियाँ, रटूफा और हिस्ट्रिक्स की प्रजातियाँ शिकार तथा आवासस्थल के विनष्ट होने के कारण लुप्त होती जा रही हैं। इसी विषय को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने इनके संरक्षण के हर उपाय किए हैं। उड़ने वाली गिलहरियाँ वन्य-प्राणी संरक्षण कानून, 1972 के अन्तर्गत सूची 1 में और रटूफा की जातियाँ सूची 2 में रखी गई हैं। इनके आवासस्थलों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभयारण्यों को घोषित किया गया है।

कृन्तक पर्यावरण में एक विशेष भूमिका पालन करते हैं। कृन्तक मुख्यतः प्राथमिक उत्पादक जैसे फल, फूल, बीज, मूल, कन्द आदि का भोजन करते हैं। द्वितीय श्रेणी के बहुत से खादक (कन्ज्यूमर) जैसे सर्प, बिल्ली, स्याल इत्यादि कुछ हद तक कृन्तकों पर अपने भोजन के लिए निर्भर होते हैं। जंगलों में परागण तथा बीजों के वितरण में कृन्तक एक विशेष भूमिका निभाते हैं। रटूफा और जरबिलस की प्रजातियाँ क्रमशः जंगलों तथा मरुस्थलीय वातावरण की सूचक हैं। कुछ आदिवासी चूहे, जरबिल, गिलहरी, साही इत्यादि का मांस खाते हैं। कृन्तक की खालों, काँटे, तथा रोम से जूते, बटुए, अलंकार आदि वस्तुएँ तैयार की जाती हैं।

इसके विपरीत जब से मनुष्य ने खेती-बारी करना प्रारम्भ किया है तभी से कृन्तकों की कुछ प्रजातियाँ जैसे चूहा, बैन्डीकूटा, जरबिल, मिलाडिया इत्यादि अपने प्रलयकारी गतिविधियों से मनुष्यों की दुश्मन बनी हुई हैं। ये सभी फसलों, फलों, सब्जियों, चरागाहों, वनों, भण्डारों, सड़कों, घरेलू सामानों एवं अन्य आवासीय क्षेत्रों में लगभग 10 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचाते हैं। घुइस तथा जरबिल जमीन और बाँधों में गहरे बिल बनाकर उसे खोखला कर देते हैं जिससे कच्चे मकान बरसात में दह जाते हैं, बाँध बह जाते हैं तथा रेल पटरियाँ दुर्घटनाग्रस्त हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त बिल बनाने की प्रक्रिया में बहुत सारी मिट्टी जमीन के बाहर आ जाती है जिससे भू-संरक्षण की समस्या और भी विकट हो जाती है। पूर्वोत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में चूहों की एक विशेष समस्या है। इन पहाड़ी क्षेत्रों में बाँस की विभिन्न जातियाँ हैं जिनमें 10-75 वर्ष के अन्तराल पर फूल खिलते हैं। ऐसा देखा गया है कि जिस वर्ष बाँस फूलता है उस समय चूहों की संख्या में असीमित वृद्धि होती है और ये धान आदि की फसल को तहस-नहस करके अकाल की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। परन्तु बाँस के फूलने तथा चूहों की वृद्धि में कोई सम्बन्ध है या नहीं इसकी वैज्ञानिक पुष्टि नहीं हुई है।

चूहे अनेक प्रकार की भयानक बीमारियाँ भी फैलाते हैं जिनमें प्लेग, घ्युराइन टाइफस, लैप्टोस्पाइरल जान्डिस आदि से सभी परिचित हैं। पिछले वर्ष भी प्लेग के कारण गुजरात के सूरत जिले में बहुत से लोगों के प्राण गए थे। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद ने कृन्तक

नियन्त्रण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक विस्तृत योजना तैयार की है। इस योजना में देश के विभिन्न जगहों पर चूहों की रोकथाम के लिए गवेषणा और शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

कृषि एवं स्वास्थ्य के हिसाब से नीचे दी हुई जातियाँ ज्यादा हानिकारक हैं:

गिलहरी : उत्तर भारत में 5 धारीवाली (फनैम्बुल्स पेनान्टी) तथा दक्षिण भारत में 3 धारीवाली (फनैम्बुल्स पामेरम) मिलती हैं। ये फलों और सब्जियों को नुकसान पहुँचाती हैं। एक बार में 1 से 5 तक बच्चे पैदा करती हैं।

भारतीय जरबिल (टैटेरा इन्डिका) : पर्वतीय क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में मिलता है। यह प्लेग बैसीलस का भण्डार है। सभी प्रकार की फसलों, चारागाह, वन वृक्ष आदि को नुकसान पहुँचाता है। एक बार में 1-10 बच्चे पैदा करता है।

छोटी घुइस (बैन्डीकूटा वेन्गेलेंसिल) : यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है और सबसे हानिकारक है। खेतों और गोदामों में अन्न को नुकसान पहुँचाता है। एक बार में अधिकतम 18 तक बच्चे देता है।

बड़ी घुइस (बैन्डीकूटा इन्डिका) : लगभग सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। यह खेतों और गोदामों में हानि पहुँचाता है। यह बिलों से इतनी अधिक मिट्टी निकालता है कि अकसर कच्चे मकान गिर जाते हैं और बाँध बह जाते हैं। एक बार में 1-12 तक बच्चे देते हैं।

घरेलू चूहा (रैटस रैटस) : यह ठंडे बर्फीले प्रदेश के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। मुख्यतः मानव के साथ घरों, गोदामों तथा पेड़ों पर रहता है। फसलों तथा सब्जियों का खास शत्रु है। यह जितना खाता है- उससे अधिक नष्ट करता है। इसके एक बार में 1-10 तक बच्चे पैदा होते हैं।

घरेलू चुहिया (मस मसकुलस) : यह सम्पूर्ण विश्व में पाए जाते हैं। ये फसलों तथा घरेलू वस्तुओं को भारी क्षति पहुँचाते हैं। ये एक साथ 4-8 तक बच्चे देते हैं।

छोटी पूँछवाला छंछुदरी चूहा (नेसोकिया इन्डिका) : यह उत्तर भारत में पाया जाता है। इसका मुख्य आक्रमण वनों तथा वनारोपण पौधों पर होता है। ये एक साथ 8 बच्चे तक देते हैं।

कोमल रोम वाला मैदानी चूहा (मिलार्डिया मेल्टाडा) : मुख्यतः सींचित क्षेत्रों में मिलता है। फसलों तथा चारागाहों को खूब नुकसान पहुँचाता है। वर्ष भर प्रजनन चलता है तथा 8 तक बच्चे पैदा करता है।

भारतीय साही (हिसट्रिक्स इन्डिका) : सम्पूर्ण भारत में वितरित है और कन्द-फसलों को अधिक नुकसान पहुँचाता है। एक बार में 1-3 तक बच्चे देता है।

इनके अतिरिक्त भारतीय मरुस्थलीय जरबिल (मेरियोनस हुरियानी), मैदानी चुहिया (मस वूडुगा), हिमालय का चूहा (रैटस निटिडस), नार्वे चूहा (रैटस नारवेजिकस) आदि भी हानिकर प्रजातियाँ मानी जाती हैं।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि कृषि एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा तथा वातावरण के सन्तुलन के लिए कृन्तकों का नियन्त्रण तथा कुछ क्षेत्रों में संरक्षण आवश्यक हैं और इसके लिए सरकारी प्रयासों के साथ-साथ आम जनता का शामिल होना भी आवश्यक है।

आभार ज्ञापन

लेखक गण भारतीय प्राणि सर्वेक्षण विभाग के निदेशक डा० ए. के. घोष के आभारी हैं जिनकी अनुमति एवं सुविधा प्रदान करने से यह कार्य सम्पन्न हो सका। साथ ही डा० जे० आर० बी. अलफ्रेड, अतिरिक्त निदेशक, तथा डा० आर० के० वाण्येय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण विभाग के भी आभारी हैं जो इस लेख के पूर्ण होने तक अपना सहयोग, सुझाव एवं प्रोत्साहन देते रहे। लेखक डा० विजय चन्द्र अग्रवाल, अवकाश प्राप्त वैज्ञानिक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण विभाग के भी आभारी हैं जिन्होंने लेख को पढ़कर अपने सुझाव दिए।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

चमगादड़ों की विविधता

जय प्रकाश श्रीवास्तव

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत में चमगादड़ों के अध्ययन एवं अनुसंधान पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया था। लेकिन सन 1911 से 1930 तक बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी द्वारा किये गये स्तनपायी जन्तु सर्वेक्षण तथा 1916 से लगातार अब तक भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा किये गये अध्ययनों एवं अनुसंधान द्वारा, तथा कुछ अन्य विश्वविद्यालयों में किये गये अध्ययन से, अब हम इस उड़ने वाले स्तनपायी जन्तु के जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं हमारे देश में मिलने वाली जातियों एवं उपजातियों की विविधता से भलीभाँति परिचित हो चुके हैं। भारत में चमगादड़ों की कुल ८ कुल, 34 वंश एवं 109 जातियों की पहचान अब तक की जा चुकी है।

चमगादड़ों को स्तनपायी समुदाय के वर्ग काइरोप्टेरा में रखा गया है। इनकी आकृति में उल्लेखनीय यह है कि कुछ चमगादड़ों में दोनों नाकों के बीच थोड़ा ऊपर की ओर एक विशेष तरह का अंग होता है जिसे नोज लीफ कहते हैं। इसका वास्तविक कार्य क्या है, यह कहना कठिन है, लेकिन यह अनुमान लगाया जाता है कि यह अंग ध्वनि की गति से तेज आवाज पैदा करने में (जो कि चमगादड़ों की एक विशेषता होती है) सहायक होता है। इसी तरह कुछ चमगादड़ों में कान के पास एक छोटी अतिरिक्त बनावट होती है जिसे कान की लर या ट्रैगस कहा जाता है। इसका कार्य ध्वनि की गति से तेज आवाज को सुनने एवं पहचानने में मदद करना होता है। इन्हीं दो गुणों के आधार पर वर्ग काइरोप्टेरा को दो उपवर्गों मेगाकाइरोप्टेरा एवं माइक्रोकाइरोप्टेरा में विभाजित किया जाता है। मेगाकाइरोप्टेरा में ऊपर बनाए दोनों विशेष अंगों में से कोई भी अंग नहीं होता, जबकि माइक्रोकाइरोप्टेरा में इनमें से एक अंग या दोनों होते हैं।

मेगाकाइरोप्टेरा में बड़े-बड़े चमगादड़ आते हैं और इनकी एक विशेषता यह है कि इनका मुख्य खाद्य फल हैं। इसीलिए इन्हें फल खाने वाले चमगादड़ भी कहते हैं। वैसे तो हमारे

देश में इनकी छः जातियाँ मिलती हैं लेकिन सामान्यतः मिलने वाली जातियों में मुख्य हैं : उड़ने वाली लोमड़ी, जिसका वैज्ञानिक नाम है *प्टेरोपस जाइगैन्टियस*। इसे लोमड़ी कहने का कारण यह है कि इसके मुख की आकृति लोमड़ी के मुख के समान होती है। इसका आकार कौए के बराबर जैसा होता है। दिन में ये बड़े-बड़े पेड़ों जैसे बरगद, पीपल आदि पर झूलते रहते हैं और सूर्यास्त होते ही खाने की खोज में निकल पड़ते हैं। उड़ते समय इनको देखने से अक्सर इनमें तथा कौओं में भ्रम हो जाता है। इस वर्ग में आने वाले अन्य मुख्य चमगादड़ हैं; शार्ट नोज़्ड फ्रूट बैट, जिसका वैज्ञानिक नाम है *साइनोप्टेरस स्फिंक्स* तथा भारतीय फ़्लवस फ्रूट बैट जिसका वैज्ञानिक नाम है *रूसेटस लेम्बेनाल्टी*। इन दोनों में मुख्य अन्तर इनके दाँतों की संख्या में है। शार्ट नोज़्ड फ्रूट बैट में दाँतों की संख्या ऊपरी तथा निचले दोनों जबड़ों में दोनों तरफ एक-एक कम होता है और आकार में भी यह दूसरे से कुछ छोटा होता है। दिन में ये पुराने खाली पड़ी हुई इमारतों या मन्दिरों में सैकड़ों की संख्या में झूलते हैं तथा रात होते ही खाने की खोज में निकल पड़ते हैं। फलों के बगीचों, खास कर केले के बगीचों में इन्हें आसानी से देखा जा सकता है।

माइक्रोकाइरोप्टेरा उपवर्ग में छोटे आकार के चमगादड़ आते हैं। इस वर्ग में आने वाले चमगादड़ों की विशेषता यह है कि इनका मुख्य खाद्य कीड़े-मकोड़े हैं। इसीलिए इन्हें कीड़े-मकोड़े खाने वाला चमगादड़ भी कहा जाता है। इस वर्ग को अध्ययन की सुविधा के लिए सात वंशों में विभाजित किया गया है जिसका मुख्य आधार है उनकी खोपड़ी की बनावट, दाँतों की संख्या, कान का आकार एवं बनावट, पूँछ की बनावट एवं आकार तथा अगले हाथ की लम्बाई इत्यादि। यद्यपि इस वर्ग के चमगादड़ों को कीड़े खाने वाला कहा जाता है, किन्तु इसी वर्ग में आने वाला भारतीय नकली वैम्पायर (जिसका वैज्ञानिक नाम *मेगाडर्मा लाइरा* है) जाति एक मांसाहारी चमगादड़ है, जो कि चूहों, चुहियों, मेढक, गिरगिट तथा छोटे चमगादड़ों इत्यादि को अपना शिकार बनाता है। पुराने एवं खाली मकानों में सैकड़ों की संख्या में या फिर कभी कभी दो-चार की संख्या में भी ये मिलते हैं। इन चमगादड़ों में नोज लीफ एवं ट्रैगस दोनों ही पाये जाते हैं। कुछ चमगादड़ ऐसे भी होते हैं जिनमें नोज-लीफ तो होता है लेकिन ट्रैगस नहीं होता। इनमें मुख्य है, *राइनोलोफस* जिसमें नोज लीफ घोड़े के नाल की तरह होता है इसलिए इसे हार्स शू बैट कहते हैं। दूसरी जाति *हिप्पोसिडेरास* में यह नोज लीफ कई पत्तों में होती है इसलिए इसे लीफ-नोज्ड बैट कहते हैं। इन दोनों की कई जातियाँ एवं उपजातियाँ हमारे देश में मिलती हैं। ऐसे चमगादड़ जिनमें लीफ-नोज नहीं होता लेकिन ट्रैगस होता है उनके भी कई गण, जातियाँ एवं उपजातियाँ हमारे देश ये मिलते हैं। इसका एक अच्छा उदाहरण है भारतीय पिपिस्ट्रेल जो कि सबसे छोटी जाति का चमगादड़ होता है। इसका आकार मात्र 50 मिलीमीटर के लगभग होता है।

देखने में सभी चमगादड़ काले लगते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो रंगीन होते हैं जैसे पेटेड बैट, जिसका वैज्ञानिक नाम है *केरीवूला*। इसकी कई जातियाँ एवं उपजातियाँ मिलती हैं। इसी तरह *स्कोटोफिलस* जाति के चमगादड़ों का पेट पीला होता है इसलिए उन्हें पीला

चमगादड़ कहा जाता है। लिंग के आधार पर भी कुछ चमगादड़ों में नर और मादा की सारीरिक बनावट में भी अन्तर होता है। जैसे टैफोजुआस मेलानोपोगान जाति के चमगादड़ के नरों में निचले जबड़े की बाहरी तरफ काले रंग के दाढ़ी की तरह बाल पाये जाते हैं जो कि मादाओं में नहीं होते/इसी तरह टैफोजुआस लोंगिमेनस जाति के नरों में निचले जबड़े के बाहरी भाग पर 4-5 मि. मी. गहरा धैला होता है जो कि मादाओं में नहीं होता।

चमगादड़ों के विषय में उचित जानकारी न होने के कारण अक्सर गाँवों में इसे देखते ही लोग मारने की कोशिश करते हैं। कुछ लोग इसे अपशकुन भी समझते हैं। लेकिन वास्तुतः चमगादड़ हमारे लिए एक उपयोगी जानवर है खासकर कीड़े मकोड़े खाने वाले चमगादड़। ये काफी संख्या में कीड़ों को जो कि हमारी फसलों के लिए या हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, उन्हें खाकर हमारी रक्षा करते हैं, और इस तरह आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

भारतीय नकली वैम्पायर तो चूहों एवं चुहियों को काफी संख्या में संहार करके इनकी आबादी को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हॉ फल खाने वाले चमगादड़ अवश्य हमारे फलों को नुकसान पहुँचाते हैं लेकिन वे भी भिन्न-भिन्न पीधों पर जाकर चराग के छिड़काव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उड़ने वाली लोमड़ी तथा अन्य फल खाने वाले चमगादड़ों का मौस हमारे देश के कुछ भागों में खाया जाता है और ऐसा माना जाता है कि यह काफी पौष्टिक भी है। कहते हैं कि चमगादड़ का मौस दमा की बीमारी की एक उत्कृष्ट औषधि है। निःसन्देह विस्तृत रूप से चमगादड़ों पर अनुसंधान करने से इनके महत्व को और भी अच्छी तरह आँका जा सकता है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

चार विलुप्तप्राय स्तनपायी जन्तु

सी. राधाकृष्णन

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,
पश्चिमी घाट प्रादेशिक शाखा,
कालीकट (केरल)

राधेश्याम शर्मा

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,
पश्चिमी प्रादेशिक शाखा,
पुणे (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना

मानव द्वारा प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का निरन्तर अविवेकी शोषण, जनसंख्यामें वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगिक इकाईयोंसे निकल रहे अमर्याद अपशिष्टों तथा कृषि एवं विकास के लिए अधिक वनाच्छादित भूमि संपादन के फलस्वरूप पर्यावरण असंतुलन, प्रदूषण जैसी समस्याओंने भू-मंडलीय स्वरूप धारण कर लिया है। इन सब गतिविधियों के प्रभाव से वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं के प्राकृतिक आवासों को क्षति पहुँची है। नतीजा, जीव संपदा की संख्या एवं वनत्वमें संकटात्मक कमी हो गई है। प्राणी एवं वनस्पति जातियों का सृष्टि से क्रमशः विलुप्त हो जाना स्वाभाविक हो गया है।

मानवीय विकास की गतिविधियों से पर्यावरण और जैविक विविधता को चिन्तनीय हानि पहुँचती है। इस अवस्थामें सुधार लाना किसी अकेले राष्ट्र के बस की बात नहीं रह जाती। इसे केवल विश्व स्तर के प्रयास ही कुछ संतोषजनक स्थिति निर्माण कर सकते हैं। इसी उद्देश्यपूर्ति के लिए विश्वभर में ऐसे सोलह राष्ट्रोंका पता लगाया गया है, जिन्हें "जैविक विविधतासे समृद्ध" राष्ट्र कहा जा सकता है। सौभाग्यवश भारतवर्ष उनमें से एक है। इन सोलह राष्ट्रों में वितरित अठारह स्थान ऐसे हैं जिनका प्रधानतासे संरक्षण करनेकी आवश्यकता है। यह स्थान "हॉट स्पॉटस" कहलाते हैं। जो जैविक विविधतासे समृद्ध तो हैं किन्तु वहाँ के परिवेश और भंगुर पारिस्थितिकी में संकटपन्न स्थिति निर्माण होने तथा उनके विनाश का खतरा निरन्तर बना रहता है। भारतवर्षमें ऐसे दो हॉट स्पॉटस की पहचान की गयी है। वे हैं "पश्चिमी घाट" और "पूर्वी हिमालय प्रदेश"।

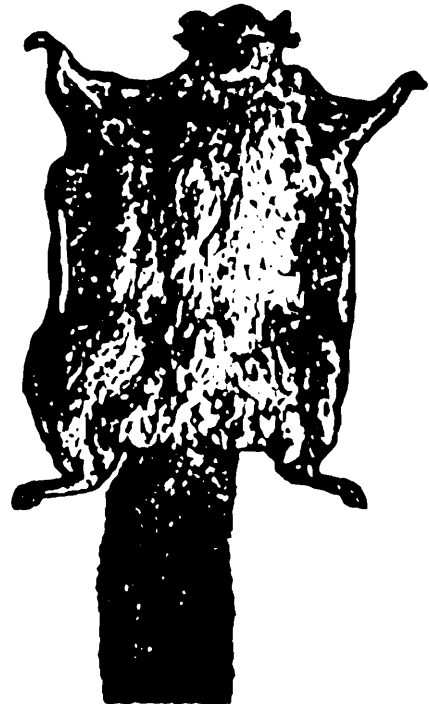
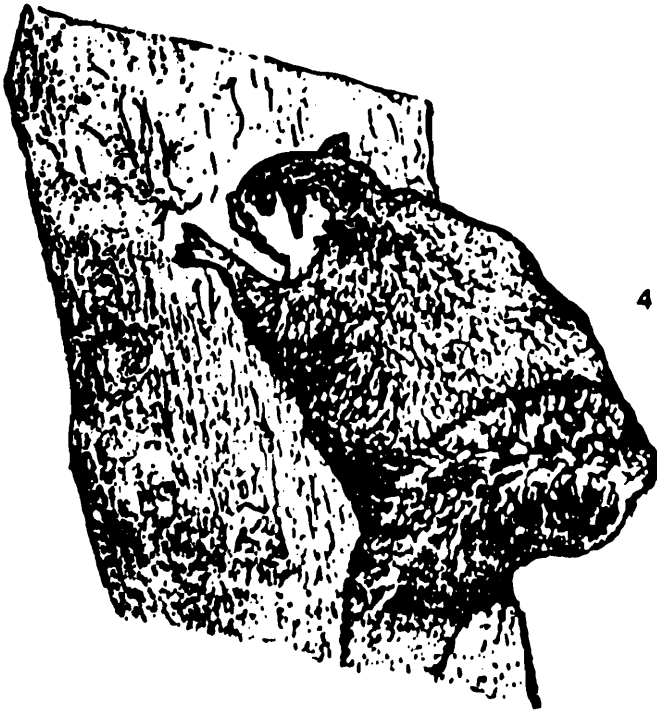
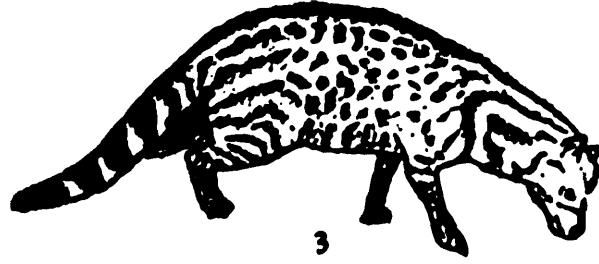
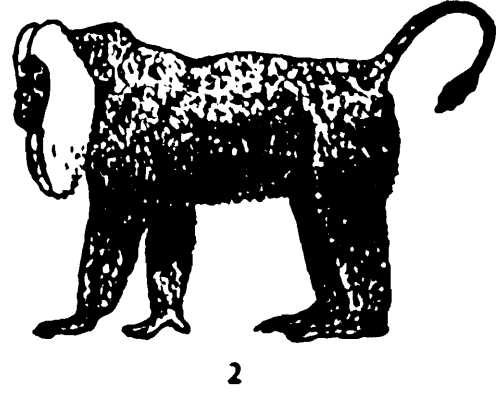
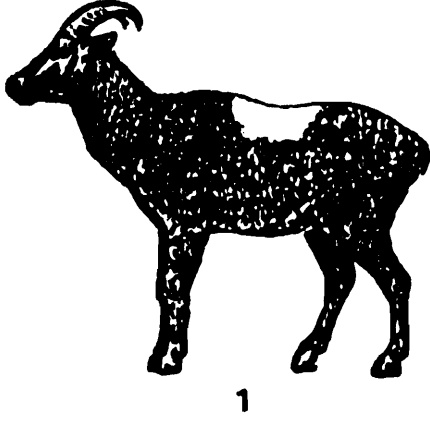
प्रस्तुत लेख में ऐसे चार दुर्लभ और संकटग्रस्त स्तनपायी जन्तुओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनका वर्तमान भौगोलिक वितरण केवल पश्चिमी घाट के दक्षिण भागमें स्थित खंडित वन क्षेत्रों में प्रतिबंधित हो गया है।

1. नीलगिरी तॉर

भारतमें दो प्रकार की पहाड़ी वन्य बकरियाँ पायी जाती हैं। वे हिमालयीन तॉर और नीलगिरी तॉर के नाम से जानी जाती हैं। इन समवंशी जातियों के नामोंसे उनका भौगोलिक वितरण स्पष्ट हो जाता है। हिमालयीन तॉर केवल हिमालय में मिलती है। नीलगिरी तॉर अब केवल तामिलनाडु और केरल राज्योंमें नीलगिरी पर्वत और समीपवर्ती पहाड़ियों में 1300 से 2600 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रोंमें समूहों में पायी जाती हैं।

इसे अंग्रेजी बोलचाल की भाषामें “इबेक्स” तो स्थानिक लोग “वरायआडू” तथा “मुल्ल आडू” कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम हेमीट्रेगस हायलोक्रीयस है। इसका शरीर गठीला और सर्वथा पालतू बकरी की तरह होता है। शरीर का रंग गहरा, पीला और भूरा होता है। निचला भाग हल्का पीला होता है। उम्र के साथ साथ रंग गहरा और काला होता जाता है और कूल्हे पर गहरे रंग का धब्बा (सेंडल पेंच) उभरकर दिखने लगता है जो दूर से लगभग सफेद नजर आता है। नर के गर्दन और कंधेपर छोटी आयाल होती है और वे मादा से ज्यादा गठीले और वजनदार होते हैं। मादा को केवल एक जोड़ी स्तन होते हैं। इनके सींग खुरीदार होते हैं जो प्रायः उपर की ओर कुछ अंतर तक समानान्तर रह कर फिर नीचे की ओर झुककर वक्र हो जाते हैं।

यह एक सामाजिक पशु है और 5 से 50 तक का मिश्रित समूह बनाकर रहता है। समूहमें नर, मादा तथा अवयस्क सदस्य होते हैं। समूह की संख्या यथावकाश बदलते रहती है। इनके समूह सामान्यतः खाई की भीतरी दीवारों, पहाड़ों या चट्टानों की खड़ी दीवारों तथा घासों से आच्छादित पहाड़ियों में ही रहते हैं। यह मूलतः तृणभोजी प्राणी है किन्तु कभी कभार तृणतर वनस्पतियाँ भी खाते हैं। वे मुख्यतः प्रातःकाल एवं तीसरे प्रहर के समय चरते हैं। वे बहुत लज्जालु सतर्क फुर्तीले, क्रियाशील एवं तीक्ष्ण दृष्टिवाले पशु हैं। उनमें सूँघनेकी शक्ति अतिविकसित होती है जिससे वे शत्रुकी आहट को पहचानते हैं। आपस में वे खतरे की सूचना आवाज तथा अन्य भाव संकेत द्वारा देते हैं। वे सामान्यतः अपने चरागाहों के ऊपर की ओर ही रहते हैं जिससे शत्रु को उनके निकट पहुँचना कष्टप्रद होता है। प्रायः तेंदुआ, शेर और जंगली कुत्ते इनके मुख्य भक्षक हैं। इनका प्रजनन एवं मुख्य मैथुन का सामयिक उत्तेजन काल वर्षा ऋतु है। संगम के छः माह बाद बछड़े पैदा होते हैं। मादा सामान्यतः एक या कभी कभी दो बछड़ोंको जन्म देती है। हालमें हुए ध्यानपूर्वक निरीक्षणोंसे पता चला है कि यदि पैदा होते ही किसी कारणवश बछड़े की मौत हो जाती है तो माता तुरंत संगम करके गर्भधारण करती है।



1. नीलगिरी तौर; 2. सिंह-पूँजीय चन्द्र; 3. मलाबार गंध मार्जार;
4. छोटी प्रायणकोर ठड्डयन गिलहरी का पूँजीय एवं अधरीय चित्र।

इस पशु की इसके संपूर्ण प्राकृतिक आवास क्षेत्रमें अनुमानित संख्या लगभग 2230 है। जिसमें से करीब 700 केवल इरवीकुलम राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्रमें हैं। वहाँ उन्हें संरक्षण प्राप्त है। इस उद्यान के बफर क्षेत्र राजमलाईमें इनके झुण्ड का अवलोकन आसानी से किया जा सकता है। देश के विभिन्न पशु-वाटिकाओं में इनकी संख्या 20 के करीब है।

2. सिंह-पूँछीय बन्दर

इस वानर जातिका वैज्ञानिक नाम है मेकाका सायलेनस। स्थानिक नाम “सिंहावलन कुरांगु”, हिन्दी में सामान्य नाम “सिंह पूँछीय बन्दर” और अंग्रेजीमें “दि लायन टेल्ड मकाक” है।

इसका चमकदार काले रंगका गठीला शरीर, चेहरे के चारों ओर बसी लम्बे गहरे भूरे बालों की आयाल और पूँछ के सिरेपर स्थित बालोंका गुच्छ इस जाति की विशेष पहचान है। इसके शरीर की लम्बाई 50-60 से. मी. और पूँछ लगभग 25-40 से. मी. लम्बी होती है। इनके नर का वजन करीब 6.8 कि. ग्राम होता है। मादा नर से कुछ छोटी होती है।

यह पशु दक्षिण भारत के कर्नाटक, केरल और तामिलनाडु राज्योंमें पश्चिमी घाट के पहाड़ी क्षेत्र के सदाहरित वनोंमें पाये जाते हैं। इन वनों के अति ऊँचे पेड़ों पर तथा समुद्रतल से लगभग 2000-3500 फीट ऊँचे क्षेत्रोंमें वे रहना ज्यादा पसंद करते हैं। वे मुख्यतः वनस्पतियों के पत्ते तथा फल खाते हैं किन्तु कभी कभी कीटों को भी खाते हैं। सामान्यतः यह बहुत लज्जालु स्वभाव के होते हैं। हरितवनों के बीच इनको देख पाना कठिन होता है। अन्य बन्दरों की भाँति ये भी यूथी प्राणी हैं और 4 से 30 सदस्यों का झुण्ड बनाकर रहते हैं। कहा जाता है कि इनके नर की पुकार कुछ मनुष्य की आवाज से मिलती जुलती है। वे छलाँग बहुत धीमी गतिसे लगाते हैं। जब तक आवश्यक न हो वे अपना क्षेत्र नहीं छोड़ते। कभी कभी इन्हें वनोंके निकटवर्ती चाय तथा इलायची के बागानों में देखा जा सकता है।

ऐसा अनुमान है कि दक्षिण भारतके वनोंमें इनकी संख्या लगभग 3 से 4 हजार तक है और विश्व के विभिन्न पशु-वाटिकाओंमें 400 के करीब है। इनकी संख्यामें कमी और विलगित वितरण का उत्तरदायित्व इनके प्राकृतिक वासस्थलों को पहुँच रही क्षति पर पड़ता है।

3. मलाबार गंध मार्जार

इसका जीव वैज्ञानिक नाम है वीवेरा मेगास्पीला सीवेटीना तथा हिन्दी सामान्य नाम मलाबार गंध मार्जार। स्थानिक लोग इसे “मलेमेर” तथा “जवाद” कहते हैं। यह मार्जार कुल की पश्चिमी घाटमें पायी जानेवाली अति दुर्लभ और विशेषक्षेत्री जाति है। यह कर्नाटक, केरल और संभवतः तामिलनाडु, गोवा तथा महाराष्ट्र राज्यों के पश्चिमी घाटके गिरीपाद, निम्नभूमि तथा तटवर्ती वनों में वास करती है। इसके वितरण के पहले के वृत्तांतों के विपरीत यह देखा गया

है कि यह जाति प्रायः पश्चिमी घाट के ऊँचाईवाले क्षेत्रमें पायी नहीं जाती । ज्यादातर यह निलांबुर और केरल के समीपवाले क्षेत्रोंके काजू के निजी बागानों तथा चावल की खेती के सीमाप्रान्त में ही रहते हैं जो इनके लिए मुख्य वासस्थल प्रदान करते हैं। दिनमें वे काजू बागानों तथा पासवाले निम्नोक्त जंगलोंमें आश्रय लेते हैं। इनके अतिखंडित उपानुकूलतम वासस्थलों में प्रचलित शिकार के कारण इनकी संख्या घनत्वमें अत्यधिक कमी आयी है।

इसका शरीर विशाल और देशी कुत्ते के शरीर के समान होता है। शरीर की पूँछसहित लम्बाई लगभग 125 सें. मी. होती है। इसके शरीर के वजन का सही अनुमान उपलब्ध नहीं है किन्तु 8 कि. ग्राम तक हो सकता है। इसका समूर (फर) धूसर धवल तथा भूरे-पीले रंग का होता है। इसके पीठपर गर्दन से लेकर पूँछ के सिरे तक काले बालों तथा शूक की शिखा होती है। शरीर के दोनों तरफ बड़े बड़े काले धब्बे होते हैं जो कोई विशिष्ट प्रतिमान नहीं बनाते।

हालाँकि इस जाति का विस्तृत प्रथम विवरण लगभग 150 वर्ष पुराना है फिर भी विश्व के प्राणिसंग्रहालयोंमें इनके आधे दर्जन से ज्यादा नमूने उपलब्ध नहीं हैं। सौभाग्यवश इस जातिका प्रथम वर्णित नमूना जो सन 1845 में संग्रहित किया गया था आज भी भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कलकत्ता के प्राणिसंग्रह में उपलब्ध है। गत दशक तक यह जाति बहुतायतमें पायी जाती थी किन्तु तत्पश्चात यह अतिदुर्लभ हो गयी। लम्बी अवधि तक इसके न पाये जाने के प्रमाणों के आधारपर यह मान लिया गया था कि शायद यह जाति अब लुप्त हो चुकी है। किन्तु भारतीय प्राणि सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों द्वारा सन 1987 में केरल राज्य के जिला मलपुरम में इसके पुनर्लोच के सुखद समाचार ने यह प्रमाणित कर दिया कि यह जाति निःसंदेह अभी भी जीवित है।

खानपानमें यह अपनी समवंशियों की तरह मिश्रितहारी है और छोटे पशु जैसे मुर्गी, साँप, मेंढक, कैंकड़े, कीट आदि तथा फल एवं तरमूल खाते हैं।

इसकी प्रजनन आदतों के बारेमें कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनके गंधयुक्त ग्रंथियों तथा विभूषक चमड़े को प्राप्त करने के लिए गतकाल में इनकी निर्मम हत्या होती रही। इनके प्राकृतिक आवासोंमें क्षति तथा मौजूदा काजू बागानों को भिटाकर रबर जैसी ज्यादा कीमती पेड़ों की खेती करने की प्रथा के कारण इस पशु के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है।

4. छोटी ब्रावणकोर उड्डयन गिलहरी

इसे स्थानिक भाषा में "परन" एवं "परयणन" कहा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम है "पेटीनोमीस फसकोकॉपीलस फसकोकॉपीलस"। छोटे तथा "उड्डयन गिलहरी परिवार" के सदस्यों का यह एकमात्र प्रतिनिधि है जो दक्षिण भारतमें पाया जाता है। अन्य सभी उत्तर-पूर्व भारत के निवासी हैं। दक्षिण भारतमें भी यह केवल मलाबार के दक्षिणमें और केरल के पश्चिमी घाट क्षेत्रमें पाया जाता है।

यह एक मध्यम छोटे खरगोश के आकारवाली उड्डयन गिलहरी है जिसका समूर घना तथा पूँछ गुच्छेदार अथवा क्षुपाभ होती है। साथही इसके बीचोबीच एक काले बालों की लकीर

भी होती है। इसके कानों के अधोभागपर कान की लम्बाई से भी ज्यादा लम्बी मुलायम बालों की लकीर होती है। इसकी पीठ लाल-भूरे रंग की तथा उसका निचला हिस्सा तुलनामें ज्यादा गहरा होता है। गाल और पेट की दोनों बगलें सफेद होती हैं।

यह गिलहरी रात्रिचर है। दिनमें घने ऊँचे फहाड़ी वृक्षों में घने छिद्र में रहती है। मादा एकसाथ दो बच्चों को जन्म देती है। यह फल, पत्ते, पेड़ों की छाल तथा प्ररोह खाकर गुजारा करती है। यह जाति अति दुर्लभ है जिसका वितरण मध्यम ऊँचाईवाले क्षेत्रोंमें अत्यन्त सीमित हो गया है। इसका विस्तृत प्रथम वर्णन सन 1847 में किया गया। तदुपरांत गत शतकमें इसके मिलने के दो प्रमाण तथा वर्तमान शतकमें सन 1949 को छोड़कर इसको संग्रहित करने अथवा इसकी उपलब्धता के विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलते। यह तो केवल सन 1987 में भारतीय प्राणी सर्वेक्षण के वैज्ञानिकोंने दक्षिण केरल के रान्नी वन विभागमें 24 कि. मी. की दूरीपर “वेनीकुलम” नामक स्थान पर ऊँचे नारियल पेड़ों के मुकुट से इसे संग्रहित किया, जो इस पशु के जीवित होने का सुखद समाचार है।

वनोन्मूलनसे इनके आवासों में हो रही कमी के कारण इस जाति के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है।

निष्कर्ष

हम सब इस नग्न सत्यसे भलीभाँति परिचित हैं कि मानव निर्मित वस्तु का पुनर्निर्माण संभव है, किन्तु किसी प्राणी जाति के लुप्त हो जानेपर उसे पुनर्निर्मित करना असंभव है। उन्हें केवल चित्रोंमें ही देखा जा सकेगा। ऐसी ही यह चार जातियाँ हैं जो पश्चिमी घाट में अपने आपको जीवित रखनेका असफल प्रयास कर रही हैं। इन्हें हर संभव सुरक्षा प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। इसके लिए जनमानस से इन पशुओं के प्रति सदभावना तथा रक्षण हेतु योगदान अपेक्षित है।

धन्यवाद ज्ञापन

लेखकगण निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता के प्रति अनुमति एवं सुविधाओं के लिए आभारी हैं।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय पक्षियों की विविधता

अनिल महाबल एवम् राधेश्याम शर्मा

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, पश्चिमी प्रादेशिक केन्द्र
पुणे (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना

कशेरुकी प्राणियोंमें केवल पक्षी ही ऐसे जीव हैं जो स्वच्छन्द रूपसे भ्रमण करते हैं। प्रकृतिने पक्षियों को जितनी सुंदरता एवम् मधुर गान का अनमोल गुण प्रदान किया है, शायद ही किसी अन्य प्राणिजात को प्राप्त हुआ हो। पक्षियों के नर अपनी मादा की अपेक्षा अधिक सुन्दर एवम् आकर्षक होते हैं। पक्षियों की चर्चा पुरातन ग्रंथोंमें तथा मानव की सभ्यता एवम् संस्कृति के भवनोंमें समय समय पर मिलते हैं। महाभारत, रामायण तथा संकटपुराण जैसी प्रसिद्ध रचनाओंमें पक्षियों का उल्लेख सर्वविदित है। यही नहीं, हमारे अनेक ब्रह्मेय देवी-देवताओं के वाहन के रूपमें विभिन्न पक्षियों को दर्शाया गया है, जो मानव संस्कृति तथा पक्षियों की नजदीकी के द्योतक हैं।

प्राणिशास्त्र के अनुसार पक्षी कशेरुकी, पंखवाले, द्विपाद जन्तु हैं, जिनकी चार से ज्यादा अंगुलियाँ नहीं होतीं। वे समतापी एवम् अण्डप्रजक प्राणी हैं। उनके शरीर का तापमान वातावरण के साथ साथ घटता या बढ़ता नहीं, बल्कि हमेशा एकसा बना रहता है। पक्षियों के शरीर का तापमान अधिकांश स्तनधारी जन्तुओं से कुछ अधिक (38-44सेन्टीग्रेड) रहता है। तापमान एकसा बनाये रखने के लिए तथा विषम जलवायु सहन करने के लिए उनके शरीर पर उगे पंख कुचालक रूप में सहायक होते हैं।

पक्षियों की पंखों की रचना तथा विन्यास; पैरोंकी रचना तथा खाद्य ग्रहण पद्धति के अनुसार उनकी चोंचकी रचनामें पायी जानेवाली विविधता के आधारपर कौनसी चिड़िया किस वर्ग की सदस्य है तथा उसके जीवनयापन का ढंग कौनसा है, इसका पता चलता है। पक्षियों के स्वभाव, व्यवहार, घोंसला निर्माण, निलयन, उड़ान विधियाँ, आवाज एवम् गुँजन आदि का ज्ञान पक्षियों की पहचानमें काफी सहायक होता है। पक्षियों के जीवनयापनमें अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विविधता पायी जाती है। जैसे अधिकांश पक्षी उड़ सकते हैं; कुछ उड़ नहीं पाते किन्तु

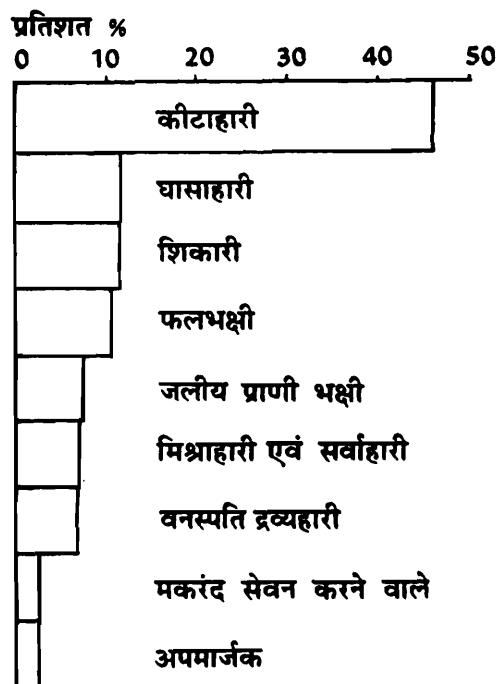
द्विपाद की भाँति चल सकते हैं (उदाहरण कैसोवरी, शुतुमुरग और पेंग्विन); कुछ दौड़ सकते हैं (उदाहरण क्षिप्रचल (कोरसर) की विभिन्न जातियाँ); तो कुछ अच्छे तैराक (उदाहरण बतख एवं पनडुब्बी) एवं गोताखोर हैं (उदाहरण किलकिल एवं सर्पपक्षी)। यही नहीं कई पक्षी अंधेरेमें भी स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं (उदाहरण उल्लू या उल्लूक)।

पृथ्वी के कुल भूपृष्ठ की तुलनामें भारत का पृष्ठीय क्षेत्र केवल दो प्रतिशत है। फिर भी जैविक विविधता की दृष्टिसे यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है। इसका प्रमुख कारण है देशकी जीवभौगोलिक क्षेत्रोंमें अत्यधिक भिन्नता। इन विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रोंमें भी नानाविध सुक्ष्म एवं दीर्घ पारिस्थितिक प्रणालियाँ पायी जाती हैं जो सामान्य से लेकर अनोखे जीवोंको आश्रय देती हैं। यही कारण है कि, भारत को संसार के सोलह जैविक विविधता से समृद्ध राष्ट्रों में सम्मिलित किया जाता है।

पक्षियों के आवास हिमालय की उँची पहाड़ियों एवं घाटियों से लेकर दक्खन की निचली सतह तक; सागर किनारों एवं द्वीपोंसे लेकर छोटी बड़ी नदी, झीलों तक; रेगिस्तान से लेकर घने सदाहरित वर्षा वनों एवं सामान्य झाड़ु झंकाड़ वाले क्षेत्रों तक; छोटे छोटे कसबों से लेकर महानगरों तक सर्वत्र पाये जाते हैं।

वर्गीकरण

संसारमें पक्षियों की कुल 9198 जातियाँ पायी जाती हैं। इनमेंसे भारतीय उपमहाद्वीपमें कुल 2110, तो अकेले भारतवर्षमें कुल 1228 जातियाँ पाये जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। इन भारतीय



आयत चित्र — 1 : अशन स्वभाव के आधारपर पक्षियों का कृत्रिम वर्गीकरण

जातियों को प्राणिवैज्ञानिकों ने 20 विभिन्न गणों, 79 कुलसमूहों तथा 405 वंशोंमें विभाजित किया हैं। भारत की अनुमानित 1228 पक्षी जातियोंमें से लगभग 850 अप्रवासी, 176 प्रतिबंधित एवम् विशेषक्षेत्री और केवल 350 प्रवासी हैं।

पक्षियोंका शास्त्रोक्त वर्गीकरण उनकी पक्षति, अंगुलियों की रचना, चोंचका आकार, दुम के पुच्छ-पिच्छ, शरीरका रंग एवम् रंगछटा, आवास, स्वभाव, व्यवहार एवं अशन पद्धतियों के आधारपर किया जाता है। किन्तु प्रस्तुत लेखमें इन सब पहलुओंपर विस्तारमें लिखना संभव नहीं है। वाचकोंकी सुविधा के लिए केवल अशनपद्धति के आदरपर भारतीय पक्षियों को कृत्रिमरूपसे तथा स्थूलमानसे नौ विभिन्न वर्गोंमें विभाजित किया है जिसे क्रमांक 1 चित्र में दर्शाया गया है। जैसा कि आप जानते हैं समस्त प्राणिजगतमें कीटों की संख्या लगभग 75 प्रतिशतसे भी ज्यादा है उसी तरह उनपर निर्भर रहनेवाले कीटाहारी पक्षियों की संख्या भी उतनीही अधिक है (लगभग 40 प्रतिशत); जबकि सबसे कम अपमार्जक तथा मकरंद सेवन करनेवाले पक्षी हैं (केवल 1.5 प्रतिशत) ।

कीटाहारी पक्षियोंमें कठफोड़वा, खंजन, फुदकी, मक्षिकाश, पतरींगा, नीलकंठ, रामगंगरा आदि का समावेश होता है। घासाहारियोंमें फाखता, मारीट, बयापक्षी, मुनिया आदि। शिकारियोंमें चील, उल्लू, श्येन, पतई, लंगूर आदि। फलभक्षियोंमें तोता (शुक), धनेश, कोटुरवा, बुलबुल, पिलक आदि। जलीय प्राणिभक्षियोंमें बगुला, किलकिल, मछलीमार, चहा, हंसावर, पनडुब्बी, तुतवारी, अंजन आदि। मिश्राहारी एवम् सर्वाहारियोंमें मैना, कौवा, चरेलू चिड़िया, भृंगराज (भीमराज), मोटरी आदि। वनस्पतिद्रव्याहारियोंमें तीतर, लावा, तथा टिटिटभ आदि। मकरंद सेवन करने वालोंमें पुलचुकी, हम्मिंग पक्षी तथा अपमार्जकों में गिद्धों की भिन्न जातियोंसे आप परिचित हैं।

राज्य निहाय पक्षी विविधता

भारत वर्ष के विभिन्न राज्योंमें पायी जाने वाली पक्षी जातियों पर एक नजर डालने से (कृपया तालिका —1 देखें) आपको ज्ञात होगा कि, विभिन्न राज्यों के कुल क्षेत्रफल तथा वहाँके वनाच्छादित क्षेत्र और उनमें स्थित भिन्न पारिस्थितिक प्रणालियाँ जैसी निराली हैं उसी प्रकार वहाँ वास करनेवाली पक्षी जातियाँ भी भिन्न हैं।

तालिका — 1: भारत के राज्य निहाय पक्षी जातियों की संख्या

क्रम	राज्य	कुल क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	वनाच्छादित क्षेत्र (वर्ग कि.मी.)	पक्षी जातियों की कुल संख्या *
1.	जम्मू एवं कश्मीर	2,22,236	20,900	455
2.	हिमाचल प्रदेश	55,673	21,325	447
3.	पंजाब	50,367	2,823	310
4.	हरियाणा	44,212	19	245
5.	उत्तर प्रदेश	2,94,411	51,337	605
6.	राजस्थान	3,42,239	31,290	423
7.	गुजरात	1,96,024	19,320	443
8.	मध्यप्रदेश	4,43,446	1,55,414	886
9.	महाराष्ट्र	3,07,690	64,158	525
10.	आन्ध्र प्रदेश	2,75,069	63,771	614
11.	गोवा	3,701	1250	180
12.	कर्नाटक	1,91,791	38,645	474
13.	केरल	38,836	11,218	393
14.	तामिलनाडु	1,30,100	22,379	452
15.	उड़ीसा	1,55,707	59,555	319
16.	पश्चिम बंगाल	88,757	11,879	539
17.	बिहार	1,73,877	29,227	488
18.	असम	78,438	30,708	312
19.	मेघालय	22,400	8,514	उपलब्ध नहीं
20.	त्रिपुरा	10,477	6,298	उपलब्ध नहीं
21.	मणिपुर	22,327	15,154	उपलब्ध नहीं
22.	नागालैंड	16,579	8,625	उपलब्ध नहीं
23.	अरुणाचल प्रदेश	83,743	51,540	380
24.	सिक्किम	7,096	2,650	429

* राज्य निहाय पक्षी जातियों की संख्या कम या अधिक होने की संभावना है।

विशिष्ट संरक्षित क्षेत्रों की पक्षी विविधता :

समस्त भारतवर्ष में अबतक लगभग 70 राष्ट्रीय उद्यानों, 462 अभयारण्यों, 14 जीवमंडल रिजर्वों तथा असंख्य संरक्षित वन क्षेत्रों की स्थापना हो चुकी है। भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 10 विभिन्न राज्यों में स्थित नमभूमियों का चयन उनके संरक्षण हेतु किया है। इनमेंसे कुछ महत्वपूर्ण संरक्षित क्षेत्रों में पायी जानेवाली पक्षी समृद्धता का संक्षिप्त ब्योरा तालिका -2 में दिया गया है।

विविध जलपक्षियों की उपलब्धता के आधारपर भारतवर्ष में कुछ महत्वपूर्ण जलाशयों को खासतौर से पक्षी अभयारण्यों के रूप में घोषित कर विकसित किया गया है। जैसे भरतपुर (राजस्थान), नंदुर-मदमेश्वर (महाराष्ट्र) रंगनथिदू (कर्नाटक), वेन्दाथंगल (तामिलनाडु) आदि।

इन क्षेत्रों की विशेषता यह है कि, यहाँ अनेक जातियों के जलपक्षी (उदाहरण सर्पपक्षी, अंजन, बतख, पनकच्चा, लगलग, पनहुब्बी, चमचर्चु, आयबीस आदि) प्रजनन करते हैं। विशिष्ट पक्षी जाति के लिए भी कुछ क्षेत्र संरक्षित किये गये हैं जैसे 'गोडावण' के लिए राजस्थान का मरुस्थल तथा महाराष्ट्र का नानज अभयारण्य; 'जॉर्डन्स् क्षिप्रचला'(कोर्सर) के लिए आंध्र प्रदेश का नेलीर जिले का हिस्सा।

तालिका —2: विशिष्ट संरक्षित क्षेत्रों की पक्षी विविधता

(राष्ट्रीय उद्यान, नमभूमि एवम पर्वतीय क्षेत्र)

क्रम	संरक्षित क्षेत्र	पक्षी जातियों की कुल संख्या*
1.	काँग्रैट राष्ट्रीय उद्यान (उत्तरप्रदेश)	354
2.	कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (मध्यप्रदेश)	231
3.	तालरा अभयारण्य (हिमाचल प्रदेश)	121
4.	रंछकूरी अभयारण्य (महाराष्ट्र)	072
5.	पेरीयार अभयारण्य (केरल)	178
6.	धार मरुस्थल जीवमंडल (राजस्थान)	300
7.	नीलगिरी जीवमंडल (कर्नाटक, केरल, एवं तामिल नाडु)	313
8.	सुंदरवन जीव मंडल (पश्चिम बंगाल)	163
9.	नामदफा जीव मंडल (अरुणाचल प्रदेश)	233
10.	हरीके नमभूमि (पंजाब)	146

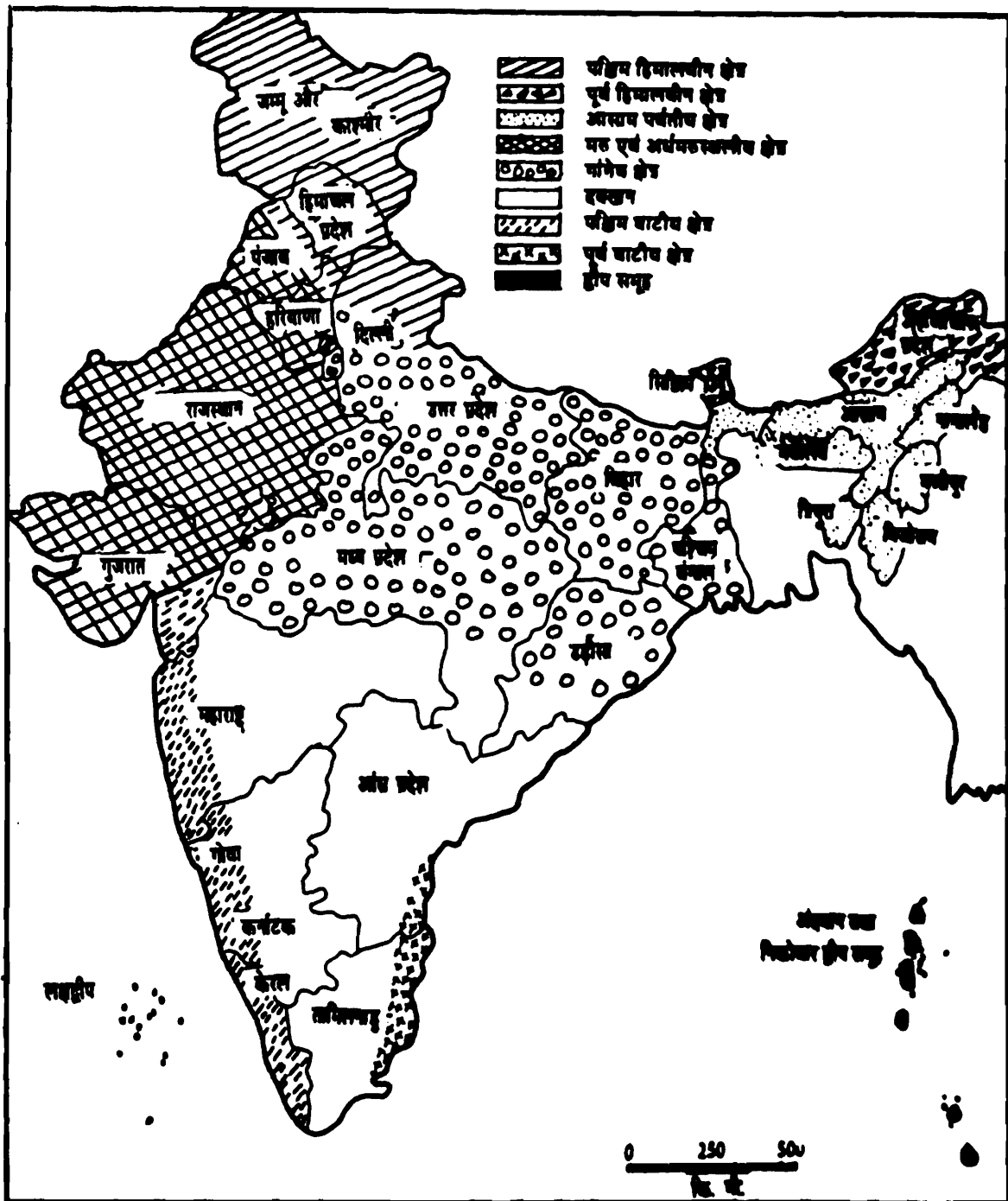
क्रयता:

क्रम	संरक्षित क्षेत्र	पक्षी जातियों की कुल संख्या *
11.	चिल्का लैगून नमभूमि (उड़ीसा)	150
12.	काबर सरोवर (बिहार)	168
13.	पुलिकट सरोवर (आंध्रप्रदेश)	150
14.	पॉइन्ट कॅलीमर (तामिलनाडु)	230
15.	उजनी नमभूमि (महाराष्ट्र)	070
16.	सुखना सरोवर (चंडीगढ़)	124
17.	रेणुका झील (हिमाचल प्रदेश)	103
18.	गंगा नदी एवम् जलग्रहण क्षेत्र	102
19.	अंदमान एवम् निकोबार द्वीपसमूह	242
20.	लक्षद्वीप द्वीप समूह	044
21.	पश्चिम हिमालय क्षेत्र	225
22.	पूर्व हिमालय क्षेत्र	210
23.	आसाम पर्वतीय क्षेत्र	190
24.	अरावली पर्वतमाला	077
25.	दक्खिनका पहाड़ी क्षेत्र	111
26.	पूर्व घाटीय क्षेत्र	123
27.	सह्याद्री पर्वतमाला	140
28.	नीलगिरी पर्वतमाला	132
29.	पलनी पर्वतमाला	133

विभिन्न जीव भौगोलिक क्षेत्र :

भारतकी पक्षी विविधताका सही मानोमें अंदाज करने के लिए देशको निम्नलिखित नौ भिन्न जीवभौगोलिक क्षेत्रोंमें बाँटा जा सकता है (मानचित्र —1 देखें):

- (1) पश्चिम हिमालयीन क्षेत्र:— यह क्षेत्र विशिष्ट प्रकार के वन जैसे पाईन, शंकुधारी, उपध्रुवीय तथा उच्चपर्वतीय वनस्पतियोंसे आच्छादित है। इस क्षेत्र की कुछ विशिष्ट पक्षी जातियाँ इस प्रकार हैं: रावन (कौओंका जातभाई), रेडबिल्ड ब्ल्यू मैंगपाय, रेडक्राउन्ड जे; हिमालयीन नटक्रॉकर, ग्रीन बैकड टीट, नट हँचेस, लाफींग थ्रश की विविध जातियाँ; चमनकूलू (फिजेंट) की कुछ जातियाँ जैसे कोकलस और चीड़ फिजेंट; हिमालयीन ग्रीफॉन बलचर, हिमालयीन गोल्डन ईगल एवं हिमालयान स्नो कॉक उल्लेखनीय हैं।



मानचित्र —1 : भारतके विभिन्न जीवभूगोलिक क्षेत्र

- (2) पूर्व हिमालयीन क्षेत्र:— इस क्षेत्रमें पाये जाने वाले कुछ विशिष्ट पक्षी जातियोंमें यलो बिल्ड ब्ल्यू मैंगपाय, हिमालयीन ट्रीपाय, रेडबिल्ड कफ, टीट एवं नटहचेस, वॉलक्रीपर, हिमालयीन रूबी थ्रोत, ब्लैक अन्ड यलो गॉसबीक, बुलफिंच तथा ग्रीनफिंच आदि मुख्यरूपसे मिल जाते हैं।
- (3) आसाम पर्वतीय क्षेत्र:— इस क्षेत्रमें ग्रेफ्रन्टेड ग्रीन पीजन, हिल पारट्रीज, रेड हेडेड ट्रोगॉन, हिमालयीन बुड आवउल, पाईड हॉर्नबिल, स्लेटी हैडेड पॅराकीट, हॉकसनस् पीपीट, मिसेज गोल्डन यलो बॅकड सनवर्ड तथा स्कारलेट फिंच जैसी विशिष्ट जातियाँ पायी जाती हैं।
- (4) मरू एवम अर्धमरूस्थलीय क्षेत्र:— इस क्षेत्रमें मुख्यरूपसे झाड़ु झंकाड़ एवम कंटकी वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। उस के अनुसार वहाँकी पक्षी जातियाँ भी विशिष्ट हैं जैसे: गोडावण, हाऊबारा, इम्पेरीयल सॅन्ड ग्राऊज, क्रीम कलर्ड कोरसर, व्हाईट वॉगड टीट, व्हाईट ब्राऊड बुशवॅट, किंग बहचर तथा मोर आदि।
- (5) गांगेय क्षेत्र:— इस क्षेत्रमें पाये जानेवाले सामान्य पक्षियों का समावेश होता है। उनमेंसे ग्रे पारट्रीज, ग्रे क्वेल, रेउजंगल फाऊल, लेसर प्लोरीकन, व्हाइट ब्रेस्टेड वॉटरहैन, जकाना, यलो वॅटलड लैपविंग, रिंगड प्लोवर तथा रूफस बॅकड श्राईक आदि उल्लेखनीय हैं।
- (6) दक्खिन पठार :— इस क्षेत्रके विशिष्ट पक्षियोंमें इंडियन कोरसर, ब्लैक ड्रॉगो, कॉमन बॅबलर, रेउ व्हेन्टेड बुलबुल, मैना की सर्व जातियाँ, ग्रे श्राईक, डेक्कन बुश चॅट, ब्लैक बर्ड, ककु-श्राईक, अँशी क्राउन्ड फिच लार्क, इंडियन रोलर, ग्रीन बी ईटर तथा रोज रींगड पॅराकीट आदि का समावेश होता है।
- (7) पश्चिम घाटीय क्षेत्र:— इस क्षेत्र उष्णकटिबंधीय वर्षा वनोंसे आच्छादित होने के कारण यहाँ की पक्षी विविधता कुछ इस प्रकार है: यलो चिक्क टीट, वायनाड लार्फॉग थ्रश, रूफस बॅबलर, शॉर्ट वॉग, टिकेल्स थ्रश, व्हाईट बेलीड ब्ल्यू फ्लाई कैचर, नीलगिरी हाऊस स्वेलो, नीलगिरी पीपीट, मलबार व्हिसलिंग थ्रश, नीलगिरी व्हडीटर फ्लाई—कॅचर, स्मॉल सनबर्ड, नीलगिरी फ्लॉवरपेकर, मलाबार ग्रेट ब्लैक वुडपेकर, मलबार ग्रे हार्नबिल, नीलगिरी वुड पिजिय तथा पेंटेड बुश क्वेल आदि।
- (8) पूर्व घाटीय क्षेत्र:— इस क्षेत्र की विशेष पक्षी जातियों में क्वॅकर बॅबलर, कॉमन रूबी थ्रोत, ब्ल्यू फ्लाई कॅचर, स्कारलेट मिनीव्हेट, लार्ज पाईड वॉगटेल, ट्री पीपीट, फ़्लवस ब्रेस्टेड पाईड वुडपेकर तथा बार्ड जंगल आवउलेट आदि का समावेश होता है।
- (9) द्वीप समूह:— अंदमान निकोबार द्वीपसमूह का क्षेत्र अपने आप में अनूठा है। यहाँ की भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति विशिष्ट होने के कारण यहाँ की पक्षी विविधता अत्यधिक निराली है। यहाँ की विशेषक्षेत्रीय पक्षी जातियोंमें लॉग टेलड ट्रॉपीक बर्ड,

नारकोंडम हॉर्नबिल, अंदमान टील, अबाबील, व्हाइट बैलीड सी ईगल, पाईड इम्पेरियल पिजियन, निकोबार मेगापोड, निकोबार पीजन, अंदमान डार्क सरपेन्ट ईगल, निकोबार पैराकीट तथा अंदमान ड्रोंगो आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रवास यात्रा

पक्षियों की प्रवास यात्राएं (माइग्रेशन) अत्यंत अदभूत एवं रहस्यमयी होती हैं। अनुसंधान के लिए यह क्षेत्र अतिविशाल है जो अभ्यासकों के लिए खुला है। हर पक्षी जाति अपने जीवन काल में चाहे छोटी हो या लम्बी प्रवास यात्रा जरूर करती हैं।

विख्यात पक्षीविज्ञ लैन्डस्बोरो थॉमसनने पक्षियोंके प्रवासयात्रा की परिभाषा कुछ इस प्रकार की है “निश्चित अवधिपर तथा एक बार एक दिशामें किन्तु दूसरी बार बिपरीत दिशामें किया गया आवास परिवर्तन जिससे पक्षी हर परिस्थितियोंमें अनुकूलतम अवस्थाएँ प्राप्त करने के प्रयास करता है।” इस प्रकार की प्रवास यात्राके लिए प्रेरित करने में आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकारके उद्दीपन कार्य करते हैं।

पक्षी प्रवास यात्रा मुख्य रूपसे चार प्रकार की होती है:

- (1) स्थानीय प्रवासयात्रा:— भारतमें पाये जानेवाले अधिकांश पक्षी विविध उद्देश्य के लिए स्थानीय प्रवास यात्रा करते हैं। उदाहरण देशी मैना, तोता, कौए आदि खद्यान्न उपलब्धिमें जब कमी आती है तब वे छोटी प्रवास यात्रा करके अपने पूर्वनियोजित स्थानोंपर लौटते हैं। किन्तु कुछ पक्षी जैसे पशुबगुला, लघुबगुला, घूसरबक, अंजन आदि प्रजनन के लिए स्थानीय प्रवास यात्रायें करते हैं और अपने शिशुओं के साथ पहली जगहोंपर लौट जाते हैं। तो कुछ पक्षी जैसे चील (परीहा काइट) अति वर्षावाले क्षेत्रोंसे कमवर्षावाले क्षेत्रोंमें स्थानीय प्रवास यात्रा करते हैं।
- (2) शीतकालीन प्रवासयात्रा:— इस प्रवास यात्रामें सौ से भी अधिक विदेशी पक्षी अपनी मातृभूमि में स्थित प्रतिकूल परिस्थितियों को टालने के लिए वे भारतीय उपमहाद्वीप की ओर आते हैं। कुछ महत्वपूर्ण शीतकालीन प्रवासी पक्षी इस प्रकार हैं; पीनटेल बतख ब्राह्मणी-बतख, मेलर्ड, गारगेनी टील, रोजीपैस्टर, वेंग टेल, फुदकी, स्वीलोज, बुशचैट, फ्लाआकैचर आदि की विभिन्न जातियाँ।
- (3) वसंतकालीन प्रवासयात्रा:— वसंत ऋतुमें कुछ पक्षी दक्षिण से उत्तर भारत की ओर प्रवास करते हैं। जैसे; कुछ जातियों के पपीहे, भृंगराज एवम नीलकंठ आदि।
- (4) तुंग प्रवासयात्रा:— हिमालय क्षेत्रमें रहनेवाले पक्षियों में यह क्रिया विशेषरूपमें दिखायी देती है। जाड़ोंमें उच्चतुंगतावाले पक्षी जैसे जुजुराना, फिजेंट, लाफींग घस, मंगपाइज, हिमालयीन नटक्रेकर तथा नटहँचेस, बर्फ रेखा के काफी नीचेतक आ जाते हैं। वसंत

ऋतु के आरंभमें जब बर्फ पिघलने लगती है तब यह पक्षी प्रजनन के लिए ऊपरी पहाड़ियोंपर चले जाते हैं।

उपरोक्त प्रवास यात्राओंमें अगणित पक्षी शामिल होते हैं। वे जहाँ जाते हैं वहाँ की संख्या घनत्वमें अत्यधिक बढ़ोतरी होती है। साथही वहाँ की पक्षी विविधतामें भी भारी बदलाव आता है जो सुखकर एवम उपयुक्त होता है।

इस बात को हम भली भाँति जानते हैं कि हमारी पक्षी विविधता अत्यंत समृद्ध होने के बावजूद भी विगत कई दशकों से हो रहे असीमित वनोन्मूलन के कारण पक्षियों के वासस्थलों को क्षति पहुँची है। फलस्वरूप वे बेघर हो जाते हैं और शिकारियों की बेरहम नजरोंसे बच नहीं सकते। नतीजतन उसकी संख्या घनत्वमें संकटात्मक कमी आती है। आप शायद जानते होंगे कि हमारे देशमें लगभग 48 ऐसी पक्षी जातियाँ हैं जो दुर्लभ एवम संकटग्रस्त घोषित हो चुकी हैं। उदाहरणार्थ जेरडान क्षिप्रचल, लालसिर पोचर्ड, लेसर फ्लोरीकन, जुजुराना, मोनाल, गोडावण, व्हाइट विंग्ड बुड डक, अंदमान हंसक, हिमालयीन बियरडेड भलचर, गोल्डन ईगल आदि।

माउन्टेन क्रेल तथा पिंक हेडेड डक यह दो जातियाँ भारतीय क्षेत्रमें लगभग सम्पूर्णतः लुप्त होचुकी हैं। क्या आप चाहते हैं कि इसी तरह हमारी अन्य पक्षीरूपी पूंजी को धीरे धीरे समाप्त होने दिया जाय? इस धरोहर को समाप्त करने में हमारी ही कुछ घातक गतिविधियाँ जिम्मेदार हैं। अब गंभीरतासे सोचने का समय आ चुका है कि पर्यावरण ह्रास की गति को पौरी तरह रोक पाना संभव तो नहीं है किन्तु उसकी गति को धीमा जरूर किया जा सकता है। इस सत्कार्यमें प्रत्येक नागरिक का सक्रिय सहयोग अनिवार्य है।

आभार ज्ञापन

लेखकगण, डा. जे. आर. बी. अल्फ्रेड, निदेशक, डा. आर. के. वाष्णेय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण कलकत्ता, तथा डा. एम. एस. प्रधान, वैज्ञानिक एसई एवं प्रभारी अधिकारी पुणे के प्रति अनुमति एवं सुविधा प्रदान करने के लिए आभारी हैं।

संदर्भ

अली, सलीम 1985. *भारत के पक्षी*। हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित।

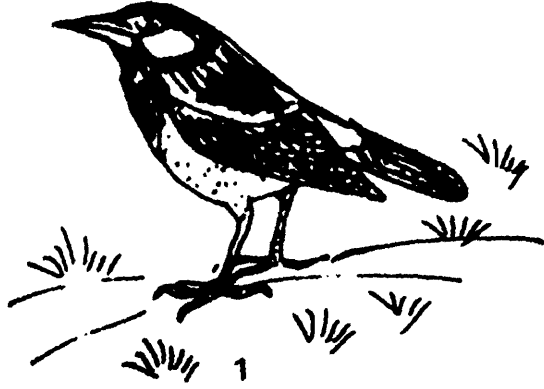
अली, सलीम, 1994. *इण्डियन हिल बर्ड्स*। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, मुंबई द्वारा प्रकाशित।

अली, सलीम एवम रिप्ले, डिलॉन 1983. *हैन्ड बुक ऑफ दि बर्ड्स ऑफ इंडिया एन्ड पाकिस्तान* (कॉम्पैक्ट एडिशन)। ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

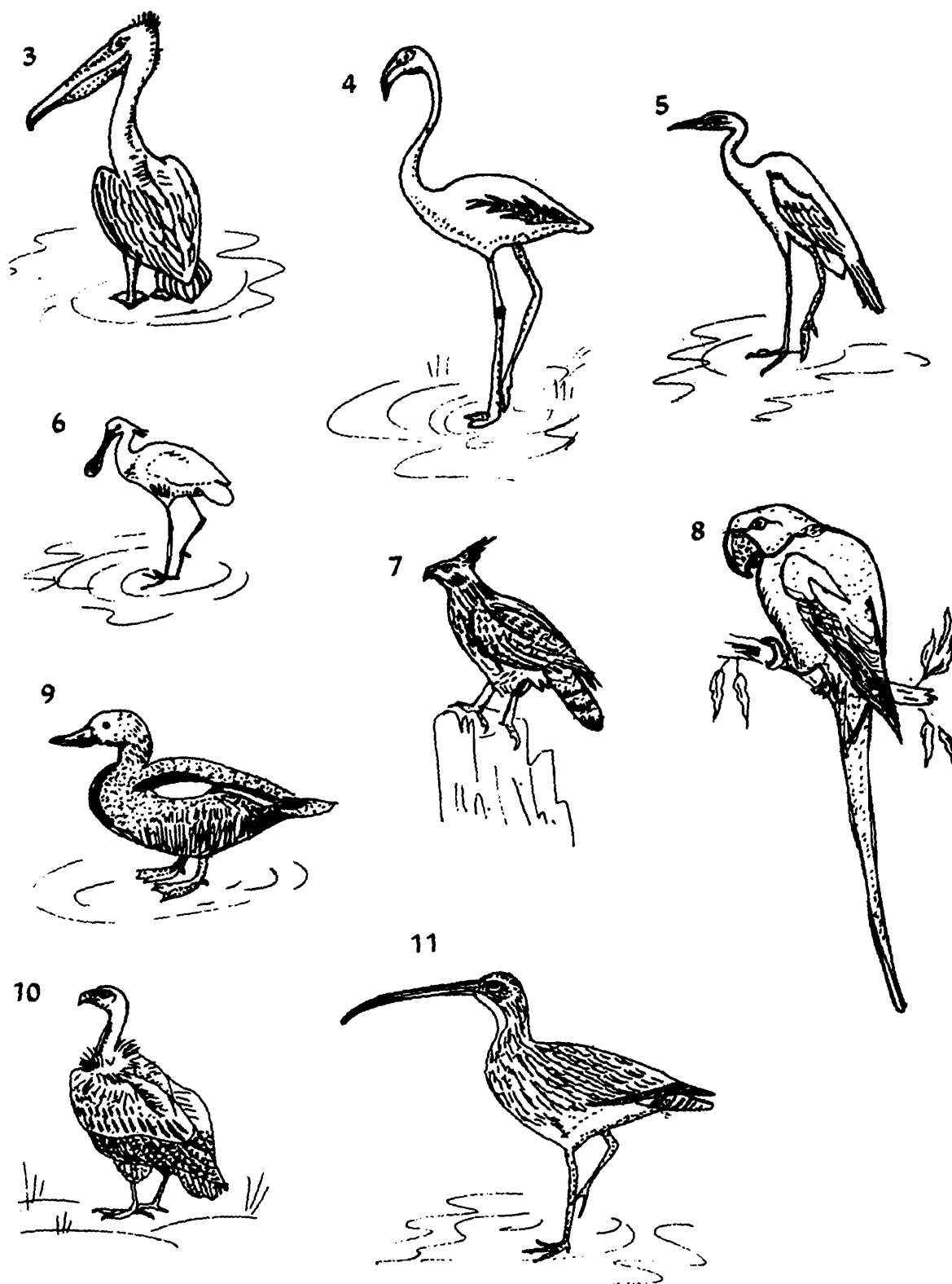
घोष ए. के., बायोलॉजिकल डायवर्सिटी इन इंडिया। तकनीकी पेपर क्रमांक 8. *इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ बायो-सोशल रिसर्च एन्ड डेवलपमेंट* द्वारा प्रकाशित।

टिकादार, बी. के. 1983. *थ्रेटेन्ड अनीमल्स ऑफ इंडिया*। निदेशक, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।

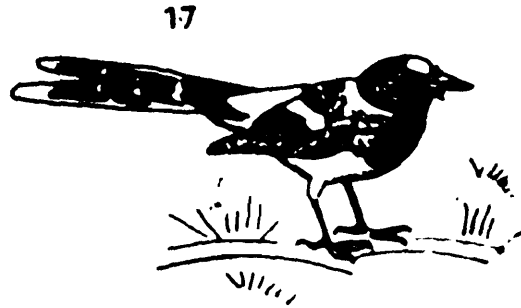
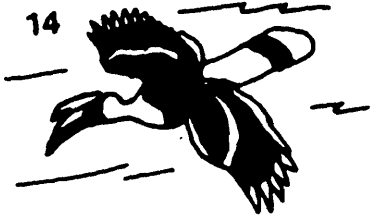
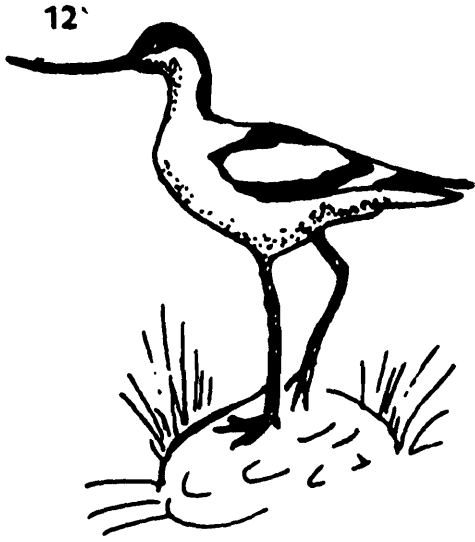
टिकादार, बी. के. 1984. *बर्ड्स ऑफ अंदमान एन्ड निकोबार आयलैंड्स*। निदेशक, भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित।



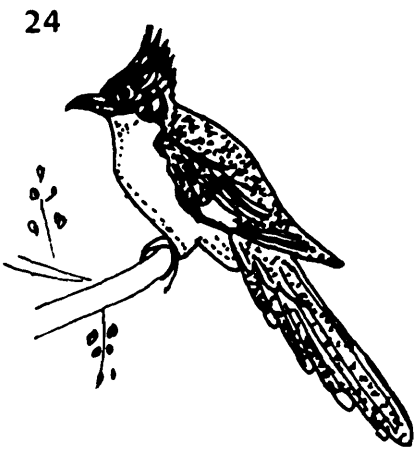
चित्र 1. अबलक मैना; 2. रेड बिल्लड ब्ल्यू मैंगपाइ।



चित्र 3. हवासिल; 4. राजहंस; 5. अंजन; 6. चमचबाज; 7. डोगरा चील;
8. तोता; 9. बतख; 10. गिद्ध; 11. बड़ा गुलिन्दा।



चित्र 12. कस्या जहा; 13. कोरयल किलकिल; 14. धनेश; 15. लीभा;
16. भीमराज; 17. दिवपुच्छ; 18. तेलिया मुनिया



चित्र 19. घुघू; 20. कठफोड़वा; 21. फुत्की; 22. सेरोती फाख्ता; 23. शाह बुलबुल; 24. चातक

महाबल एवं शर्मा : पक्षियों की विविधता

प्लेट 1



पक्षीय जीवन का चित्र

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

सर्पाकृति उभयचर और छिपकली

(बिना पैर वाले अनोखे दुर्लभ जीव)

प्रकाश कुलकर्णी एवं सुपदा पाटील

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,

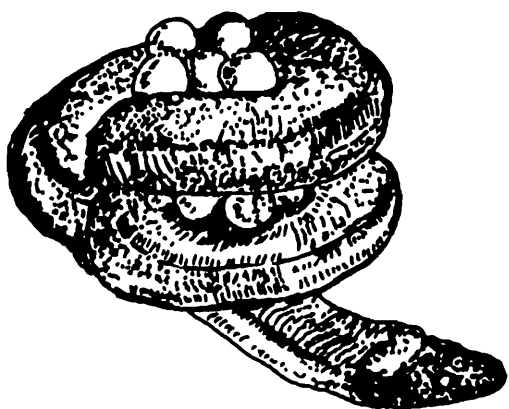
पश्चिमी प्रादेशिक शाखा, पुणे-411005

एक पेशीय जीवों के अवतरण का काल पाँचसौ दस लक्ष वर्ष पुराना माना जाता है। प्राणियों को सही तरीके से जलीय पर्यावरण के बाहर भूमि पर आते दो सौ दस लक्ष वर्ष बीत गए। प्रथम बार उभयचर प्राणियों का जन्म काल करीब दो सौ पचास दस लक्ष वर्ष पुराना माना जाता है। उभयचर प्राणियों की विशेषता यह है कि उनके जीवन क्रम का कुछ हिस्सा जल के भीतर जैसे नदी, तालाब या सागर में बीतता है और शेष जीवन जमीन पर। किंतु प्रजनन के लिए जलयुक्त स्थलों की आवश्यकता बनी रहती है। जीवन के विकास के घटना क्रम में ऐसे कुछ जीव भी पाए जाते हैं जो सरलता से किसी विशिष्ट वर्ग के पूरे लक्षण नहीं दर्शाते। ऐसे ही एक उभयचर (अँफीबियन) तथा दूसरे सरीसृपीय (रेप्टीलिया) वर्ग में शामिल किए गए कुछ अनोखे जीवों के बारे में इस लेख में जानकारी है जिनके कोई हाथ या पैर नहीं होते। इन प्राणियों में या तो यह महत्वपूर्ण अंग विकसित नहीं हो पाए या परिस्थितिवश उन्हें त्याग दिया गया, यह ज्ञात नहीं पर वे सर्पाकृति लगते हैं।

उभयचर श्रेणी के प्राणियों में सबसे परिचित और सामान्य रूप से पाए जाने वालों में है मेंढक। वर्षा के आगमन का मेंढकों द्वारा स्वागत हम कैसे भूल सकते हैं? आम तौर पर यह भी हम जानते हैं कि मेंढकों के अण्डे और छोटे बच्चों (टैडपोल) का आवास जल में ही होता है। उनके (टैडपोल) पैर नहीं होते और उनका श्वसन मछलियों के समान गिल द्वारा ही होता है। किन्तु प्रौढ़ मेंढक के बड़े ही सशक्त एवं लंबे दो जोड़ी पैर होते हैं। वर्तमान युग में मेंढक जैसे उभयचर प्राणियों की करीब 150 जातियां भारत में पायी जाती हैं। वर्गीकरण शास्त्र के अनुसार इन सभी उभयचरों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है: मेंढकों को युकोइडा; गोह सदृश जीवों को कौइडा और सिसिलियनों को अपोडा उपश्रेणी में रखा गया है। प्रस्तुत लेख में सिसिलियन, जिनके पैर नहीं होते, के प्राणियों के बारे में कुछ जानकारी लेंगे।

सिसिलियन उभयचर

सिसिलियनों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनके कोई हाथ या पैर नहीं होते; उनकी मस्तिष्क की अस्थियाँ गर्दन की अस्थी से पूर्णतया पृथक् होती हैं। तालू की अस्थी जबड़ों की अस्थी से जुड़े पाई जाती है। उनके नर का बाह्य जननेंद्रिय लंबा होता है। भारत में सिसिलियनों की कुल पाँच जाति पायी जाती हैं।



चित्र 1: इक्विथोफिस ग्लुटिनोसस मादा अंडों के साथ

अपने भिन्नता के अनुसार उनको तीन गणों में वर्गीकृत किया गया है। यह सभी जाति दुर्लभ एवं विरल है। अन्य उभयचरों की भांति सिसिलियनों का तन चिकना, चमकदार और लिसलिसा एवं श्लेष्मा युक्त होता है। उनकी त्वचा की परतें दिखाई देती हैं। आँखों के पास संस्पर्शक भी होते हैं। जमीन के अंदर रहने की आदत से उनकी आँखों तथा दृष्टि का विकास सीमित रूप से हुआ है। इनका आवास अधिकतर सदा हरित वनों के शांत प्रभागों में होने से वे सामान्यतः दृष्टिगोचर नहीं होते। भारत के पश्चिमी घाट, हिमालय और उत्तरी पूर्व भागों में यह प्राणी पाये जाते हैं। सिसिलियनों का शरीर 12 से 15 इंच तक लम्बा और अंगूठे की तरह मोटा, चमकीला और काले रंग में हरी छटा से मिश्रित होता है। उनके खाद्य में कीड़ों मकोड़ों के साथ केंचुओं का भी योग होता है। यह अण्ड प्रजक प्राणी हैं। इनके अण्डे आकार में बड़े होते हैं; जो प्रायः पानी के किनारे या कीचड़ में डाले जाते हैं। मादा उन अंडों को अपने शरीर से लपेट लेती है। लार्वा का श्वसन गिल द्वारा होता है और शिशुओं में प्रौढ़ की अपेक्षा आँखें बड़ी और पूँछ अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। प्रौढ़ों की त्वचा की परतों की संख्या, जबड़ों में दांतों का आकार एवं पंक्तियाँ एवं अस्थि रचना के आधार पर वर्गीकृत कुल पाँच जाति भारत में पायी जाती हैं जिनके नाम एवं वितरण निम्न प्रकार हैं:

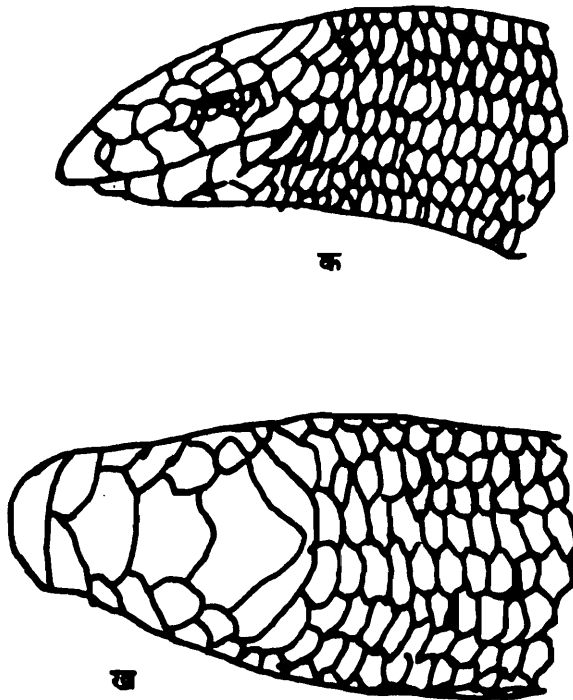
नाम	वितरण
1. इक्विथोफिस ग्लुटिनोसस बाडलेंग	पूर्व हिमालय, खासी पहाड़ी
2. इक्विथोफिस मोनोक्रोअस बाडलेंग	पश्चिमी घाट का प्रदेश
3. यूरोटिफ्लस ऑक्झुरस बाडलेंग	मालाबार घाट का प्रदेश
4. यूरोटिफ्लस मालबारिकस बाडलेंग	मालाबार घाट का प्रदेश
5. जीनोफिस कार्नोसस बाडलेंग	वाइनाड, पारिया शिखर

बिना पैर वाली मरुगोथिका (स्किंक)

सरीसृपीय प्राणियों में घड़ियाल सर्प एवं छिपकली आते हैं। उनके शरीर पर पाये जाने वाले शल्क ही इनकी विशेषता हैं। उभयचरों की अपेक्षा सरीसृपीय प्राणी विकास की प्रक्रिया में बाद में अवतीर्ण हुए। सामान्यतया छिपकलियों में चार पैर पाए जाते हैं। उनके आवास एवं आदतों के अनुरूप पैरों की रचना में लक्षणीय परिवर्तन पाया जाता है। यहाँ हम दो बिना पैर वाली मरुगोथिका (स्किंक) बर्कुडिया इन्सुलेरिस आनंडेल तथा आफ्रीसोरस ग्रेसिलिस (ग्रे) के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. बारकुडिया इन्सुलेरिस आनंडेल

डा० आनंडेल ने सर्व प्रथम सन 1917 में इस छिपकली को खोजा। लगभग 173 मि. मी. लंबाई वाले इस मरुगोथिका की पूंछ 58 मि. मी. होती है। उसके पीठ पर करीब 12 से 14 शल्कों की लंबी रेखाएं होती हैं और शल्कों के मध्य पर काले छोटि होते हैं। इनके ओंठ आगे से दबे हुए, जिसमें उपरी ओंठ लंबा एवं निचले ओंठ से थोड़ा बाहर और नीचे झुका हुआ होता है। मुख पर पाए जाने वाले स्केलस (शल्कों) का विस्तृत वर्णन टीकादर एवं शर्मा (1992) ने अपनी पुस्तक में दिया है। वयस्क स्किंक की आंखें छोटी एवं पलकें क्षीण होती



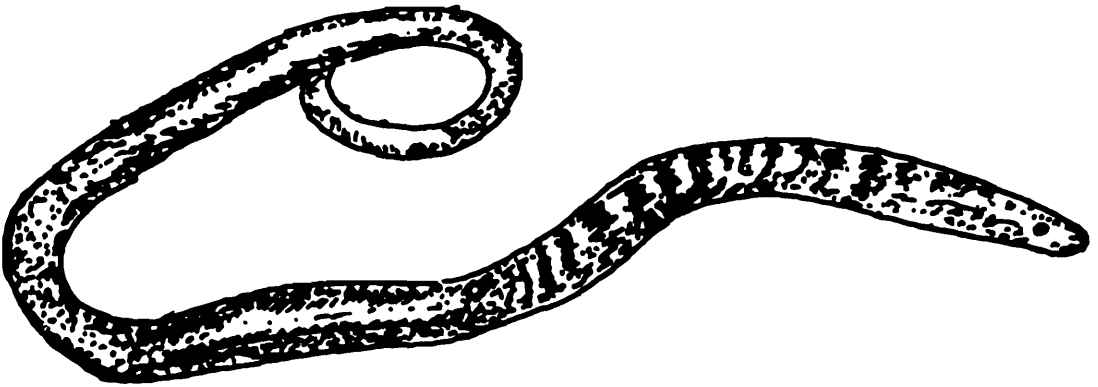
चित्र 2: बारकुडिया इन्सुलेरिस आनंडेल; (क) सिर का पार्श्वभाग; (ख) सिर का पृष्ठीय रेखांकन।

हैं। उनके पेट पर करीब 140 शल्क, सिर एवं गुदाद्वार के दरम्यान पायी जाती हैं। इसकी पूंछ छोटी एवं सरल और बोथरी होती है। इस मरुगोथिका के कोई हाथ या पैर नहीं होते, जो उसकी कीचड़ में बिल बनाने के स्वभाव के कारण विकसित नहीं हो पाए। उड़ीसा की चिलका झील स्थित बरकुडा द्वीप में पाये जाने वाली यह छिपकली (मरुगोथिका) ज्यादातर वृक्षों की जड़ों के आसपास रहती है और निशाचर एवं कीटभक्षी है। सीमित क्षेत्र में रहने वाली इस मरुगोथिका को दुर्लभ माना जाता है।

2. ऑफिसारस ग्रेसिलिस (ग्रे)

सन 1845 में जी.ई. ग्रे ने ब्रिटिश अजायबघर में रखे छिपकली संग्रह की सूची बनाते समय इस अपाद छिपकली के बारे में प्राणी विज्ञान को अवगत कराया। इसे अंग्रेजी सामान्य भाषा में 'इंडियन ग्लास स्नेक' कहा जाता है। यह प्राणी करीब 180 मि. मी. तक लंबा होता है। इसकी पूंछ शरीर की लंबाई से लगभग दुगनी, 360 मि.मी. होती है। सामान्यतः जमीन पर पायी जाने वाली यह निशाचर मरुगोथिका जंगलों में कटी हुयी लकड़ी के लट्टों के नीचे तथा पत्थरों के बीच रहती है। कीड़े मकोड़े और कृमि इसका खाद्य हैं। अन्य छिपकलीयों की अपेक्षा यह धीमी है। और इसका विशेष लक्षण यह है कि हस्त स्पर्श होने के पश्चात यह मृतप्रायः होने का ढोंग करती है।

सरीसृप प्राणियों के अँग्यूडि कुल की सदस्य ऑफिसारस ग्रेसिलिस का शरीर सामान्यतः गहरे भूरे तथा कथिया रंग का होता है। बगल के हिस्से नीले-हरे रंग के पट्टों से युक्त होते हैं। अनियमित आकार के तिरछे नीले और काले किनारावाले बिंदु युक्त ईंट जैसे लाल रीढ़ की हड्डी समान पट्टे भी पाए जाते हैं। शरीर के ऊपरी हिस्से के शल्क धारीदार एवं चौड़े 14 से 17 की लंबी कतारों में होते हैं। इसकी ललाटिका-पूर्वी संकीर्ण, कर्ण छेद तथा नासिका-रंध्र लगभग वर्तुलाकार होते हैं। प्रजनन काल जुलाई से सितम्बर माह तक होता है। मादा एक समय में 4 से 7 अंडे देती है।



चित्र 3: ऑफिसारस ग्रेसिलिस (ग्रे)

यह मरुगोथिका भारत के सीमित क्षेत्रों में जैसे अरुणाचल प्रदेश, आसाम, मेघालय (खासी पहाड़ी) और पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में पायी जाती है। इस जीव की आबादी की वर्तमान जानकारी तो उपलब्ध नहीं है, किंतु इसके सीमित वितरण तथा वन्य जीवों के वासस्थलों की आम तौर पर होने वाली क्षति के कारण इसे दुर्लभ ही कहा जा सकता है।

आभार

लेखक गण, निदेशक भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कलकत्ता एवं डा० आर० के० चार्ण्य, अतिरिक्त निदेशक, भा.प्रा.स. कलकत्ता और डा० एम० एस० प्रधान वैज्ञानिक एस 'ई' और प्रभारी अधिकारी भा.प्रा.स. पश्चिमी प्रादेशिक शाखा पुणे के इस अध्ययन कार्य में प्रोत्साहन के लिए आभारी हैं।

संदर्भ

- दास, इंद्रनील 1995. इंडियाज अम्फीबियन्स। संक्षुअरी एशिया xv नं. 3:42-48.
- स्मिथ, एम. ए. 1935. फौना ऑफ ब्रिटिश इंडिया इनक्लूडिंग सिलोन एंड बर्मा : रेप्टीलिया एंड एम्फीबिया. खंड 2 सौरिया : xiii + 440 पृष्ठ
- टीकार्दर, बी. के. 1968 ऑब्जर्वेशन्स ऑन द लिंबलेस लिजार्ड ऑफिसाउरस ग्रैसिलिस (ग्रे) फ्राम शिलांग, आसाम। जर्नल ऑफ बाम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसायटी, 65 (1) : 233 चित्र के साथ
- टीकादार, बी. के. एवं शर्मा, आर. सी. 1992. हैंडबुक : इंडियन लिजार्ड्स । भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित : 250 पृष्ठ
- निदेशक भारतीय प्राणी सर्वेक्षण (संपा.) 1992. फौना ऑफ वेस्ट बेंगाल, भाग 2 : 28-30.

मछलियों में जीव विविधता

अखलाक हुसैन

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, उत्तरी प्रादेशिक केन्द्र, देहरादून, 248195

भूमिका

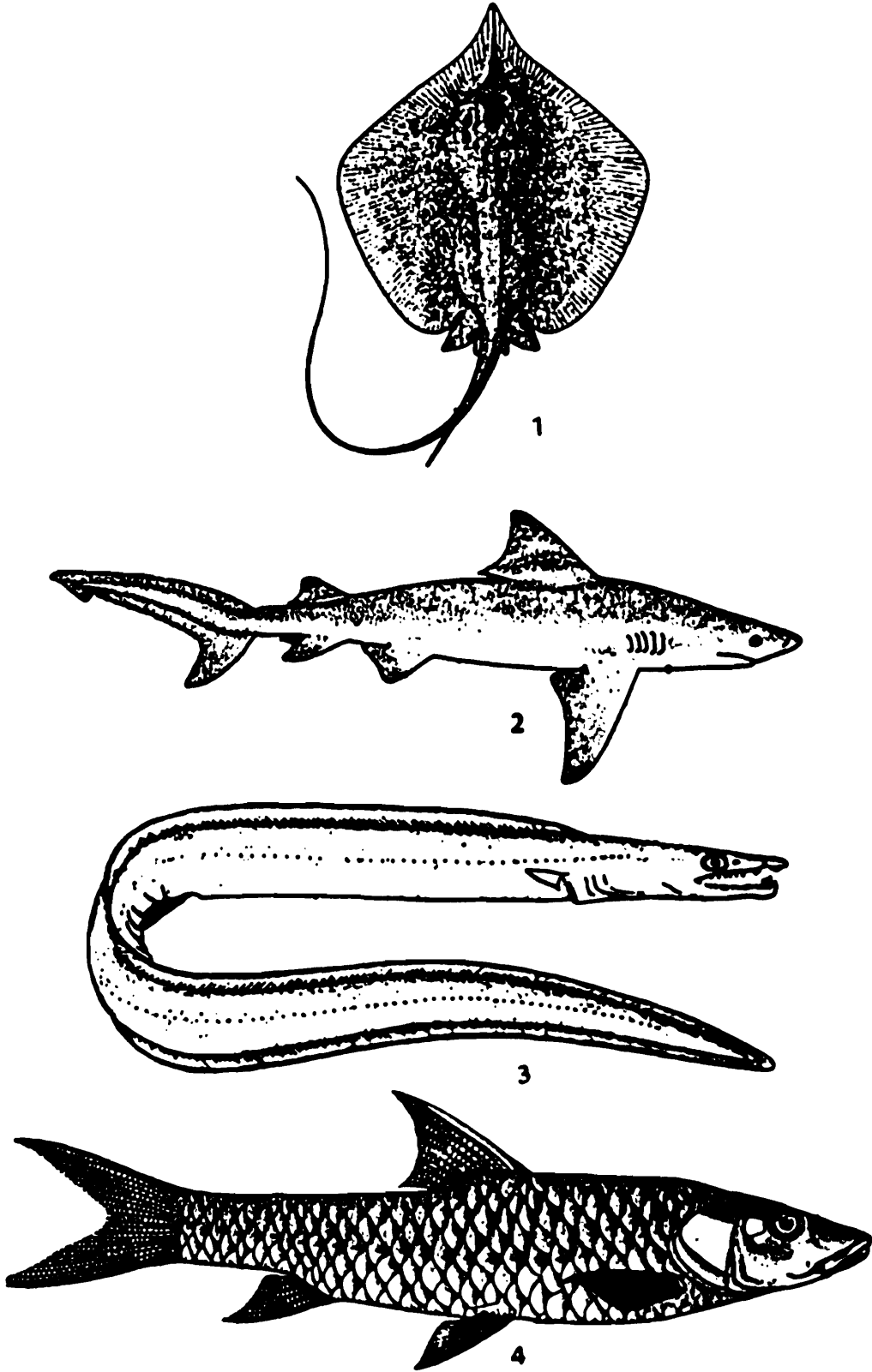
मछलियां जलीय जीव हैं और इनमें बहुत विविधता पायी जाती है, क्योंकि संख्या और जातियों की दृष्टि से ये समस्त रीढ़ वाले या कशेरुकी जन्तुओं की संख्या की तुलना में कहीं अधिक हैं। आज संसार में लगभग 21,723 विभिन्न प्रकार की मछली की जातियों का पता लगा है जो प्रति दिन की नई खोज से बढ़ता ही जा रहा है। यह संख्या समस्त कशेरुकी जन्तुओं की संख्या 43,173 लगभग आधी है। भारत में मछली जातियों की संख्या 2500 से अधिक है। लम्बाई में ये कुछ मिलीमीटर से लेकर 15 मीटर तक लम्बी हो सकती हैं तथा इनका आकार फीते से गेंद या पतंग तक का हो सकता है। कुछ में आंखें नहीं होती या बहुत छोटी होती हैं। इसी प्रकार शल्क, पख, दांत आदि कम या ज्यादा होते हैं या फिर नहीं भी होते। इनके रंगों में भी काफी विविधता पायी जाती है। कुछ मछलियां काफी गहरे रंगों के प्रतिरूप (पेटर्न) से सुसज्जित रहती हैं तो कुछ अन्य फीका पन लिये होती हैं। इनका शरीर समय पड़ने पर गुब्बारे की तरह फुलाया भी जा सकता है। जनन अंगों तथा क्रिया में भी काफी भेद होता है। इनके प्राकृतिक वास पर्वतीय ठंडे मीठे पानी के झरनों से लेकर गर्म समुद्री नमकीन पानी तक हो सकते हैं। ये बहुत कम या अधिक तापमान में रहने के सक्षम हो सकती हैं। इसी प्रकार कम या ज्यादा आक्सीजन या क्षारता में भी भली भांति विचर सकती हैं। ये समुद्र तल के ऊपर लगभग 4000 मी. की ऊँचाई से लेकर समुद्र में काफी गहराई तक पायी जाती हैं। ये अपने प्रजनन के लिए अनेक किलोमीटर का लम्बा सफर तैय कर सकती हैं। शाकाहारी या फिर मांसाहारी या फिर दोनों ही हो सकती हैं। इनकी विविधता अन्तहीन है।

शरीर संरचना

मछलियों के शरीर की बनावट या रूप इनके प्राकृतिक वास पर काफी निर्भर करता है। पहाड़ी नदियों में रहने वाली मछलियां अपने आस पास की परिस्थितियों के आधार पर विशेष

प्रकार से अनुरूपित होती हैं। कुछ मछलियां (टोर आदि) जो पानी के स्तम्भ (कालम) में रहती हैं तथा धारा के विपरीत ऊपर की ओर प्रजनन आदि के लिए जाती हैं, का शरीर लम्बा तकुआ-नुमा होता है, जिससे ये आसानी से तैरती हुई पानी की तेज धारा को काटती आगे बढ़ सकती हैं। **शाइजोथोरेक्स** तथा **डिप्टीकस** मछलियाँ भी लगभग इसी प्रकार की होती हैं किन्तु इनका शरीर आगे से बेलनाकार तथा पीछे से संपीडित होता है। इसी प्रकार से गारा जो कि पत्थरों के नीचे रहती हैं, में सिर के नीचे का हिस्सा तथा वक्ष थोड़ा चपटा होता है तथा ये पत्थरों के बीच अपने चूसक ओष्ठ के साथ टिकी रहती हैं और नीचे नहीं बहती। **सिल्यूरीफार्मस** की **गिलटोथोरेक्स**, **ग्लिटोस्टेरनम**, **स्यूडाकिनैस**, **इयूकायलोगलैनि** आदि मछलियां जो कि नदी की तलहटी पर रहती हैं, का सिर और शरीर का अगला भाग अवनमित (डिप्रेस्ड) होता है ताकि पत्थरों के नीचे कम जगह में आसानी से रह सकें। इनके वक्ष पर स्थित चूषक या चौड़े अंस पख सहायक होते हैं। **लैगूविया** का शरीर बहुत छोटा होता है किन्तु इनका सिर आगे से चपटा होता है तथा इनमें वक्षीय चूषक अविकसित होता है। इसी प्रकार दूसरी छोटी लोच मछलियों जैसे **निमैकायलस**, **ट्रिप्लोफाइसा** आदि (**सिप्रीमीफार्मस**) जो छोटे पहाड़ी नालों में पत्थरों के बीच रहती हैं, के शरीर का अगला भाग अधिकतर चपटा सा होता है। **बैरीलियस**, **रायमास** आदि **सिप्रीनिडों** का शरीर तकुआ-रूपी होता है जिससे यह पहाड़ी नदियों की तेज धारा में आसानी से जीवन निर्वाह करती हैं।

मैदानी भागों में बड़ी नदियाँ तथा नाले होते हैं जिनमें जल प्रवाह पहाड़ी नदियों की तरह तीव्र नहीं होता इसलिए इन नदियों, शांत तालाबों तथा झीलों में पायी जाने वाली मछलियों के शरीर में कोई विशेष रूपान्तर नहीं होते। इनका (**गुडूसिया**, **गोलिनयोलासा**, **गिबैलियोन**, या **काटला**, **सिंहीनस**, **लेबियो**, **ओस्टियोब्रामा**, **पुन्टियस**, **सामोस्टोमा**, **सैकूरीक्यूला**, **एमब्लीफेरिगोडान**, **डैनियो**, **बेकीडेनियो**, **इसोमस**, **पारलूसियोसोमा** आदि) शरीर आम मछली की तरह अधिकतर संपीडित होता है तथा आंखें बड़ी व पार्श्वी होती हैं। इनका आकार पानी की गहराई तथा मात्रा के अनुसार छोटा बड़ा हो सकता है। **नोटोप्टेरस** मछलियों की शरीर संरचना असाधारण तौर पर काफी अलग है, ये बहुत बड़े पत्ते की तरह संपीडित होती हैं और ये गहरे पानी में पायी जाती हैं। **अयोरिक्थस** मछलियों के सिर का अगला भाग छैनी के आकार का, जो लम्बे स्पर्शक के साथ इनके कीट-आहार की खोज में सहायक होता है। **मिस्टस** व इसी प्रकार की दूसरी अशल्क मछलियां (**रीटा**, **ओमपक**, **सिल्यूरस**, **वलागो**, **एलिया**, **कुल्यूपीसोमा**, **इयूट्रोपिक्थस**, **स्यूड्यूट्रोपिक्थस**, **पैंगुसिया**, **एमब्लीसेप्टा**, **बंगोरियस**, **कोन्टा**, **कोरागलैनि**, **इरोथिस्टिस**, **इरोथिस्टोइडस**, **गगेटा**, **हारा**, **नांगरा**, **क्लेरियस**, **हैटेरोन्यूस्टस**, **ओलाइरा** आदि) के शरीर की बनावट जातीय आधार पर भिन्न भिन्न हो सकती है। **साईसौर** अशल्क मछली का अगला भाग चपटा तथा इसकी दुम एक लम्बे कोड़े की भांति होती है जो कि स्वयं बचाव के काम आती है। चाका मछली बहुत बदसूरत होती है इसका शरीर आगे से चपटा तथा इसका सिर बहुत बड़ा होता है और आंखें सिर पर ऊपर की ओर होती हैं, इससे शत्रु डर कर पास नहीं आते जिससे इसका बचाव अपने आप हो जाता है। **ईल** (**एंगुइला**), **दलदलीय ईल** (**मौनोप्टेरस**) तथा **बाम मछलियां** (**मास्टासैमबैलस**, **मैक्रोनैथस**,



चित्र 1. डेसिएटिस जूजीई (स्टिंग रे); 2. कारकैरिफस ल्यूकास (बुल-हाक);
3. कॉर्फीसीक्स टैलाबोनोइडैस (कॉंगर-ईल); 4. टीर प्यूटीटोरा (माइसिर)।

चौधरिया) साँप की तरह होती हैं जिससे स्वयं ही इनका बचाव हो जाता है। जैनैनटोडोन भी अजीब आकार की मछली हैं इसके जबड़े चिड़िया की चौंच के आकार के होते हैं, किन्तु शरीर सुआ-रूपी होता है। ये अधिकतर पानी की सतह पर तैरते देखी जाती हैं। पर्सीफार्मस वर्ग की मछलियां (चंदा, पारैम्बैसिस, 'स्यूडैम्बैसिस, राइनीम्यूगिल, सिकाम्यूगिल, एनाबस, टीनोप्स, कोलीसा आदि) का शरीर कम संपीडित होता है। ओफियोसिफैलस मछलियों का सिर साँप की तरह तथा शरीर बेलनाकार व चिकना होता है। ये भी शत्रुओं से इसी कारण बची रहती हैं। मैलैटैरस, ओफियोसिफैलस, एनाबस, हैटैरोन्यूस्टस, क्लैरियस आदि मछलियों में सहायक श्वसन अंग होते हैं जिनकी वजह से या समय पड़ने पर थोड़ा बहुत पानी के बाहर रह सकती हैं। डाइनोम्यूगिल का शरीर तकुआ-नुमा होता है तथा इनकी आँखें बाहर की ओर निकली रहती हैं जो कि तैरते समय पानी की सतह से बाहर देखने में भी सक्षम होती हैं। टैटराओडोन बड़ी आंखों के साथ गोल-मटोल मछली है तथा अपने बचाव के लिए शत्रु को देखकर गुब्बारे की तरह फूल जाती है और शरीर के कांटों को खड़ा कर लेती है, जिसे देखकर शत्रु जो कि अधिकतर बड़ी मांसाहारी मछली ही होता है, भाग खड़ा होता है।

ज्वार नदमुखों में मीठे पानी तथा नमकीन समुद्री पानी दोनों का मिश्रण होता है। इस वातावरण में रहने वाली मछलियों का शरीर कायिकी या शरीर-क्रिया (फिज्योलोजी) इसके अनुरूप होती है समुद्रीय मछलियां भी अधिक लवणीय पानी में रहने के अनुरूप होती हैं। इसका इनके शरीर की बनावट पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, अतः मैदानी भागों में पायी जाने वाली मछलियों की भांति ही इनमें भी जाति आधार पर विविधता पायी जाती हैं। वर्ग औस्टियोग्लोसीफार्मस की इलौप्स कुल्यूपीफार्मस की कोरिका, डेइला, इहीरावा आदि का शरीर पतला या तनु होता है। वर्ग एंगुईलीफार्मस की एंगुइला, लाइकोडौनटिस, बेसकैनिक्थिस, सीक्यूला, लैमनोस्टोमा, पिसोडौनोफिस, कोग्रेसोक्स, मुरीनेसोक्स आदि साँप की तरह होती हैं। कुल्यूपीफार्मस वर्ग की हिल्सा, एनाडोनटोस्टोमा, निमैटोलोसा, इलीशा, पैलोना आदि का शरीर संपीडित किन्तु ऊँचाई में अधिक होता है। इसी वर्ग की ओपिस्टौटैरस तथा रेकोनडा भी संपीडित किन्तु आगे से थैला नुमा होती हैं। कोयला के शरीर की बनावट भी अपने आप में अलग होती है। ये लम्बी, आगे और पीछे से नोंकदार किन्तु पेट पर ऊंची लगभग हीरक (डायमंड) आकार की होती हैं। वर्ग गौनोरिकीफार्मस की चैनौस (मिल्क-फिश) टौरपीडो आकार की होती है। वर्ग सिल्यूरीफार्मस की प्लोटौसस का पिछला भाग ईल की तरह, वर्ग बैटैरैकोइडीफार्मस की बैटैरैक्थिस (टोड मछली) का सिर टोड मेंढक की तरह आगे से चौड़ा व भारी होता है। वर्ग साईप्रीनौडौनटीफार्मस की हाफबींके (लिजा, म्यूगिल, राइनोम्यूगिल, वालाम्यूगिल, डरमोजैनिस, हाइरौरेम्फस, जैनाकोटैरस आदि) सूए की तरह लम्बी तथा इनका निचला जबड़ा चौंच की तरह निकला रहता है। कुछ मैलैट पर्ची की शरीर संरचना सिंगार से मिलती जुलती है। वर्ग परसीफार्मस की ही गोबियों में बोलियोफथैलमस बहुत सकरे लम्बे शरीर की तथा इनकी आँखें सिर पर ऊपर की ओर तथा बाहर को निकली रहती हैं। इसी प्रकार पैरट-मछलियां (स्कोरिडी), हम्पहैड-मछलियां (कुरटिडी), रिबन-मछलियां (ट्राइक्यूरीडी), सिंगार-स्वरूप मैकरल तथा ट्यूना मछलियां (स्कोम्बराईडी), स्पीयर या भाला-मछलियां तथा

सेल-मछलियां (इसटियोफोरिडी), सोर्ड-मछलियां (जीफ्राइडी) अपने नाम के अनुसार आकृत होती हैं। पोमफ्रे (स्टोमैटोडी) संपीड़ित होने के साथ-साथ बहुत अधिक ऊँचे शरीर की, लगभग गोल सी, मछलियां होती हैं। प्लैट मछलियों (वर्ग प्ल्यूरोनिक्टीफार्मस) जैसे सीटीइस, बोथस, सीलिया, एसोपिया, इयूरीग्लोसा, साइनैपट्यूरा, जेब्रियास, साइनोग्लोसस, पैराप्लैगुसिया आदि में शरीर चपटा किन्तु चौड़ा तथा दोनों आँखें एक ही ओर होती हैं। वर्ग टैट्रोओडीनटीफार्मस की पफर-मछलियां गोल-मटोल हो सकती हैं, तथा इनमें गुब्बारे की तरह फूलने की शक्ति होती है। कौन्ड्रिक्थीज या उपास्थिम (कार्टिलेजिनस) मछलियों के अंतरगत शार्क, स्केट तथा रे आती हैं जिनकी शरीर की बनावट गिटार (राइनोबेटीस, राइना), पतंग (डेसियोटिस आदि), तितली (जिम्न्यूरा), चील (एईटोबेटस, एईटोमाइलियस), गोथूथन (नाईनीटैरा), चिमेगादड़ (मोबूला), हथोडा-सिर (स्फरना), आराथूथन (प्रिस्टिस, एनीक्सीप्रीस्टिस), व्हेल-शार्क (राइनोडीन) आदि जैसी मछलियां नामानुसार होती हैं और काफी विविधता लिए हुए होती हैं। व्हेल शार्क लम्बाई में बहुत बड़ी 15 मीटर या अधिक भी हो सकती है।

पंख या बाज

जातीय अनुसार मछलियों के पंखों (फिन) में काफी विविधता पाई जाती है। साधारणतः हर मछली में पृष्ठीय, अंशीय, श्रेणी, गुद तथा पुच्छीय पंख होते हैं जो कि शारीरिक गतियों (मासांशो के एकान्तर, प्रसरण तथा संकुचन) के साथ तैरने में सहायक होती हैं। इनके आपसी स्थानिक सम्बन्ध, आमाप और आकृति का मछली की शरीर की बनावट तथा जीवन पद्धति के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। कई बार विशेष कारणों से इनकी बनावट में परिवर्तन भी आ जाते हैं जैसे ईलो (एंग्यूलिफार्मस) तथा कुछ स्पाईनी ईलो (मास्टोसैम्ब्लाइडी) की जातियों में पृष्ठीय तथा गुद पंख पुच्छीय पंख के साथ मिले रहते हैं तथा सभी ईलों में श्रेणी पंख नहीं होते। टंग-सोलस (साइनोग्लोसिडी) तथा कुछ सोलो (सोलिडी) में भी पृष्ठीय, पुच्छीय तथा गुद पंख मिले रहते हैं। नौटीटैरस (औस्टियोग्लोसीफार्मस) में पुच्छीय पंख गुद पंख से जुड़ा रहता है। कुछ मछलियों (सिल्यूरोफार्मस, सामन आदि) में रेयुक्त पृष्ठीय पंख के पीछे एक वसामय पंख होता है। पर्चों (पर्सीफार्मस) में अधिकतर पृष्ठीय पंख का अगला भाग शूलिय होता है। जैसे नैनडस, डैटीनीइडेस आदि) या फिर ये दो अलग-अलग भागों शूलिय तथा कोमल पंखों में बँटा रहता है। जैसे लिजा, म्यूगिल, राइनोम्यूगिल, सिकाम्यूगिल, बालाम्यूगिल आदि)। मलैट, गोबी, मैकरल, ट्यूना, आदि (स्कौब्राइडी) में कोमल पृष्ठीय तथा गुद पंख के पीछे अलग-अलग पंखिका की एक पंक्ति होती है। सेल-मछलियों (इसटियोफोरिडी) में पृष्ठीय पंख नौका के बदबान जैसा होता है। कैटफिशों जैसे एलिया (शिलबीडी) में पृष्ठीय पंख ही नहीं होता तथा क्रिप्टोडैरस (सिल्यूराइडी) में बहुत ही अल्प विकसित या बाल की तरह का पृष्ठीय पंख होता है। शार्कों (ओरेक्टोलाबीफार्मस, करकैरीनीफार्मस), सौ-फिशों, गिटार-फिशों (राजीफार्मस) में दो शूल रहित पृष्ठीय पंख होते हैं। रेओं (डेसिएटिडी) में पृष्ठीय पंख के स्थान पर कोड़े की तरह की पूँछ पर अधिकतर लम्बा शूल होता है, और गुद तथा पुच्छीय पंख नहीं होते।

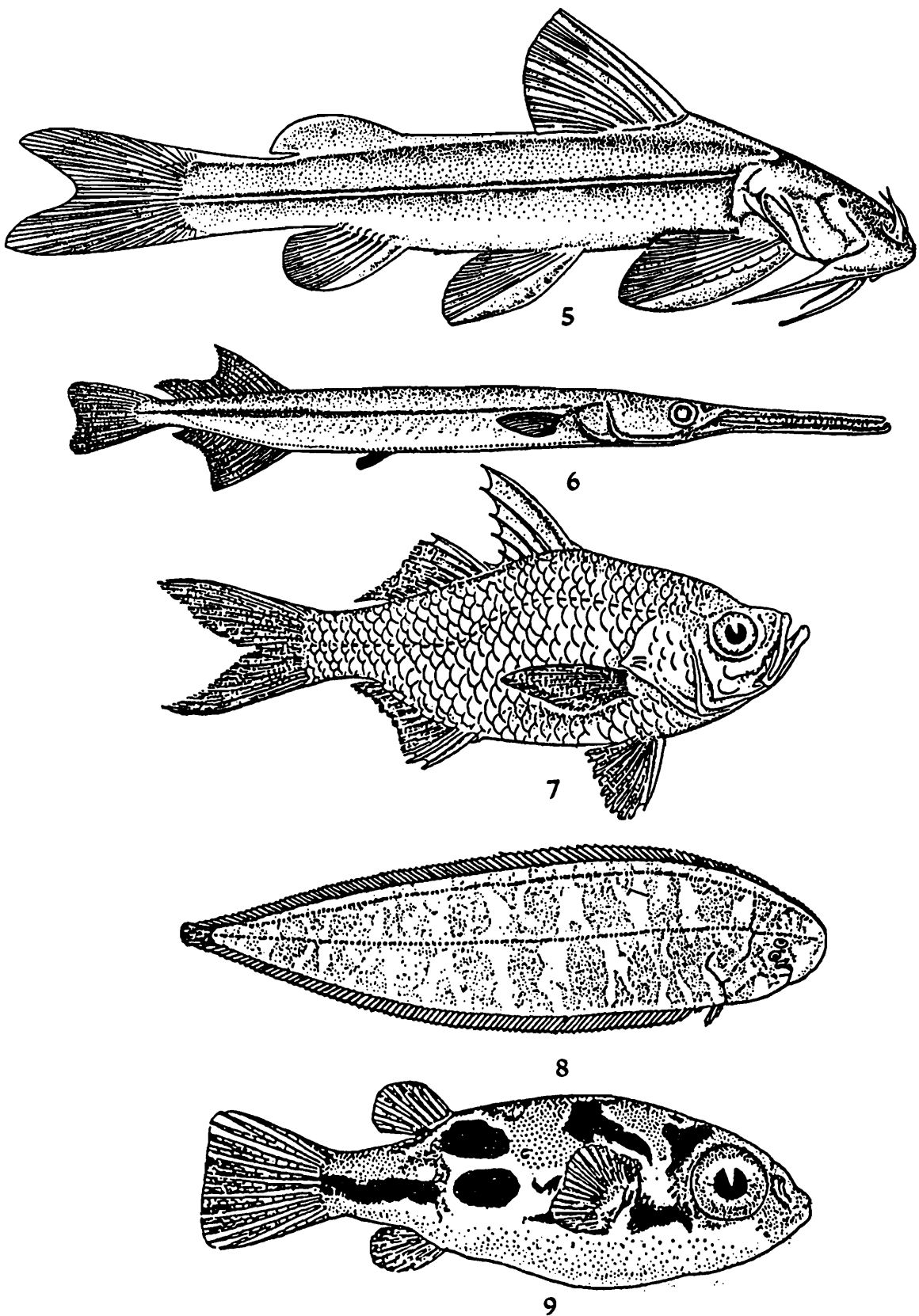
अंस पखों में भी थोड़ी बहुत भिन्नता पाई जाती है, जैसे रेओं (डेसिएटीडी, माइलियोबेटिडी, मोबुलाइडी) में अंस पख बहुत बड़े और पंख-समान होते हैं और सिर व शरीर से मिल रहते हैं। अस्थिल मछलियाँ में अंस पख इनके रहन-सहन के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार से स्थानान्तरित होते हैं। ये छोटे, बड़े, गोल, नोकदार आदि प्रकार के हो सकते हैं जैसे क्लैरियस (क्लैराइडी) में अंस पख शूल जो कि काफी प्रबल होते हैं, पानी से बाहर चलने में काम आते हैं। उड़न मछलियाँ (एक्सोसीटाइडी) में अंस पख बहुत बड़े होते हैं और ये थोड़ी बहुत उड़ान में सहायक होते हैं। थ्रैडफिन पर्चो इल्यूथैरोनीमा, पौलीडेक्टाइलस आदि (पोलीनीमिडी) में अंस पखों की नीचे की कुछ रेएं अलग होकर तंतुओं की तरह लम्बी हो जाती हैं जिन पर स्पर्श और रस संवेदी इन्द्रियां स्थित होती हैं। कोयला (कल्यूपीफार्मस) में ऊपर की कुछ रेएं लम्बी तथा इसी वर्ग की सैटीपिन्ना में बाहर की एक रे तंतु की तरह निकली रहती है। टिंग्ला (स्कोरपीनीफार्मस) में नीचे को दो या तीन अंस पख रेएं शेष पख से अलग होकर अंगुलियों जैसी परिवर्तित हो जाती हैं तथा भोजन की तलाश व चलने के काम आती हैं। कुछ मिन्नों (साईलोरिकीडी तथा पैरासाऊलोरिकीडी) में युग्म पख चौड़े होते हैं तथा चपटे वक्ष व पेट के साथ मिलकर आधार या पत्थरों से चिपकने में सहायक होते हैं। इसी प्रकार कुछ साइसोरिडो (इयूकायलोग्लेनिस, एक्सोस्टोमा, आदि) में भी अंस पखों में इसी प्रकार का परिवर्तन पाया जाता है। इसी कुल की ग्लिटोथैरैक्स, स्यूडाकिनैस आदि मछलियों के अंस पख पर स्थित चूषक के साथ मिलकर पत्थरों से चिपके रहने में सहायक होते हैं। युग्म पक्षों की बाहरी चौड़ी रेओं पर भी रेखित चूषक संरचना होती है। लैगुविया का शरीर बहुत छोटा होता है।

श्रोणी पख अधिकतर मछलियों में लगभग पेट पर, कुछ पर्चों में वक्षीय या गंडिक (जुगलर) होते हैं। कुछ आस्थिल मछलियों में श्रोणी पख बहुत छोटे (नौटौटैरस) या फिर होते ही नहीं जैसे इलो (एंग्युलीफोर्मस, मास्टासेम्बैलाइडी), पफर मछलियां (टेट्रओडोनटिडी) आदि में। गौरामी (औसफ्रोनीमिडी) में इस पख की एक रे बहुत लम्बे तंतु की तरह होती है। कुछ मछलियों में पख रूपान्तरित होकर पत्थरों या नदी के तल से चिपकने के लिए चूषक-चक्रिका या प्याला सा बनाते हैं जैसे गोबी (गोबीऔआइडीडी) में। टंग-सोलों (साइनोग्लौसिडी) में केवल एक श्रोणी पख होता है जो गुद पखों से जुड़ा रहता है। सभी नर शाको तथा रेओ में श्रोणी पख मैथुन क्रिया के लिए परिवर्तित होते हैं। गुद पको में भी काफी विविधता पाई जाती है तथा ये भी वर्ग और जाति के अनुसार छोटे बड़े होते हैं। अस्थिल मछलियों में अधिकतर साइप्रोनिफार्मस, कुल्युपीफार्मस, इलोपी फार्मस, मिक्टोफीफार्मस, साइप्रोनाडोनटीफार्मस आदि वर्गों के सदस्यों में गुद पख अधिकतर छोटा होता है। कोरिका (कुल्यूपीफार्मस) में आखिरी दो गुद पख रेएं अलग पखिका बनाती है। गैम्बूसिया (पोइसिलाइडी) के नरों में इस पख की अगली कुछ रेएं आन्तरिक निषेचन के लिए रूपान्तरित होती है। चैगूनियस (साइप्रोनिफार्मस) के नर में कुछ गुद रेएं बढ़ी रहती हैं। पर्चों के गुद पख में आगे की ओर कुछ शूलीय रेएं होती है। शाको (ऑरैक्टोलोबीफार्मस, करकैरीनीफार्मस) में ये पख छोटा होता है, किन्तु स्केटों तथा रेओं (राजीफार्मस) में यह गायब रहता है। एंग्युलुईफार्मस, पिल्यूरीनैक्टीफार्मस

आदि के सदस्यों में ये पंख काफी लम्बा होता है। सिल्यूरीफार्मस के कुछ सदस्यों में भी लम्बा होता है। अस्थिल मछलियों में पुच्छीय पंख आकृति और आमाप में काफी भिन्न पाये जाते हैं जैसे अधिकतर साइप्रीनीफार्मस, कुल्यूपीफार्मस, सील्यूरीफार्मस आदि में। शाखित, पर्सीफार्मस की सियेनिडी कुल में गोल या थोड़ा नोकदार, स्कोमब्राइडी में नव-चन्द्राकार, लुटजेनस (लुटेजेनिडी) में रूढ़ित या कोरखांच आदि। शाखित पंखों की पालियां बराबर, छोटी या बड़ी तथा कभी-कभी इनकी बाहरी रेंग कम या अधिक बाहर की ओर बढ़ी रहती हैं। शाकों में ये विषम पालि प्रकार के होते हैं क्योंकि इनमें कशेरुक-दंड ऊपर वाली पाली में मुड़ा रहता है अतः यह बड़ी, निचली पाली छोटी होती हैं। रेओं (डेसिएटिडी, माइलियोबेटिडिडी, मोबूलिडी) में पुच्छीय पंख सिरे से होता ही नहीं।

मुंह तथा जबड़े

अस्थिल मछलियों में मुंह अधिकतर सिर के सिरे पर किन्तु नीचे या थोड़ा बहुत ऊपर भी होता है जो कि इनके प्राकृतिक वास, भोजन या शिकार करने की विधि पर भी निर्भर करता है। पर्वतीय क्षेत्रों की नदियों में रहने वाली मछलियों (साइजोतोरेक्स गिलटोबोरक्स, स्युडाकिनैस, इयूकायलोग्लेलिस, गारा आदि) का मुंह सिर के निचले भाग में तथा ये स्पर्शवर्ध के साथ मिलकर पत्थरों से चिपके रहने तथा कीट-भोजन तलाशने में सक्षम होता है। इसी प्रकार छोटी लोच मछलियां जैसे निमैकायलस, ट्रिप्नोपाइसा, आदि (सिप्रीनीफार्मस) जो छोटे पहाड़ी नालों में पत्थरों के बीच रहती हैं, का मुंह भी अधिकतर नीचे की ओर तथा इनके ओष्ठ ग्रन्थिमय होते हैं व दोनों ओर स्पर्शवर्ध भी होते हैं। कुछ कार्पो जैसे साइजोबीरेक्स, पहाड़ी लेबियो आदि के मुंह का निचला जबड़ा चट्टानों पत्थरों से काई खुरचने के लिए तेज धार वाला होता है। गारा का निचला ओष्ठ रूपान्तरित होकर चक्रिका में बदल जाता है तथा साइजोबीरेक्स में यह ओष्ठ ग्रन्थिमय तथा एक पट्टी के आकार का हो जाता है तथा ये पत्थरों से काई खुरचने समय चिपकने में भी सहायक होते हैं। पानी की सतह पर भोजन करने वाली मछलियों में मुंह का निचला जबड़ा बढ़ा होने के कारण ऊपर की ओर होता है, जिससे ये आसानी से अपना कीट-भोजन करती हैं। हाफबीकों (हैमीरिफिडी) में निचला जबड़ा नाली-दार लम्बी चोंच के रूप में बढ़ा होता है और ऊपरी जबड़ा बहुत छोटा होता है जिससे इनका मुंह एकदम ऊपर होता है। इसके विपरीत सोर्ड, स्पयर, सेल आदि (पर्सीफार्मस) मछलियों में ऊपर का जबड़ा भाले या तलवार की तरह बढ़ा होता है जिससे इनका मुंह नीचे की ओर होता है। जैनैटोडोन (सिप्रीनोडोन्टीफार्मस) में मुंह चोंच के समान होता है क्योंकि इसके दोनों ही जबड़े बराबर से बढ़े रहते हैं तथा ये छोटी मछलियों का शिकार करने में काफी सहायक होता है। कुछ कार्पो का मुंह विशेष रूप से वर्धनीय होता है। फ्लैट-मछलियों जैसे सोलों (सोलीडी) और टंग-सोलो (साइनोग्लोसिडी) में मुंह लगभग पूर्णतयः निचले पक्ष में मुड़ा होता है। मुंह का आमाप भी छोटा बढ़ा हो सकता है जैसे वालागो (सिल्यूरिडी) का मुंह बहुत बड़ा खुलता है क्योंकि यह पर भक्षी है और पुन्टियस (साइप्रीनिडी) आदि में मुंह बहुत छोटा होता है।



चित्र 5. ग्लिप्टोथोरैक्स पैक्टीनोप्टेरस (पथरचट या सकिंग-फिश); 6. जैनैनटोडोन कैसिला (सुआ महली या गार-फिश); चन्दा नामा (ग्लास पर्वलैट); 8. साइनोग्लौसस पुन्टीसैप्स (टंग-सोल); 9. टैट्राओडोन कुटकुटिया (पफर-फिश) ।

सभी सिल्यूरीफार्मस में तथा कुछ दूसरी मछलियों में मुँह के दोनों ओर स्पर्शवर्ध (बारबिल) भी होते हैं जो भोजन तलाशने में मछली की काफी मदद करते हैं।

दाँत

अस्थिल मछलियों में दाँत जबड़ों, तालू की हड्डियों, कंठ आदि पर होते हैं जो कि जाति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। मांसाहारी (सिल्यूरीफार्मस, पर्सीफार्मस) मछलियों के दाँत अधिकतर प्रबल होते हैं। कुछ गोबियों (गोबाइडी) में सामान्य दाँतों के पीछे निचले जबड़े में अन्दर की ओर लम्बे व मुड़े हुए रदनक (केनाइन) दाँतों का युग्म होता है। ग्लोब या पफर मछलियों (टैट्रओडोनटीफार्मस) में जबड़ों के दाँत मिलकर दो तेज धार वाली पट्टियाँ बनाते हैं जो घोंघे, कीट, झींगे, केंकड़े, दूसरी छोटी मछलियाँ आदि खाने में सहायक होती हैं तथा जो मछलियाँ केवल घोंघों पर निर्वाह करती हैं, उनमें प्रबल किन्तु कुन्द ग्रसनीय (फैरिन्खजियल) दाँत ही होते हैं तथा कुछ एक में जबड़ों के पार्श्वीय दाँत रूपान्तरित होते हैं जिससे ये घोंघों की शैले तोड़ सकें। शाकाहारी अस्थिल मछलियों के दाँत कृतक (इन्साइजर) या छैनी-समान, कुन्द और संदलन (क्रशिन) बारीक और ब्रश समान, छोटे और काँटेदार आदि प्रकार के होते हैं या फिर बिल्कुल ही नहीं होते। ये विविधता जबड़ों, ग्रसनी तथा तालू पर स्थित सभी दाँतों में पाई जाती है। साइप्रिनिडी कुल की कार्प मित्रों आदि मछलियों के मुँह दंत रहित होते हैं। किन्तु इनके ग्रसनी दाँत अधिक परिवर्धित तथा विशिष्ट प्रकार के होते हैं। उपास्थिसम मछलियों में वास्तविक दाँत हैं जो कि पट्टाभ (प्लैकोइड) या दंताभ (ओडोन्टोइड) शल्कों के समरूप होते हैं तथा ये जबड़ों पर रेशेदार झिल्ली से जुड़े रहते हैं। इनके आमाप तथा आकार जाति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। ये लम्बे सुई समान से लेकर बड़े, चपटे या तिकोने भी हो सकते हैं तथा ऊपरी और निचले दोनों जबड़ों में या फिर एक ही डबड़े में भी भिन्न हो सकते हैं। बहुत सी शाकों के दाँत इतने विशिष्ट होते हैं कि इनको दाँतों की बनावट से भी पहचाना जा सकता है। गिटार-मछलियाँ (राइनोबेटाइडी), सा-मछलियाँ (प्रिस्टिडी), स्टिंग-रेओं (डैसीएटिडी) तथा दूसरी रेओं में दाँत सदैव छोटे कुन्द और बहुत सी कतारों में लगे रहते हैं। शार्क प्रायः परभक्षी होती है और यह दूसरी मछलियों के साथ जल पक्षी, केंचुए, केंकड़े, घोंघे आदि को अपना भोजन बनाती है। रेओं में भी कुछ ऐसा ही है।

शल्क

अधिकतर अस्थिल मछलियों की त्वचा शल्कों से ढकी रहती है। कार्पो में अधिकतर सिर और पखों को छोड़कर शरीर पतले, लचीले-चक्राभ (साइक्लोइड) शल्कों से जो कोरछादी (इम्ब्रीकेट) तरीके से व्यवस्थित रहते हैं, से ढका रहता है। इन शल्कों का पिछला भाग चिकना होता है। कामन कार्प (साइप्रिनस कार्पियो) के मिरर कार्प रूप में पार्श्व की मध्य रेखा के

साथ किन्तु अलग-अलग शल्कों की एक या दो पंक्तियां होती हैं तथा लेदर कार्प रूप में शल्क बिल्कुल होते ही नहीं। पर्वों में शल्क बहुत छोटे होते हैं तथा इनके पिछले किनारे पर छोटे-छोटे दांतों जैसे शूलों की पंक्ति होती है, इसलिए इन्हें ककताभ शल्क (टीनौइड) कहते हैं। वैसे एक मछली में एक ही प्रकार के शल्क होते हैं, किन्तु बहुत सी समुद्री पर्वों (एपीनेफैलस) में दोनों ही प्रकार के शल्क होते हैं-पार्श्व रेखा के ऊपर के शल्क प्रायः ककताभ तथा उससे नीचे वाले चक्राभ होते हैं। कुल्यूपिड मछलियों के शल्क पर्णपाती (डैसीडुआस) होते हैं जो कि छूने या पकड़ने से गिर जाते हैं जब कि स्पूडोरेम्बस (वर्ग प्ल्यूरोनैक्टीफार्मस) में ये शल्क त्वचा में काफी गहरे धंसे रहते हैं तथा ककताभ दोनों नेत्रीय-पक्ष पर तथा अन्ध पक्ष पर चक्राभ शल्क होते हैं और कोरछादी के बजाय एक दूसरे से अलग रहते हैं। ईल (एंगुयूला) में क्योंकि त्वचा बहुत अवपंकी (स्लाइमी) होती है इसलिए एकदम नग्न दिखायी देती है। किन्तु ये भी बहुत सूक्ष्म तथा गहरे धंसे शल्कों से ढँकी रहती है। टैट्राओडोनटीफार्मस की ग्लोब या पफर-मछलियों में शल्क छोट-छोटे सर्पी शूलों-समान होते हैं, जो मछली के फूलने पर खड़े हो जाते हैं। कुछ मछलियों के नरों के शल्क कणिकी (ग्रेन्यूलर) होते हैं। उपास्थिसम मछलियों (शार्क रेओं) आदि की चमड़ी बहुत छोटी दंताभ (ओडोन्टोइड) या पट्टाभ (प्लैकोइड) दंतिकाओं (डैन्टीकिल्स) से ढँकी रहती है, जिससे खुरदुरे स्पर्श का आभास होता है।

रंग

मछली के जीवन में इनके शरीर के रंग का भी काफी महत्व रहता है और अलग-अलग जातियों में ये भिन्न होता है। वैसे आमतौर पर पानी के स्तम्भ तथा सतह पर विचरने वाली मछलियां सामान्यः रजतीय होती हैं। नर मछलियां विशेषकर प्रजनन काल में अधिक रंगीन पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त खुले पानी में रहने वाली मछलियां अधिकतर रंगीन प्रतिरूप (पैटर्न) लिए रहती हैं, तथा गहरे या पानी की तलहटी में रहने वाली मछलियां कालापन लिए होती हैं। कुछ पर्वतीय साइप्रोमिफार्मस मछलियों (बैरीलियस) में रजतीय शरीर पर रंगीन पट्टे होते हैं। रायामास पर चित्तियां होती हैं, माहसिर के पख पीले या लाल होते हैं, पुन्टियस साधारणतः वृतंक (पैडंकल) पर काले बिन्दु तथा इसोमस और पारल्यूसोमा में शरीर पर एक लम्बी काली पट्टी तथा ब्रेकीडैनियों में बहुत लम्बी पट्टियां होती हैं। निमैकायलस लोचों में भी अधिकतर पट्टे तथा कुछ में गहरे बिन्दु होते हैं। इसी प्रकार के स्तम्भ या सतह पर रहने वाली समुद्री मछलियां भी विभिन्न प्रकार के रंगों से सुसज्जित रहती हैं। ग्लिप्टोथोरेक्स (सिल्यूरिफार्मस) आदि जो कि पहाड़ी नदियों में पत्थरों के नीचे तल पर रहती है, कालापन लिए होती हैं। इसी प्रकार अधिकतर समुद्री रेए, शार्कों जो कि पानी में तह की ओर रहती है, भी मंद रंगों या फिर कालेपन पर होती हैं। जेब्रा, शार्का (स्टेगोस्टोमेटाइडी) के शरीर पर पीली पट्टियां होती हैं जो कि उम्र के साथ हल्की पड़ती जाती हैं। लैपर्ड स्टिंग-रेए (हिमानदयूरा-राइनोबेटाइडी) के शरीर पर मधुमक्खी छत्ता समान प्रतिरूप होता है तथा इंगल-रे (एडोबेटस)

के शरीर पर छोटे-छोटे सफेद बिन्दु होते हैं तथा एक और इंगल-रे एड्टोमाइलियस पर गहरे पट्टे होते हैं।

लैंगिकता

साधारणतः मछलियों के नर मादा लिंग अलग-अलग होते हैं, किन्तु कभी-कभी स्कोम्ब्राइडी तथा क्लूपीडी के कुछ सदस्यों में नर और मादा दोनों ही अंगों का पूर्ण परिवर्धन मिलता है, जो कि असामान्य स्थिति है। परन्तु समुद्री सेरेनिड पर्व मछलियां सदा ही उभयलिंगी होती हैं, जिनमें प्रायः एक मछली के शुक्राणु दूसरी के अंडों को निषेचित करते हैं। इनमें स्वनिषेचन बहुत कम होता है। क्योरिप्थैलममिडी, बैथिप्टैराइडी, एलपीसीरीडी, तथा पैरालोपीडाइडी कुलों की गहरे समुद्र की मिक्टोफीपार्मस मछलियों में उभय लिंगता सदैव मिलती है। शायद उनमें स्वनिषेचन भी होता है जो कि अंधकारमयी परिस्थितियों में अपने साथी को ढूँढने की कठिनाइयों से बचने के बिल्कुल अनुकूल है। कुछ मछलियों में लिंग विपर्यास भी पाया जाता है। जैसे पर्व-समान सेरीनिडों की बहुत सी जातियों में आयु के साथ-साथ लिंग परिवर्तन हो जाता है। एनीपैरोडीन गुपर में मछली का जीवन एक क्रियाशील मादा से शुरू होता है, किन्तु बाद में ये नर में परिवर्तित हो जाती हैं। फलस्वरूप इन मछलियों में नर मादाओं की अपेक्षा अधिक लम्बे और आयु में बड़े होते हैं। स्पैरिडी (समुद्री ब्रीमे) लैवरिडी (रेसें) तथा इम्पेलिविथडी की समुद्री मछलियों के सदस्यों में भी लिंग परिवर्तन मिलता है। रेसों तथा कुछ समुद्री ब्रीमों की मछलियां सैरानिडी की भांति आरम्भ में मादा ही होती हैं पर बाद में नर में परिवर्तित हो जाती हैं तथापि कुछ ब्रीमों आरम्भ में नर होती हैं। साइप्रिनिड कैरेसियस औरेटस (गोल्ड-मछली) की जंगली जीव संख्याओं में जायाजनन (गाइनोजैनेसिस) या निषेचन के बिना जनन मिलता है जो शायद भ्रूणीय परिवर्धन (डेवलपमेंट) का उद्दीपन (स्टोमुलस) किसी दूसरी जाति के शुक्राणु द्वारा वेधन की प्रवृत्ति से होता है। वैसे उच्च कशेरुकियों की भांति वास्तविक जनन क्रिया अण्डाणु तथा नर के शुक्राणु के संयोजन से ही होती है। अंतर केवल संयोजन या निक्षेपन विधि में है। अधिकतर मछलियों में अण्डाणु तथा शुक्राणु पानी में छोड़ दिए जाते हैं जहां निषेचन होता है। अंड जनन का समय भी विभिन्न जातियों में अलग-अलग तथा ऋतुओं के अनुसार होता है। अंडों के बहिवेधन की क्रिया भी काफी विविध होती है, जो कि एक ही समय में या फिर धीरे-धीरे पूरी होती है। अंडों के निषेचन को निश्चित करने तथा इनकी हानि को रोकने के लिए नर मादा मछलियां बड़े-बड़े झुन्डों में इकट्ठी होकर हजारों लाखों की गिनती में अंडे छोड़ती हैं, जो उत्प्लावक या तलमज्जी हो सकते हैं। क्योंकि भारी या तलमज्जी अंडे पानी की सतह पर छोड़े जाते हैं, अपेक्षाकृत कम नष्ट होते हैं। इसीलिए इनकी संख्या भी तुलनात्मक दृष्टि से कम होती है। बहुत सी समुद्री मछलियों (सामो) आदि तट से होती हुई नदियों में अंड जनन के लिए आती हैं। इसके विपरीत अलवण जलीय ईल (एंग्यूला) अण्डजनन के लिए समुद्र में जाती हैं। इनको क्रमशः समुद्रापगामी (इनाइडोमस) तथा समुद्राभिगामी (कैटाइडोमस) कहते हैं। सभी शाकों और रेओं में अंडों का निषेचन मादा के

शरीर में होता है, जोकि निश्चित ही लैंगिक मिलाप से होता है। यह क्रिया विशिष्ट रूपान्तरित श्रोणी पखों की मदद से होती है क्योंकि इनमें वास्तविक मैथुन अंग नहीं होते ये मछलियां अंड पंजक (ओवीपैरस) या अंडजरायुज (ओवोबीपैरस) होती हैं यानी वे उन अंडों का निक्षेपण (डिपोजिशन) करती हैं, जो निषेचन के तुरन्त बाद ही बहिर्वर्धित हो जाती हैं और समुद्र में आगे परिवर्धन के लिए छोड़ दी जाती हैं या ये परिवर्धन मादा की अंड वाहिनी में होता है तथा तरुण परिवर्धन की अग्रिम अवस्था में बाहर आता है।

अस्थिल मछलियों में प्रवेशी अंग (इन्ट्रोमिटैन्ट आर्गन) उन जातियों में मिलते हैं जिनमें अंडों का निषेचन आन्तरिक होता है। सिके अतिरिक्त कुछ साईप्रिनडोन्टो जैसे गैम्बूसिया में नर जननांग से निकली वाहिनी गुद पख के अगले सिरे तक नलकी सी बनाती है। इसके अतिरिक्त जटिल प्रवेशी अंगों वाली सभी साईप्रिनोडोन्टों में निषेचित अंडाणु शरीर के भीतर ही रहते हैं तथा बच्चे अपेक्षाकृत परिवर्धन की अग्रिम अवस्था में पैदा होते हैं जैसा कि अंडजरायुज शाकों और रेओं में होता है। समुद्री कुल ओफिडिडी (कसक-ईल) की कुछ मछलियों में शिशन समान प्रवेशी अंग होते हैं।

नर मादा में लैंगिक अन्तर के अतिरिक्त और भी लक्षण होते हैं जिन्हें गौड़ लैंगिक कहते हैं। इनको आमाप, रंग, पंखों, चमड़ी आदि में देखा जा सकता है। इनमें से कुछ एक लक्षण जनन काल में ही विकसित होते हैं जैसे पोसीलाइडी कुल की गैम्बूसिया का नर मादा से छोटा होता है। साइप्रीनीडी की नर चैगूनियस में गुद पख की कुछ रेएं बढ़ी होती हैं। रायमास के नर की चमड़ी खुरदुरी होती है, पुन्टियस की कुछ सदस्यों में नर अधिक रंगीन होते हैं। सिल्यूलिफार्मस की वलागो के अंस पख की बाहरी रेएं मादा से अपेक्षाकृत अधिक अस्थिवत तथा मोटी होती हैं, और इस पर अन्दर की ओर विकसित दंतिकाएँ होती हैं।

अंडे

अस्थिल मछलियों के अंडे गोल तथा पीतक झिल्ली में बंद रहते हैं। इनके अंडे आकार और परिवर्धन के अनुसार मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—वेलापवर्ती (प्लेजिक) जो छोटे उत्प्लावक (बोएंट) एवं सामान्यतः पतली झिल्ली वाले होते हैं; और तलमज्जी (डिममल) जो अपेक्षाकृत बड़े, बारी और डूबने वाले होते हैं। इन पर मोटी झिल्ली होती है। समुद्री मछलियों में अंडे दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु अलवणीय जल की मछलियों में अधिकतर वेलापवर्ती अंडे होते हैं। तलमज्जी अंडों वाली मछलियां जो साधारणतः अलवण जल में प्रजनन करती हैं, के अंडे समुद्र में अंड जनन करने वाली मछलियों के अंडों से अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। सामो, ऐलोसा आदि समुद्रापगामी मछलियों के तलमज्जी अंडे अलग-अलग किन्तु असंजक होते हैं जो कि एक दूसरे से या स्थायी वस्तुओं से चिपक जाते हैं। शाकों और रेओं के अंडे पीतक से भरे तथा बड़े होते हैं और एक श्रंगी (हार्नी) आवरण या सम्पुटिका (कैप्सूल) में बंद रहते हैं।

वितरण

मछलियों का वितरण इनकी जाति और स्वभाव के अनुसार विविध होता है। जिस प्रकार स्थलीय कशेरुकी विशिष्ट क्षेत्रों में स्थानीयकरण के लिए पर्वत मालाएँ, रूक्ष मरुस्थल, विस्तृत जल क्षेत्र, ने जंगल आदि जैसे प्राकृतिक रोधों द्वारा सीमित रहते हैं, ठीक उसी प्रकार बहुत सी अलवण जलीय मछलियाँ भी अपने प्राकृतिक वास में सीमित रहती हैं। परन्तु क्योंकि सभी महासागर आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, अतः समुद्री मछलियाँ दूसरे ही रोधों (पानी का तापमान, लवणता, रसायन, महासागर की धाराओं की प्रकृति तथा शक्ति, तट रेखा का विन्यास, प्राप्य भोजन की पूर्ति और उसके वितरण आदि) से अपने क्षेत्रों में सीमित रहती हैं। क्योंकि लवणीय तथा अलवणीय जल एक दूसरे से रसायन में काफी भिन्न होते हैं अतः अलवण माध्यम से लवण या इसके विपरीत अचानक परिवर्तन से मछलियाँ जीवित नहीं रह सकतीं। परन्तु समुद्र से खारे ज्वारनदमुख में होती हुई अलवण जल प्रवाह में या फिर इसके विपरीत आ जा सकती हैं। उदाहरण के लिए कामन ईल (एंगुयूला) प्रजनन काल में अलवणीय जल से लवणीय जल या समुद्र में जाती है तथा शेड (हिल्सा) अंडजनन के लिए समुद्र से नदियों में आती है। लवणता के साथ-साथ गहराई, कम होता हुआ प्रकाश, तापमान का अन्तर भी बहुत सी मछलियों के लिए अलंघ्य रोध होते हैं। यह भी देखा गया है कि गहरे समुद्र की मछलियाँ ऊपरी बाग की मछलियों से अपेक्षाकृत अधिक विविधता लिए होती हैं। वितरण के अनुसार मछलियों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है:—

1. अलवणीय नदियाँ, नाले, तालाब, झील आदि में पाई जाने वाली
2. अलवणीय नदियाँ तथा ज्वारनदमुखीय
3. ज्वारनदमुखीय
4. ज्वारनदमुखीय तथा समुद्रीय
5. समुद्रीय।

आभार

लेखक, डा० जे. आर. बी. अल्फ्रेड, निदेशक तथा डा० आर. के. वाष्णोय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता और डा० अरुण कुमार, संयुक्त निदेशक एवं प्रभारी अधिकारी, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, उत्तरी प्रादेशिक केन्द्र देहरादून का प्रोत्साहन व सुविधाओं के लिए आभारी है। श्री महरानी दीन, हिन्दी टंकक, का इस लेख के टंकण के लिए धन्यवाद है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

जलीय-कीट विविधता

विश्वम्भर दयाल श्रीवास्तव

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

जलीय कीट क्या हैं?

यथानाम जलीय-कीट वे कीड़े हैं जो जलीय वातावरण से सम्बन्धित हैं। जलीय कीट वातावरण के अनुरूप थलीय कीड़ों के विपरीत, कई तरह के रंग-रूप में परिवर्तित हुये हैं। इन जलीय कीड़ों का अनुपात, थलीय कीड़ों के अपेक्षा यूँ तो बहुत कम हैं; यानी सिर्फ 5%। कीट वर्ग के 29 वर्गों में से 13 कीट वर्ग जल से सम्बन्धित हैं (देखें तालिका-1)।

इनके अन्तर्गत जलीय कीट अधिकांश रूप से मीठे जल के वातावरण में पाये जाते हैं, जैसे नदियाँ, जलाशय, तालाब, सरोवर आदि। इन कीड़ों का मुख्य उपयोग है मछलियों का भोजन; कुछ जलीय कीटों द्वारा नवजात मछलियों का भक्षण; मछलियों को पकड़ने के चारे के रूप में; जल प्रदूषण के जैविक सूचक; जैविक संतुलन तथा रोकथाम में, तथा पशु चिकित्सा में, इत्यादि।

जलीय कीट विविधता

जलीय-कीट 13 कीट वर्गों से सम्बन्धित हैं। इनके दो भाग हैं:

- (1) शत प्रतिशत जलीय कीट
- (2) आंशिक जलीय कीट

(1) शत प्रतिशत जलीय कीट

इस में 4 कीट वर्ग का समावेश है। इन सभी कीड़ों का जलीय जीवन इनके जीवन की अप्रीढ़ अवस्था (अंडे, लारवा, प्यूपा आदि) के रूप में ही व्यतीत होता है। प्रीढ़ बिलकुल

विभिन्न रंग रूप में तथा हवा में उड़ने तथा साँस लेने वाले होते हैं। उदाहरण के रूप में इनमें से वर्ग ओडोनेटा के कीड़े (व्याध पतंग) के प्रौढ़ तथा लारवा में इतनी ज्यादा विभिन्नता है कि सत्रहवीं शताब्दी तक तो इन्हें स्वतन्त्र रूप से अलग अलग चित्रित एवं वर्णित किया जाता था। इनके एक होने का पहली बार पता 1669 में जान स्वामरडम नामक एक डच वैज्ञानिक के प्रकाशन से चला।

इन कीटों की जीवन लीला में चार अवस्थाएँ होती हैं—अण्डा, प्रोलारवा, लारवा एवं प्यूपा। किन्तु किस कीट वर्ग में कौन सी अवस्था होती है, इसको निम्नलिखित विवरण में '+' (उपस्थित) एवं '-' (अनुपस्थित) करके दिखाया गया है।

कीट वर्ग	अण्डा	प्रोलारवा	लारवा	प्यूपा
(क) इफीमेरापटेरा (मई मक्खी)	+	+	+	
(ख) ओडोनेटा (ड्रैगन फ्लाई या व्याध पतंगे)	+	+	+	-
(ग) प्लेकोपटेरा (स्टोन फ्लाई)	+	-	+	-
(घ) ट्राईकोपटेरा (कैंडिस फ्लाई)	+	-	+	+

(2) आंशिक जलीय कीट

इस वर्ग के सभी सदस्य पूर्ण रूप से जलीय जीवन यापन नहीं करते, बल्कि कुछ भाग ही जलीय-जीव होते हैं। कुछ सदस्य पूरा जीवन-चक्र जलीय जीवन यापन करते हैं; तो कुछ सिर्फ जीवन-चक्र का प्रारम्भिक भाग ही जलीय पारिस्थितिकी में व्यतीत करते हैं।

आंशिक जलीय-कीट वर्ग में भी दो तरह के कीट दल हैं: -

(क) बहुलता से पाये जाने वाले जलीय कीट वर्ग

(ख) अत्यन्त अल्प सदस्यी जलीय-कीट वर्ग।

प्रथम के अन्तर्गत चार कीट श्रेणी तथा द्वितीय के अन्तर्गत पाँच कीट श्रेणी पायी जाती हैं। अर्थात् कुल 9 कीट श्रेणी का समावेश है; जो निम्नलिखित है:-

कीट वर्ग	अण्डा	प्रोलारवा	लारवा	प्यूपा
(क) (1) डिपटेरा (मक्खियाँ)	•	•	•	
(2) हेमिपटेरा	•	•		•
(3) कोलियोपटेरा (गुब्बैले, बोटलस)	•	•	•	•
(4) न्यूरोपटेरा (स्पांजिला मक्खियाँ)	-	•		
(ख) (5) मेगालोपटेरा (एलडर, डाब्लसन मक्खियाँ)	-	•		
(6) हाइमेनोपटेरा (मधुमक्खी, बौर)	•	•	•	
(7) कोलेम्बोला (स्प्रिंग टेल)	-	•	•	•
(8) आर्थ्रोपटेरा (क्रिकेट, झींगुर)	-		•	•
(9) लेपीडोपटेरा (तितली, शलभ)	•		•	

जातीय विविधता

उपरोक्त 13 कीट श्रेणी, जो जलीय पारिस्थितिकी से सम्बन्धित हैं, का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

- (1) इफीमेरोपटेरा (मई 'मक्खियाँ') : इस कीट वर्ग के सभी सदस्य जीवन चक्र की प्राथमिक अवस्था (अण्डे, लारवा) के रूप में चल तथा अचल जलीय पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं। गर्मी में प्रौढ़ दृष्टिगोचर होती है, अतएव इन्हें 'मई मक्खियाँ' के नाम से भी जाना जाता है, किन्तु प्रौढ़ अवस्था अत्यन्त ही अल्पकालीन होती है (एक-दो दिन मात्र)।

जल में ही ये अण्डे देती हैं; इनसे निकले लारवा मृलायम तथा पतले गठन के होते हैं जो जलीय वनस्पति के बीच वास करते हैं। इसके विपरीत जो तलाहटी पर तथा पत्थरों के नीचे होती हैं वे अपेक्षाकृत अधिक चपटे तथा चौड़े गठन के होते हैं। प्रौढ़ के दो जोड़े (या कभी एक जोड़े) पंख भी होते हैं।

भारत में इनकी 65 जातियाँ पाई जाती हैं जबकि पूरे विश्व में इनकी 2150 जातियाँ होने का अनुमान है।

- (2) ओडोनेटा (डैमसल एवं ड्रैगन फ्लाई): इस कीट श्रेणी के सभी सदस्य जीवन चक्र की प्राथमिक अवस्था में अण्डे, लारवा, प्रोलारवा के रूप में चल एवं अचल जलीय पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं। इनके बहुत ही विकसित मुख तथा सुचारू भोजन पकड़ने तथा भक्ष्य करने की निपुणता के कारण इन्हें 'व्याध-पतंगे' भी कहते हैं। इनके लारवा दो प्रकार की शारीरिक गठन के होते हैं; एक तो दुबले, पतले मुलायम शरीर के जो जलीय वनस्पतियों में वास करते हैं तथा दूसरे मोटे, चपटे तथा चौड़े गठन के होते हैं और ये तलहटी पर या पत्थरों के नीचे वास करते हैं। प्रौढ़ के हमेशा एक जोड़े पंख होते हैं।

भारत में इनकी 499 जातियाँ पाई जाती हैं; जबकि पूरे विश्व में इनकी लगभग 7,000 जातियाँ होती हैं।

- (3) प्लेकियोप्टेरा (स्टोन-फ्लाई) : इस कीट श्रेणी के भी सभी सदस्य जीवन चक्र की प्राथमिक अवस्था में अण्डे, लारवे के रूप में चल एवं अचल जलीय पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं। ज्यादातर ये प्रदूषण मुक्त, ठण्डे जलीय जल या फिर ठण्डे जलाशय (जिनके किनारे पथरीले अथवा तलहटी पथरीली हों) में पाये जाते हैं। इनके इसी पथरीले स्थलों में वास करने की वजह से इन्हें स्टोन-फ्लाई भी कहते हैं। इस वर्ग के लारवा ज्यादातर बाहरी अंगुली-रूप में विकसित 'गिल' के माध्यम से साँस लेते हैं। प्रौढ़ में प्रायः दो जोड़े पूरे विकसित पंख होते हैं।

यह कीट श्रेणी जैव-विविधता की दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटी है। भारत में करीब 100 जातियाँ पाई जाती हैं जबकि पूरे विश्व में करीब 1200 जातियाँ पाई जाती हैं।

- (4) ट्राइकोप्टेरा (कैडिस फ्लाई) : इस श्रेणी के सभी सदस्य जीवन चक्र की प्राथमिक अवस्था अण्डे, लारवा, प्यूपा के रूप में चल एवं अचल जलीय पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं। ये भी स्टोन-फ्लाई की तरह ठण्डे तथा प्रदूषण मुक्त जल में ही पाये जाते हैं। प्रायः सभी सदस्यों के लारवा अपने सुरक्षा के लिये खोल बनाते हैं, जो आसपास पाये जाने वाले विभिन्न पदार्थों जैसे बालू, छोटे पत्थर, पत्तियाँ, लकड़ी या यहाँ तक कि छोटे घोंघे से बनाते हैं। प्रायः सभी लारवा का सिर, पैर तथा धड़ का अगला भाग जो अपेक्षाकृत कड़ा रहता है तथा खोल के बाहर रहता है परन्तु बाकी का मुलायम भाग खोल में सुरक्षित रहता है। सभी लारवा पहले 'कोकून' रूपी खोल तैयार करते हैं; तत्पश्चात ये 'प्यूपा' में परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रौढ़ कीड़े 'माथ' की तरह दिखने वाले, ज्यादातर दो पंखों वाले होते हैं। इनमें पतले रेशे के समान बाल होते हैं पर 'माथ' की तरह 'स्केल' नहीं होते।

भारतवर्ष में इस कीट श्रेणी की 350 जातियाँ पाई जाती हैं; जबकि पूरे विश्व में इनकी अनुमानित करीब 4000 जातियाँ होती हैं।

- (5) **डिप्टेरा (मक्खियाँ, मच्छर आदि)** : इस श्रेणी के सभी सदस्य जलीय जीवन नहीं व्यतीत करते हैं; बल्कि कुछ सदस्य ही जलीय पारिस्थितिकी में रहते हैं। इसको इसीलिये 'आंशिक जलीय कीट' में सम्मिलित किया जाता है। ये जलीय जीवन प्राथमिक यानी अण्डे, लारवा, प्यूपा के रूप में ही व्यतीत करते हैं। इनके पंख वाले प्रौढ़ हवा में उड़ते हैं। इनका जलीय जीवन चल तथा अचल दोनों ही प्रकार के जलों में होता है। इनमें से कुछ या तो सतह से पानी में लटकते हैं, कुछ तैरते वनस्पतियों में भी जुड़े होते हैं या फिर उनके बीच तैरते हैं। इसके अलावा इनमें से कुछ तो तलहटी में मिट्टी, बालू या पत्थरों के नीचे पाये जाते हैं। इनके लारवा लम्बे पतले होते हैं तथा प्यूपा का सिर काफी बड़ा होता है। ये इन दोनों अवस्था में ही सतही हवा से साँस लेते हैं। इस श्रेणी के कई सदस्य काफी महत्वपूर्ण क्योंकि इनके जरिये कई तरह की बीमारियाँ फैलती हैं; उदाहरण के किये मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू, यलो फीवर आदि।

भारत में इस वर्ग की लगभग 2320 जातियाँ पाई जाती हैं, अपेक्षाकृत विश्व में इनकी करीब 10,000 जातियाँ हैं।

- (6) **हेमिप्टेरा (बग)** : इस श्रेणी के कीड़े आंशिक जलीय कीट वर्ग में आते हैं। क्योंकि कुछ सदस्य ही जलीय जीवन व्यतीत करते हैं। ये चल तथा अचल दोनों प्रकार के जलों में पाये जाते हैं। इनके सदस्यों का जीवन चक्र या तो पूर्णरूप से या आंशिक रूप से जलीय पारिस्थितिकी में व्यतीत होता है। ये अण्डे लारवा के अलावा प्रौढ़ अवस्था में भी पानी में रहते हैं। पानी की सतह पर ये चलते या तैरते पाये जाते हैं। कुछ पानी के अन्दर भी रहते हैं। इनका शरीर तो पतला होता है पर सतह पर चलने या तैरने (स्केटिंग) वालों के पैर अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं। इनकी एक जाति तो काफी बड़े प्रकार की होती है जिसके अगले पैर मोटे होते हैं—इसीलिये इन्हें 'बड़ाजलीय बग' (जायन्ट वाटर बग) भी कहते हैं।

जलीय जीवन यापन करने वाले वर्ग की 300 जातियाँ भारत में पाई जाती हैं तथा विश्व में इनकी लगभग 1200 जातियाँ जल जीवन व्यतीत करती हैं।

- (7) **कोलियोप्टेरा (बीटल्स)** : कीट जगत में यह सब से बड़ा वर्ग है; परन्तु जल में थल की अपेक्षा बहुत ही कम पाये जाते हैं। फिर भी इनके कुछ सदस्य जल में नजर आ जाते हैं तथा दोनों प्रकार के चल एवं अचल जल में पाये जाते हैं। इनके ऐसे सदस्य जल में अण्डे, लारवा तथा प्रौढ़ के रूप में पाये जाते हैं। इनमें 'प्यूपा' अवस्था नहीं होती। लारवा साधारणतयः लम्बे होते हैं तथा साँस लेने के लिये इनमें 'गिल' भी पाई जाती हैं। प्रौढ़ में दो जोड़े पंख होते हैं; पहला जोड़ा बहुत कड़ा होता है जिसे 'इलिटरा' कहते हैं तथा दूसरा जोड़ा पतला जो पलकने वाले के - जैसे - - - - -
*।

तालिका-1 भारत में जलीय कीट विविधता

	क्रम संख्या		कीटवर्ग	उपवर्ग/ बृहत वंश	वंश	जातियाँ	
						भारतमें	विश्वमें
शत प्रतिशत जलीय कीट वर्ग		1	इफीमेरोपटेरा	-	12	95	2,150
		2	ओडोनेटा	3	17	499	7,000
		3	प्लेकियोपटेरा	2	7	100	1,200
		4	ट्राइकोपटेरा	-	19	350	4,000
आंशिक जलीय कीट वर्ग	बहुलता से जलीय	5	डिपटेरा	3	17	2319	10,000
		6	हेमिपटेरा	1	11	300	3,200
		7	कोलियोपटेरा	-	15	500	5,000
		8	न्यूरोपटेरा	-	1	30	300
	अत्यन्त अल्प जलीय	9	मेगालोपटेरा	-	2	3	30
		10	हाइमेनोपटेरा	4	6	5	50
		11	कोलेमबोला	2	6	5	100
		12	आर्थ्रोपटेरा	-	4	5	19
		13	लेपीडोपटेरा	-	9	1	10
कुल	13			15	126	4,212	33,059

भारत में जलीय कोलियोपटेरा की करीब 500 जातियाँ हैं; जबकि विश्व में इनकी लगभग 5000 जातियाँ जल में पाई जाती हैं।

- (8) न्यूरोपटेरा (स्पांज मक्खियाँ) : यह अपेक्षाकृत बहुत ही छोटा कीट वर्ग है। इनके सिर्फ लारवा ही जलीय जीवन व्यतीत करते हैं; प्रौढ़ पंख सहित उड़ने वाले होते हैं। इनके दो जोड़े पंख होते हैं तथा एक सरसरी नजर में ओडोनेट कीड़ों की तरह लगते हैं। चल तथा अचल दोनों ही तरह के जल में सिर्फ एक वंश (सिसाइरीडी) के अन्तर्गत आते हैं। ज्यादातर ये जल में होने वाले स्पांज में रहते हैं तथा उनका रस ग्रहण करते हुये नुकसान ही पहुँचाते हैं। इनका इस प्रकार से स्पांज से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें स्पांज मक्खियाँ भी कहते हैं।

भारत में इनकी केवल 30 जातियाँ पाई जाती हैं; जबकि विश्व में इनकी करीब 300 जातियाँ होती हैं।

- (9) मेगालोपटेरा (एलडर, डाबसन मक्खियाँ) : ये जलीय वातावरण में सिर्फ दो वंशों के अन्तर्गत पाये जाते हैं। सियालिडी (एलडर मक्खियाँ) बहते हुए जल में; जिसकी तलहटी मुलायम तथा सड़ती गलती वनस्पति से परिपूर्ण हो, पाई जाती हैं। दूसरा वंश कारडायिलिडी (डाबसन मक्खियाँ) का है। इनके लारवा लम्बे, पतले, रेशे या गुच्छे के समान विकसित भाग की सहायता से साँस लेते हैं।

भारत में इनकी सिर्फ 3 तथा विश्व में केवल 30 जातियाँ पाई जाती हैं। अतः इन्हें अत्यन्त अल्प सदस्यी जलीय कीट वर्ग में रक्खा जाता है।

- (10) हायमेनापटेरा (मधु मक्खी, बर्रें आदि) : यह कीट श्रेणी भी बहुत ही अल्प सदस्य वाले जलीय कीट वर्ग में आता है। यँ तो यह एक बहुत ही बड़ा कीट वर्ग है, जिसकी भारत में लगभग 7350 जातियाँ तथा विश्व में 1,20,000 जातियाँ पाई जाती हैं; परन्तु जल में इनकी जातियाँ कम ही पाई जाती हैं। इनके अण्डे जलीय वनस्पतियों में मादा द्वारा रोपित होते हैं; प्रौढ़ तो पंखों सहित हवा में रहने वाले ही होते हैं। चार बृहत वंशों के अन्तर्गत इस प्रकार के अण्डे रोपित करने वाले उदाहरण इस कीट वर्ग में मिलते हैं।

- (11) कोलेमबोला (स्प्रिंग टेल) : यँ तो यह भी बहुत बड़ी कीट श्रेणी है, पर इसके सदस्य अधिकांशतः बहुत छोटे तथा थलीय जीवन व्यतीत करते हैं।

फिर भी अत्यन्त अल्प संख्या में ये स्थाई, अस्थायी जल में न्यूसटन के रूप में ही रहते हैं। ये पानी की सतह पर काई डाइएटम, प्लैंक्टन का भोजन ग्रहण करते हैं।

- (12) आर्थ्रोपटेरा (टिड्डी आदि) : जलीय कीटों में इसका बहुत कम समावेश है; यँ तो यह भी काफी विशाल वर्ग है। दो जाति ट्राइडैक्टिलिडी वंश के अन्तर्गत, तथा तीन वंश

ग्रायोटैलपिडी, टेरीजिडी, एकारीडिडी की करीब 12 जातियाँ हैं जो जल में उगते वनस्पतियों की तटीय पारिस्थितिकी में पाई जाती हैं।

- (13) लेपीडोपटेरा (तितली एवं माथ) : इस कीट श्रेणी की भी, काफी जातियाँ हैं जो जलीय हैं, कुछ जलीय वातावरण में रहती हैं। पायरिलिडी वंश के अन्तर्गत कुछ जातियों का जलीय जीवन अण्डे, लारवा तथा प्यूपा के रूप में व्यतीत होता है। इनके अलावा संभवतः एक दो अन्य वंशों के सदस्य भी अंशकालीन जलीय होते हैं।

सारांश

जलीय कीट मीठे जल के चल तथा अचल दोनों प्रकार की पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं। कुल 13 कीट वर्ग जलीय जीवन व्यतीत करते हैं इनमें से 4 वर्ग के कीट शतप्रतिशत जलीय हैं तथा 9 वर्ग के कीट आंशिक जलीय होते हैं। इन जलीय 9 वर्गों में से भी 4 वर्ग बहुल एवं 5 अल्प रूप से जलीय होते हैं। इनके अन्तर्गत जलीय-कीड़ों की विविधता भारत में लगभग 4200 जातियाँ, 13 वर्गों, 12 उपवर्गों तथा 126 वंशों के अन्तर्गत पाई जाती हैं; जबकि पूरे विश्व में इनकी लगभग 33000 जातियाँ पाई जाती हैं। यह विविधता तब कई गुना बढ़ जाती है जब इनकी कई जातियों के जीवन चक्र में विभिन्न प्रारूप होते हैं; तथा परिस्थितियों के अनुसार भी रंग-रूप परिवर्तित होते रहते हैं।

कुमार, ए. एवं प्रसाद, एम., 1981. फील्ड इकोलोजी, जुजोगरफी एन्ड टैक्सोनोमी आफ द ओडोनाटा आफ वेस्टर्न हिमालया, इन्डिया। रिकॉर्ड्स जुलौजिकल सर्वे आफ इन्डिया अकेजनल पेपर 20 : 1-118.

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय झींगुर, तिलचट्टे, टिट्टी आदि

महेन्द्र सिंह शिशौदिया

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

‘ऋजुपंखी कीड़ों के वर्ग में ऐसे कीड़े आते हैं—जैसे झींगुर, तिलचट्टे, मैटिस, टिट्टा, कर्णकीट, स्टिक-इन्सेक्ट, लीफ-इन्सेक्ट आदि। ये सभी अपने शरीर की बनावट की वजह से अलग-अलग वर्ग में रखे गये हैं। इनकी शरीर रचना वातावरण, मौसम, समुद्र से जगह की ऊँचाई, तथा जगह विशेष की पारिस्थितिकी की वजह से बदल जाती है। उदाहरण के तौर पर पहाड़ों पर रहने वाले कीड़ों के पंख छोटे होते हैं, गुफा में रहने वाले कीड़ों की आँख कम विकसित होती हैं, जमीन के अन्दर खोदकर बिल बनाकर रहने वाले कीड़ों के अगले पैर मिट्टी खोदने के उपयुक्त बड़े हो जाते हैं।

इस वर्ग के कीड़ों को शरीर की रचना के आधार पर निम्न भागों में बांटते हैं—

डिकटीओपटेरा :— इस वर्ग में तिलचट्टा व ब्रेडिंग मैटिस आते हैं। इसके दो भाग हैं:—

(i) ब्लैटेरिया :— तिलचट्टा का शरीर चपटा होता है तथा ये 5 मी० मी० से 53 मी० मी० तक की लम्बाई के होते हैं। तीन जोड़ी टांगें समान लम्बाई की होती हैं। एन्टीना असंख्य खंडों में विभक्त रहती है तथा काफी लम्बी रहती है। इनका सर पूरी तरह से प्रोटोनम से ढँका रहता है (चित्र -1)।

ये संसार के प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं, मगर विशेषतः उष्णकटिबंधी व उसके समीपवर्ती प्रदेशों में पाये जाते हैं। ये पूर्ण विकसित पंखवाले अथवा अपूर्ण पंख वाले होते हैं। प्रौढ़ व अविकसित दोनों ही जमीन के ऊपर पड़ी हुई गली, सड़ी हुई पत्तियों के नीचे, पत्थरों के नीचे, अथवा मकानों के भीतर पाये जाते हैं। कुछ जातियों के कीड़े पानी के पास रहते हैं, जो कुछ देर तक पानी में तैर सकते हैं (एपीलेम्परा), कुछ कीड़े छोटी-छोटी वनस्पतियों के मध्य, अथवा गुफावासी होते हैं (नोकटीकोला), या चींटी-रागी (अट्टाफीला)।

अधिकतर ये कीड़े रात को ही निकलते हैं, मगर कुछ जातियाँ जो पेड़ों अथवा झाड़ियों

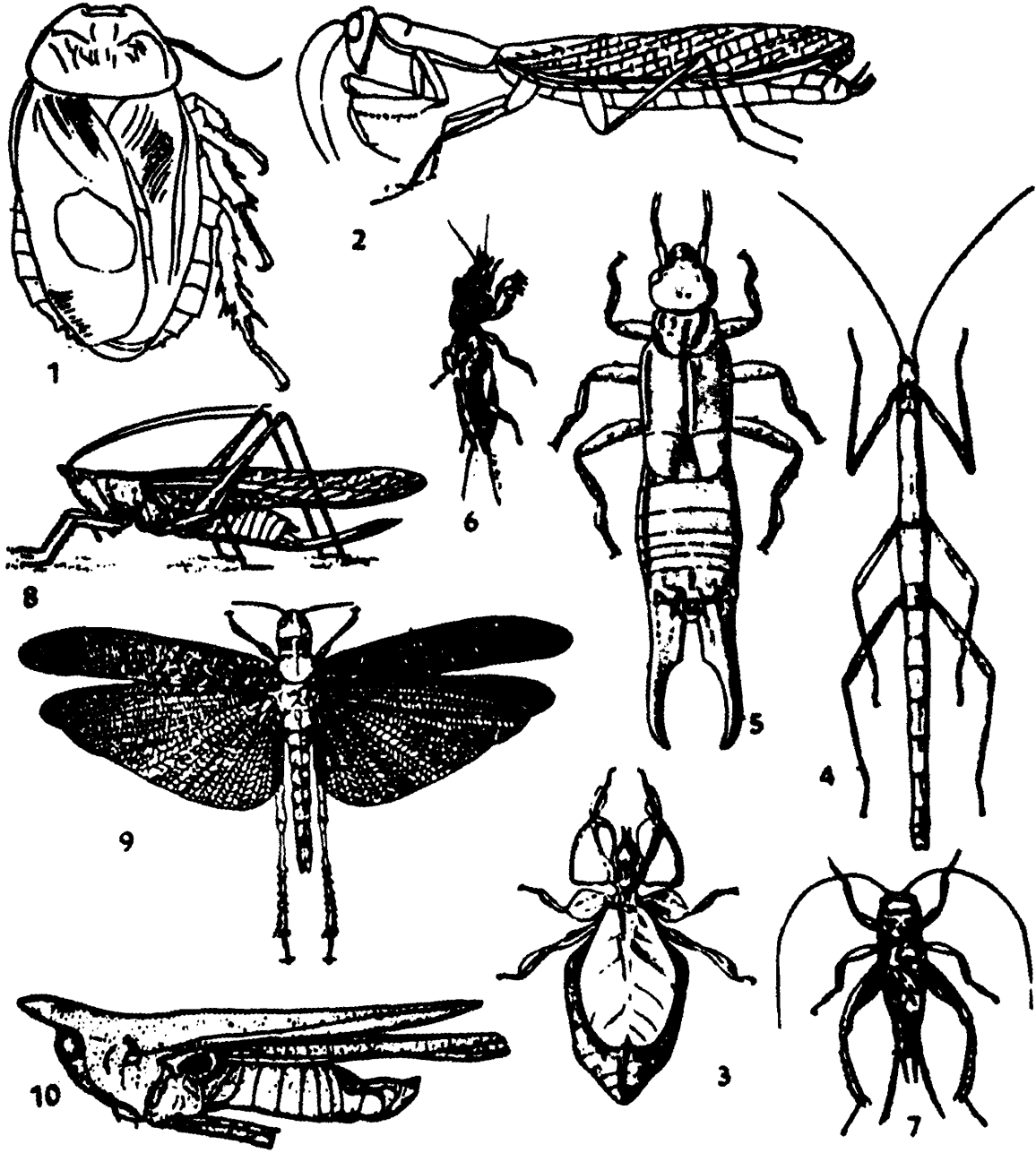
पर रहते हैं, वे दिन में भी निकलते हैं। इस वर्ग की कुछ जातियाँ घरेलू नाशक हो गयी हैं— जैसे ब्लैटा ऑरियेंटिस, ब्लैटा जरमेंनिका, पेरीप्लेनेटा अमेरिकाना। इनका रंग भी भिन्न तरह का होता है। कुछ कीड़े ईंट के रंग, चौकलेट रंग, पीले-हरे रंग या काले रंग के होते हैं, तो कुछ कीड़े चित-कबरे रंग के भी होते हैं। सभी प्रकार के कीड़े वातावरण के अनुसार अपना रंग बदल लेते हैं। इनका भोजन साधारणतः चीनी अथवा स्टार्च युक्त होता है, मगर कुछ जंगली जातियों के कीड़े मरे हुये जन्तुओं के दृव्य पदार्थ को भी खा जाते हैं। पेनिस्थिया और क्रिपटोसरक्स जाति के कीड़े लकड़ी के अन्दर रहकर उसके सेलुलोज को खा जाते हैं जिसे पचाने में बैक्टीरिया और प्रोटोजोआ मदद करते हैं। इस प्रकार दोनों ही जीव सहजीवी की तरह रहते हैं।

(ii) मेन्टोडिया:— प्रेयिंग मेन्टिस (चित्र-2) कीड़ों का सिर प्रोनोटम से नहीं ढका रहता है। सिर इच्छानुसार इधर-उधर घुमाया जा सकता है तथा आँखें काफी बड़ी होती हैं जो शिकार को देखने में मदद करती हैं। अगली टाँगें शिकार पकड़ने के लिये काफी बड़ी तथा चिमटे के रूप में रूपान्तरित हो जाती हैं। यह कीड़ा जब शिकार के लिये बैठता है तो अगली दोनों टाँगों को मोड़कर इस प्रकार कर लेता है, जैसे मनुष्य प्रार्थना (प्रेयर) करते हैं। इसी मुद्रा की वजह से इसका प्रचलित नाम प्रेयिंग मेन्टिस पड़ गया है।

इनका शरीर खासकर प्रोटोथोरेक्स लम्बा होता है। ये अधिकतर संसार के गर्म, नम, उष्णकटिबंध, अर्धउष्णकटिबंध प्रदेशों में पाये जाते हैं। संसार में इनकी 2,000 जातियाँ पायी जाती हैं, मगर भारत में केवल १६१ जातियों के कीड़े ही मिलते हैं।

मैटिड्स फसल के नाशक कीड़ों को रोकने के काम आते हैं। क्योंकि ये उनका शिकार करते हैं। इनके अन्य शिकार मक्खियाँ, टिड्डा, केटरपिलर इत्यादि होते हैं। बड़े कीड़े छोटों को, मादा नर को खाने की कोशिश अथवा उनपर आक्रमण करते हैं। कुछ अमेरिकन जाति के कीड़े छोटी छिपकली, मेढ़क आदि पर भी आक्रमण करते देखे गये। मैटिस कीड़े बहुत प्रकार की शक्ल में पाये जाते हैं, और अपने को बहुत ही रोचक ढंग से बाह्य जगत के अनुरूप बना लेते हैं ताकि अपने शत्रु को धोखा दे सकें, और अपने शिकार को आसानी से पकड़ सकें। इनका हरा रंग इस कार्य के लिये सहायता करता है। कुछ जाति के कीड़े फूलों जैसा रंग बना लेते हैं जिससे इन फूलों पर आने वाले कीड़ों को पकड़कर खा सकें। कुछ कीड़े प्रोटोथोरेक्स व टाँगों के भागों को पत्तियों जैसा रूप प्रदान कर लेते हैं जिसमें वे छिपे रहते हैं, ताकि उन पत्तियों पर बैठने वाले कीड़ों को पकड़ कर खा सकें।

ऑर्थोप्टेरा : इस वर्ग में झींगुर, टिड्डा इत्यादि कीड़े आते हैं। कुख्यात टिड्डी भी इसी वर्ग में आती है जो अपनी विनाशकारी आदत के लिये विश्व प्रसिद्ध है। इनके ऐन्टीना छोटे व बड़े दोनों प्रकार के हो सकते हैं, और उसी नाम से पुकारे जाते हैं, जैसे-छोटे ऐन्टीना वाले टिड्डा व बड़े ऐन्टीना वाले टिड्डा। इसके अलावा लम्बे ऐन्टीना शाइजोडैक्टाईलस, ग्राईलैक्रीडीडी व ग्राईलोईडिया (झींगुर परिवार) में भी पाये जाते हैं। इनकी पिछली टाँगें लम्बी होती हैं जो



चित्र 1. तिलचट्टा; 2. प्रेथिंग मेन्टिस; 3. लीफ-इन्सेक्ट; 4. स्टिक-इन्सेक्ट; 5. हर्मायटेरा;
6. ग्राइलोटाएलीडी; 7. झींगुर; 8. टेट्रोपोनीडीडी (लम्बे एन्टीना वाला टिड्डा);
9. टिड्डी (लोकस्ट); 10. टेटरीजीडी (ग्राउस-लोकस्ट)।

फुदकने व कूदने के काम आती हैं। इन कीड़ों में ध्वनि प्रसारण करने की क्षमता होती है। अधिकतर नर ही ध्वनि प्रसारण करने का कार्य करते हैं जो मादा कीड़ों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिये की जाती है। ध्वनि कई प्रकार से पैदा की जाती है, जैसे आगे के पंखों को जाँघ से रगड़ने से, अथवा अगले पंखों को आपस में रगड़ने से, या दूसरे व तीसरे उदर खंड को पिछली जाँघ के भाग से रगड़ने से। मादा कीड़े या तो ध्वनि पैदा करते ही नहीं हैं, अथवा बहुत धीरे से ध्वनि प्रसार करते हैं।

संसार में करीब 20,000 जातियों के कीड़े इस वर्ग में आते हैं, जिनमें से केवल 900 जाति के कीड़े भारत से पता लग सके हैं।

टिड्डा, जो विनाश के लिये प्रसिद्ध है, इसी वर्ग में आती है। ये छोटे ऐन्टीना वाले साधारण टिड्डा की तरह ही होते हैं, कुछ विशेष परिस्थितियों में, जिन्हें अब तक पूरी तरह नहीं जाना गया है, बहुत बड़ा दल बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ने लगते हैं। यह उड़ान सारे दिन भी चलती रहती है। शाम होने पर जहाँ भी थककर पूरे समूह में बैठते हैं, वहाँ की सारी वनस्पति को खाकर समाप्त कर डालते हैं (चित्र-9)।

टेटराजीडी परिवार में प्रोनोटम विचित्र ढंग से उदर भाग को ऊपर से ढक लेता है। ये अक्सर नम स्थानों पर पाये जाते हैं। इनमें ध्वनि प्रसारण करने की शक्ति नहीं पाई जाती है (चित्र 10)।

न्यूमोरीडी परिवार में उदर फूला रहता है तथा उदर के दूसरे खण्ड के टरगम के किनारे पर ध्वनि-घर्षण रेखायें होती हैं। पिछली टांगें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं।

यूमेस्टेसीडी परिवार के कीड़े बहुत मुलायम, शर्मीले होते हैं जो झाड़ियों में छिपे रहते हैं। झाड़ियों को हिलाने से तुरन्त उनकी जड़ों में धीरे से रेंगकर छिप जाते हैं।

ट्राइडेक्टाईलीडी परिवार के कीड़ों के ऐन्टीना बहुत छोटे होते हैं। पिछली टाँग की जाँघ बहुत लम्बी होती है जबकि टिबिया पर एक जोड़ा लम्बा अग्रस्थ उपांग व बहुत सारे अर्ध उपांग कांटे के रूप में रहते हैं जिनके मध्य अवशेषी अखण्ड पिछला टखना रहता है।

ग्राइलेकरीडी वंश के कीड़ों के ऐन्टीना बड़े होते हैं तथा शरीर का रंग बादामी होता है। ये ज्यादातर पेड़ों पर अपना निवास स्थान बनाते हैं। अपना घर बनाने के लिये पेड़ों की पत्तियों को गोलाकार, मुँह की लार की सहायता से बना लेते हैं। ये परभक्षी प्रकार के कीड़े हैं।

शाइजोडैक्लाइलीडी वंश के कीड़े भारत में बहुत मिलते हैं। इनके ऐन्टीना भी बहुत बड़े होते हैं। इनके पंख पूर्ण विकसित होते हैं। विश्राम अवस्था में पंखों का अग्रस्थ बाग शूंडाकार कुंडली रूप में रहता है। दिन में बिल के अन्दर रहते हैं तथा रात को शिकार की तलाश में बिल से बाहर निकलते हैं। इनका निवास स्थान ज्यादातर नदी के किनारे बालू में होता है।

टैटीगोनीडी अर्थात् लम्बे ऐन्टीना वाले टिड्डा इस वंश में आते हैं (चित्र -8)। इनमें नर ध्वनि पैदा कर मादा को आकर्षित करता है। इसके लिये अगले पंख काम में लाये जाते हैं।

बाँया पंख दायें पंख के ऊपर रहता है। कुछ कीड़ों में पिछला पंख नहीं होता है तथा अगला पंख लघु हो जाता है। ये कीड़े ज्यादातर हरे रंग के होते हैं। तथा अपने पंखों को भी पत्तियों जैसा रंग रूप दे लेते हैं। पंखहीन कीड़े जमीन के ऊपर रहते हैं। मगर कुछ कीड़े पेड़ों की चोटी तक पहुँच जाते हैं। कुछ कीड़े पेड़ों की छाल जैसा रूप धारण कर लेते हैं (सैप्रोफाइलिया)। यह सब रूपान्तर केवल शत्रु की निगाह से बचने के लिये किया जाता है।

ग्राईलीडी वंश के कीड़ों में ऐन्टीना बड़े होते हैं तथा ध्वनि-प्रसारण के अंग काफी विकसित होते हैं। इसमें भींगुर (चित्र-7) इत्यादि कीड़े आते हैं। रात को जंगल में जाते तक, अथवा घरों में भी झींगुर की ध्वनि अनायास आकर्षित कर लेती है। ब्रेकीट्राइपस जाति के कीड़े बहुत तेज आवाज पैदा करती हैं। ये बिल में रहते हैं तथा शरीर का पिछला हिस्सा बिल से बाहर निकालकर अगले पंखों को आपस में रगड़कर ध्वनि निकालते हैं जो लगभग एक मील तक सुनी जा सकती है। ग्राईलोटेलापीडी वंश के कीड़े जमीन के अन्दर बिल बनाकर रहते हैं। बिल बनाने के लिये इनको अगली टाँग मिट्टी खोदने के काम में आती है। इनकी आँख कम विकसित होती है। यह फसल को हानि पहुँचाते हैं, क्योंकि प्रायः नये उगे पौधों की जड़ों को काट देते हैं (चित्र-6)।

फासमीडा :— इस वर्ग में कठ-कीट व पर्णभ-कीट आते हैं (स्टिक-इनसेक्ट चित्र-4 व लीफ-इनसेक्ट चित्र-3)। इनका आकार लम्बाकार होता है, जो कभी-कभी चपटा व पत्तियों जैसा रूप भी ले लेता है। इनकी प्रोथोरिक्स छोटी होती है, तथा पैर छोटे व एक समान होते हैं। अगले पंख, जब होते हैं, तब छोटे व कोस्टा मारजिन के नीचे रहते हैं। ये अपना रूप सूखी लकड़ी की टहनियों या पत्ती की तरह बना लेते हैं। पंख अथवा पंखहीन दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें आकार रूपान्तरित करने की क्षमता काफी विकसित होती है जो शत्रु से बचने के लिये की जाती है।

डर्माप्टेरा :— इस वर्ग में कर्ण-कीट या डर्माप्टेरा कीड़े आते हैं (चित्र-5)। ये पत्थरों के नीचे, फूलों पर या वनस्पतियों के ऊपर पाये जाते हैं। इन कीड़ों के अगले पंख का रूपान्तर एक छोटे, चमड़े जैसे टैगमीना में हो जाता है, जिसमें नसें (वेन्स) नहीं होती हैं। पिछला पंख झिल्लीदार, अर्ध चन्द्राकार व नसें (वेन्स) अरोय क्रम से रहती हैं। कुछ बगैर पंख वाले कीड़े भी पाये जाते हैं। शरीर में सबसे पीछे सरसाई अखण्ड होती है तथा अधिकतर सख्त बड़ी चिमटी के रूप में रूपान्तरित हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि इन सभी कीड़ों में बहुत तरह की विविधता पाई जाती है, जो प्रकृति व आस-पास के वातावरण से मिलती जुलती होती है। यह विविधता कभी कभी किसी भाग, प्रदेश, राज्य की भौगोलिक स्थिति से भी सम्बन्धित होती है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय व्याध-पतंगों में जैव विविधता

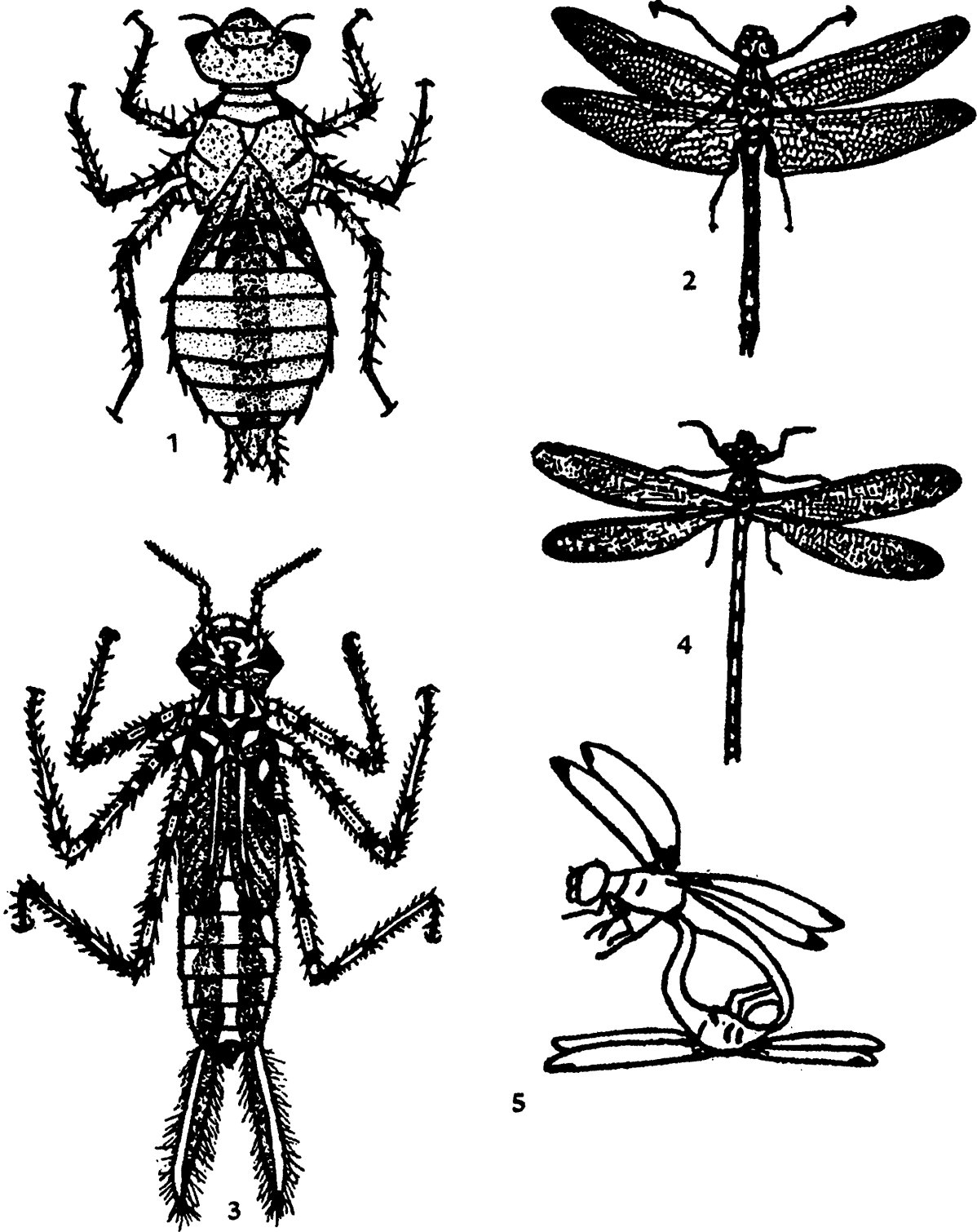
महावीर प्रसाद

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

डैगनप्लाई (चित्र 1 और 2) तथा डैमसलप्लाई (चित्र 3 और 4) ओडोनेटा वर्ग के अंतर्गत आते हैं। इन्हें प्रायः हिन्दी में व्याध-पतंग कहते हैं। इन व्याध-पतंगों को सम्पूर्ण भारत में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। उदाहरण के तौर पर इन्हें गुजरात में "मैबिया", महाराष्ट्र में "चतुर", केरल में "टुम्बी", पश्चिम बंगाल में "फडिंग", तथा उत्तर प्रदेश में "भनभीरी" एवं "जुलाहा" इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। भारतवासी इन व्याध-पतंगों से आदि काल से परिचित हैं। यहाँ तक कि व्याध पतंगों के ऊपर संगीत दक्षिण भारत के केरल प्रान्त में प्रचलित है, जो कि फिल्मों में भी सम्मिलित किये गये हैं।

व्याध-पतंग अपनी शरीर रचना, रंगों, उड़ने की कला, तथा मैथुन क्रिया (चित्र 5) के कारण कीट जगत में प्रसिद्ध हैं। व्याध-पतंग स्थल एवं जल दोनों स्थान में वास करने वाला कीट है। वयस्क कीड़ों का अधिकांश समय पानी के आस-पास जहाँ वनस्पतियाँ पायी जाती हैं, व्यतीत होता है। कभी-कभी पानी से दूर भी किसी वस्तु पर विश्राम करते हुए या आकाश में उड़ते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। बरसात के दिनों में ये कीट आकाश में हजारों की संख्या में इधर से उधर झुण्डों में उड़ते हुए आसानी से देखे जा सकते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं व्याध-पतंग अपना बाल्यकाल (लार्वा) पानी के अन्दर रह कर और वयस्क जीवन पानी के बाहर पूरा करते हैं। दोनों ही जीवन क्रम मानव समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक रूप से वयस्क व्याध-पतंग अन्य हानि कारक कीटों को भोजन के रूप में ग्रहण कर, उन कीटों द्वारा फैलने वाली बीमारियों तथा नुकसान को रोक देते हैं। इनकी कुछ जातियाँ धान, गेहूँ आदि फसलों के आस-पास पायी जाती हैं। जो उन पर पाये जाने वाले नाशक कीटों का भक्षण कर हमारी फसलों को उनके द्वारा होने वाले नुकसान से बचाते हैं। दूसरी ओर इन व्याध-पतंगों के लार्वे पानी के अन्दर पाये जाने वाले कीड़ों, मकड़ों तथा मच्छरों के लार्वा का भक्षण कर उनसे होने वाली बीमारियों से मानव तथा पशु समाज को



चित्र: 1. लार्वा ड्रैगनफ्लाई; 2. वयस्क ड्रैगनफ्लाई; 3. लार्वा डैमसलफ्लाई; 4. वयस्क डैमसलफ्लाई;
5 व्याध-पतंगों में मैथुन क्रिया की एक अवस्था।

बचाते हैं। इनके साथ ही साथ पानी के अन्दर मछलियाँ स्वयं इनके लावों का भक्षण कर मत्स्य पालन के महत्व पूर्ण उद्योग को फलने फूलने में मदद करती हैं। पक्षी, छिपकलियाँ, मछलियाँ, मेंढक, मकड़ी, मनुष्य इत्यादि बहुत सारे जीव इनके शत्रु भी हैं, जो इनका प्रायः नुकसान करते रहते हैं। यहाँ तक कि कुछ इनकी अपनी ही जातियाँ, कमजोर जातियों का भक्षण करती हैं। इन व्याध-पतंगों पर कुछ परजीवी इनके शरीर पर चिपक कर अपना भोजन इनसे प्राप्त करते हैं। व्याध-पतंगों के पंख पर पाये जाने वाला लाल माइट इनके पंखों की सफाई करता है तथा इनके पंखों पर चिपके हुए अन्य कीटों का भक्षण करता रहता है। इस प्रकार ये एक दूसरे की मदद करते हैं।

व्याध-पतंगे मई से लेकर नवम्बर माह तक अपने लार्वल वास स्थानों पर अधिक संख्या में मिलते हैं। प्रकृति में इनकी उपस्थिति लार्वल जलभूमि, परिस्थितिकी आदि पर निर्भर करती है। मैदानी भागों में ये प्रायः मार्च से लेकर नवम्बर माह तक अधिक पाये जाते हैं, जब कि पहाड़ों आदि ऊँचाई के स्थलों पर मई से जून तक तथा फिर अक्टूबर से लेकर नवम्बर तक बहुत मिलते हैं। व्याध-पतंगे पहाड़ी क्षेत्रों में 600 मीटर से 2300 मीटर की ऊँचाई तक मिलते हैं। 600 मीटर से 1200 मीटर तक इनकी संख्या अधिक होती है। 1200 मीटर से 2300 मीटर तक कम संख्या में मिलते हैं। 2300 मीटर से अधिक की ऊँचाई पर ये दुर्लभ हो जाते हैं।

देश के मैदानी भागों में जलाशयों के अन्दर पाये जाने वाले लावों की शारीरिक बनावट में काफी भिन्नता रहती है। जो लावें पानी में कम गहराई में जलीय वनस्पतियों के बीच पाये जाते हैं वे छोटे होते हैं और प्रायः लम्बे और कमजोर होते हैं। इनका रंग हल्का होता है। इनकी पीछे की रचना (काइल लैमेली) भी लम्बी तथा कमजोर होती है। ये लावें पानी के जलीय पौधों के बीच आसानी से आ जा सकते हैं। जो लावें गहरे पानी में तथा कीचड़ और पत्थरों के बीच पाये जाते हैं, उनके आकार बड़े और रंग गहरा होता है। पानी के दबाव के कारण ये लावें चपटे भी होते हैं। मानसूनी जलाशयों तथा अन्य जलाशयों पर पाये जाने वाले व्याध-पतंगों का जीवन-चक्र छोटा होता है। यहाँ पर साल में एक से लेकर तीन जीवन चक्र पूरा करने वाले व्याध-पतंग मिलते हैं।

पहाड़ी नदियों, झरोतों, झरनों आदि के पास पाये जाने वाले व्याध-पतंग काफी रंग बिरंगे होते हैं। इनके उड़ने की गति भी तेज होती है। इनके लावें काफी चपटे एवं गहरे रंगों के होते हैं। शरीर की बनावट भी पानी की तेज धाराओं से बचने के लिए उपयुक्त होती है। इन स्थानों पर पाये जाने वाले व्याध-पतंगों का जीवन-चक्र लम्बा होता है जो एक साल से लेकर तीन-चार साल के बीच होता है।

व्याध-पतंगों का शरीर का रंग भी स्थान, समय एवं वातावरण के अनुसार बदलता रहता है। एक ही जाति का व्याध-पतंग पानी के आस-पास तथा हरी भरी झाड़ियों और वनस्पतियों के बीच रहने पर काफी गहरे रंग का हो जाता है तथा देखने में बहुत सुन्दर लगता है। किन्तु

जब यही व्याध-पतंग पानी से काफी दूर, सूखी हुई झाड़ियों एवं वनस्पतियों के बीच मिलता है तो हलके रंग का हो जाता है।

भारत का प्राकृतिक परिवेश व्याध-पतंगों के लिए बहुत उपयुक्त है। भारत में व्याध-पतंगों की कुल 499 जातियाँ पाई जाती हैं, जो 19 परिवार, एवं 3 उपवर्ग के अंतर्गत आती हैं। भारत में व्याध-पतंगों का वितरण मुख्यतः पूर्वोत्तर भारत, पश्चिमी हिमालय तथा पश्चिमी एवं पूर्वी घाटों में सर्वाधिक है। भारत के पूर्वोत्तर भागों में इनकी संख्या सबसे अधिक है। यहाँ की परिस्थिति एवं वातावरण व्याध-पतंगों के लिए सर्वाधिक अनुकूल है। यहाँ वर्षा बहुत अधिक और प्रायः साल में 8 से 10 माह तक होती है। इससे पहाड़ और जंगल काफी घने एवं हरे भरे रहते हैं। केवल पश्चिम बंगाल में (विशेषतः दार्जिलिंग में) 185 प्रकार के तथा मेघालय में 147 प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं। पश्चिम हिमालय का क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत की अपेक्षा कम हरा भरा है। यहाँ वर्षा भी कम होती है। इस प्रकार यहाँ पर व्याध-पतंगों की जातियाँ भी कम मिलती हैं। अब तक पश्चिम हिमालय से 162 प्रकार के व्याध-पतंगों का उल्लेख है। पश्चिमी एवं पूर्वी घाट पूर्वोत्तर भारत की ही तरह हरे भरे हैं। यहाँ के जंगल काफी घने तथा हरे भरे हैं। वर्षा भी अधिक होती है। इन दोनों घाटों में भी 186 प्रकार के व्याध-पतंगों की जातियाँ पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त गुजरात से 48, राजस्थान से 29, हरियाणा से 17, पंजाब से 36, मध्य भारत से 39, बिहार से 63, उड़ीसा से 44 तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूहों से 42 जातियों के व्याध-पतंगों के पाये जाने का भारतीय वैज्ञानिकों ने सर्वेक्षण तथा अध्ययन करके पता लगाया है।

आभार ज्ञापन

लेखक निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता का अनुमति के लिए, तथा डा० रा० कु० वार्ष्णेय अतिरिक्त निदेशक, का सुझावों के लिए आभारी है। लेखक डा० स० कु० टण्डन, एवं डा० जे० के० जोनाथन, संयुक्त निदेशक तथा डा० वि० द० श्रीवास्तव, उप-निदेशक का भी सुविधाओं के लिए आभारी है।

भास्व की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

हैमिप्टेरा की विविधता

लक्ष्मीकान्त घोष

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

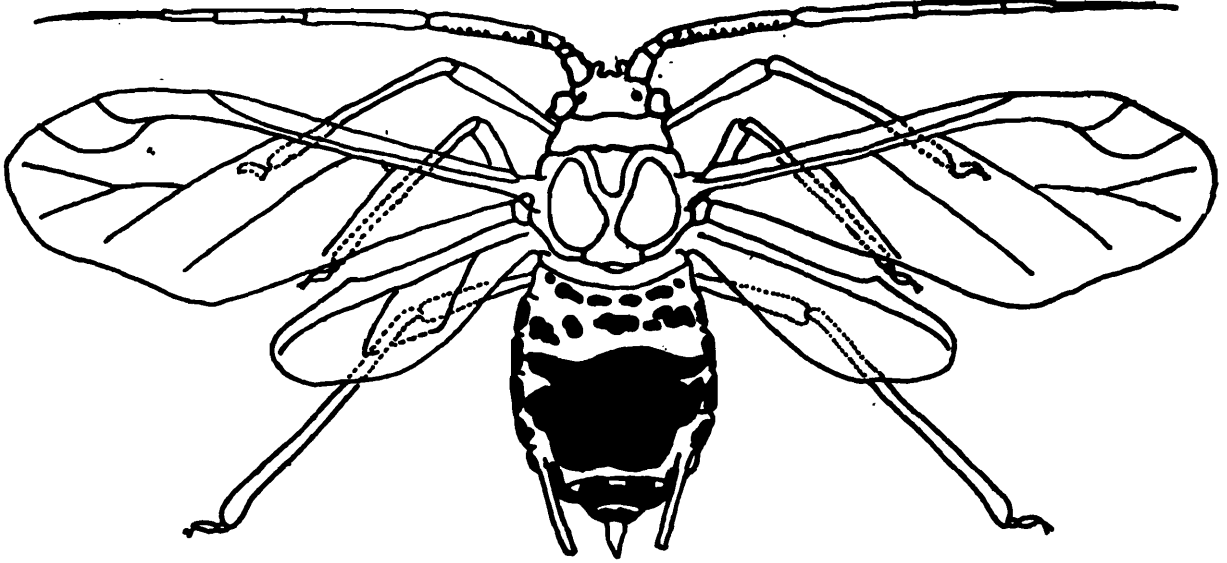
भूमिका

हैमिप्टेरा वर्ग में सभी प्रकार के बग्स आते हैं:— जैसे लीफ-बग्स, फ्रॉग-हॉपर, स्केल इन्सेक्ट, प्लान्ट-लाइस, सिकाडा, जंपिंग-लाइस, स्टीन्क व शील्ड-बग, आसासीन बग, लेस बग, खटमल, चिन्च-बग तथा सभी प्रकार के जलीय बग। नर सिकाडा, एक ही रफ्तार से तेज आवाज मादा को आकर्षित करने के लिये पैदा करता है जो जंगल में गुजरने वाले प्रत्येक आदमी का ध्यान अपनी तरफ खींचती है।

हैमिप्टेरा बग छोटे आकार से लेकर मध्यम आकार तक के होते हैं। इन कीड़ों के मुख भाग वेधक व चूषक प्रकार के होते हैं। इनके पंख दो जोड़ा होते हैं (एक जोड़ा नर सिकाडा में)। बग्स खुली जगहों में मिलते हैं—फसल वाले खेत, बगीचा, लकड़ी के लट्टों में, पौधों की क्यारी तथा ऑर्किड्स के ऊपर। ये साधारणतः पौधों को ही खाते हैं व भूमि निवासी होते हैं। लेकिन कुछ बग्स जल अथवा अर्ध-जलीय निवासी होते हैं। जलीय बग्स नदी या तालाबों में तैरते हुये देखे जाते हैं। कुछ बग्स परभक्षी होते हैं जो कि नाशक कीड़ों की संख्या को नियंत्रण करने के काम में आते हैं। कुछ कीड़े भिन्न भिन्न प्रकार के वाइरस रोगों के रोगाणु-वाहक होते हैं। कुछ दूसरे बग्स जैसे खटमल, ट्राइप्टोमोडी व मोलिकटीनीडी रक्त को चूसते हैं। लेकिन अधिकतर फसलों व अन्य पौधों के रस ही चूसते हैं। ये बग्स कृषि अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्व के हैं तथा ये हमारे देश की कृषि अर्थ-व्यवस्था में बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। कुछ बग्स बहुत ही ध्वंसक हैं, जैसे लीफ-हॉपर, (साइकेडेलिड्स), ह्वाइट-फ्लाय (अलेयरोडीडी), प्लान्ट-लाइस (एफीडी) तथा स्केल-इन्सेक्टस (कोकसिड्स)। कुछ दूसरे बग्स आसाधारण बहुरूपी होते हैं।

हालाँकि अधिकतर भूवासी हैमिप्टेरा कृषि फसल व सब्जियों के पौधों के लिये हानिकारक हैं, फिर भी कुछ कोकसिड कीड़े मनुष्यों के लिये लाभदायक हैं, क्योंकि इन कीड़ों से या

तो हमें भारतीय वाणिज्य लाख, अथवा रंग पदार्थ (जैसे किरमिजी और करमीज) प्राप्त होते हैं।

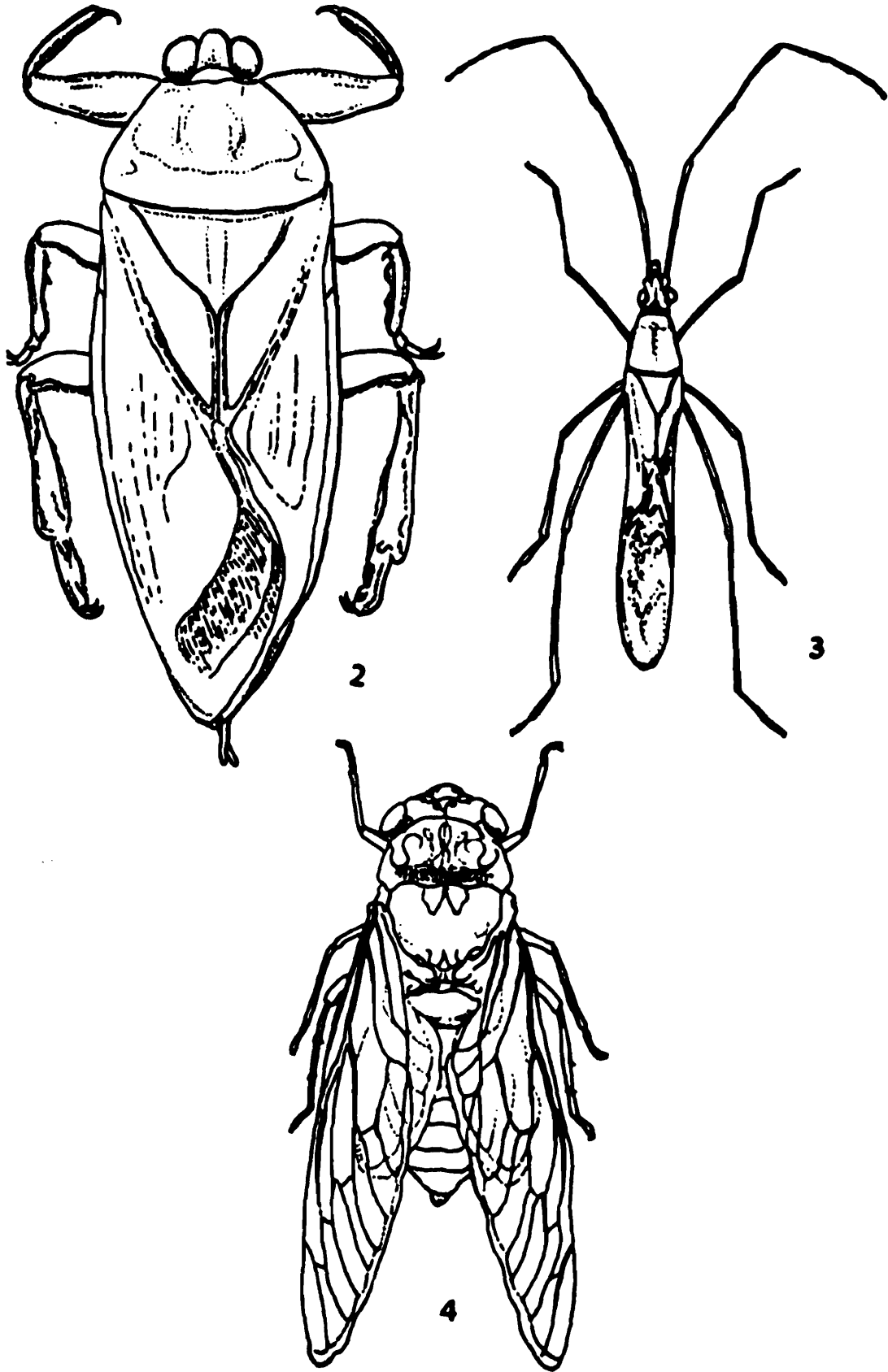


चित्र—1. एफिड (पीधों का लाइस)

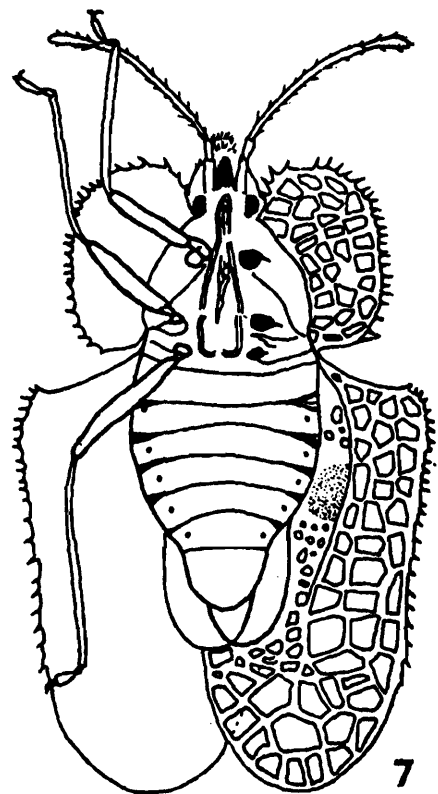
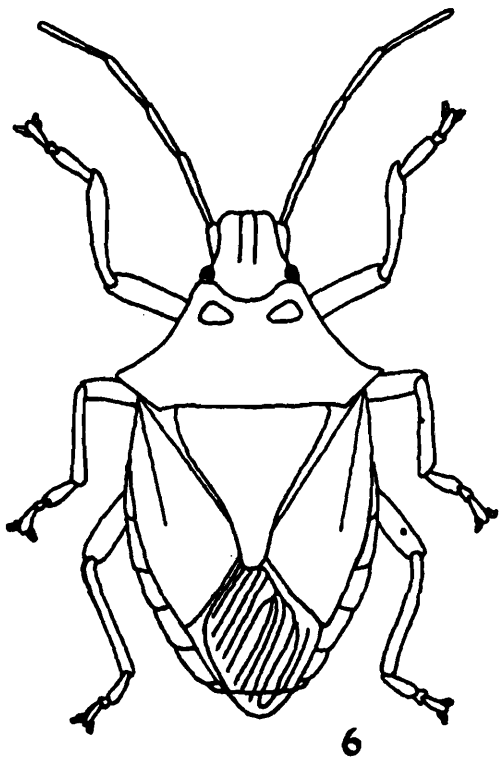
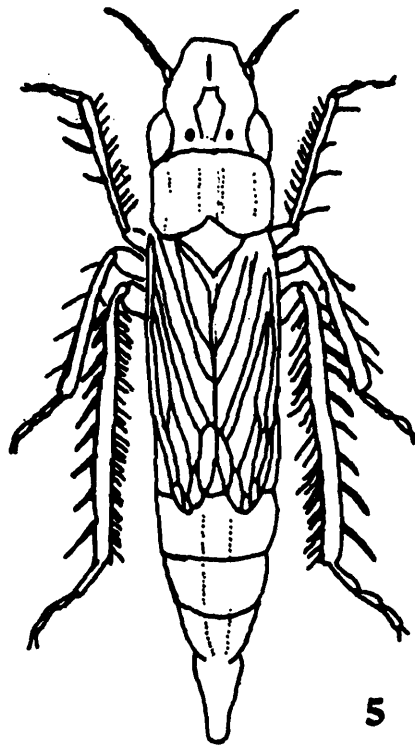
जलवासी हैमिप्टेरा भिन्न-भिन्न आकार वाले होते हैं (1.5 मि.मी. से लेकर 110.00 मि.मी. तक)। ये जलवासी कीड़े भूवासी कीड़ों से शारीरिक बनावट व भोजन करने के स्वभाव में भिन्न होते हैं। कुछ कीड़े तो पूर्ण जलवासी होते हैं, तथा कुछ अर्ध जलवासी होते हैं जो केवल पानी के किनारे ही वास करते हैं। जलवासी बग्स प्राणिप्लवक और दूसरे जलवासी सूक्ष्म प्राणि समूह पर प्रभावशाली परभक्षी होते हैं। इस प्रकार ये कीड़े प्रकृति में जलीय पारितंत्र बनाने में एक बहुत खास भूमिका निभाते हैं, जबकि दूसरे जलवासी बग्स मछलियों व मेंढकों के बच्चों को खाते हैं जिससे मछली पालन में भारी नुकसान उठाना पड़ता है। भीमकाय जलवासी बग्स प्रकृति में परभक्षी हैं और ये मेंढक व छोटी चिड़ियों को भी मार देते हैं (बैलोस्टोमेंटीडी)। जलवासी बग्स में स्फीरोडैमा पितृत्व दिखाते हैं जिसमें नर मादा बग के अण्डों को अपनी पीठ पर ढोते हैं। जलवासी बग्स भी जल में ऊर्जा-रूपान्तर के लिये एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारतवर्ष में हैमिप्टेरा की करीब 6,500 जातियाँ मिलती हैं, जबकि संसार में 80,000 जातियाँ हैं। इनमें 63 परिवार केवल भूवासी हैं जबकि 18 जलवासी। भारत में करीब-करीब, 230 पूर्ण व अर्ध जलवासी हैं और 6,270 जातियाँ भूवासी हैं।

आरम्भ में इस वर्ग के ऊपर प्रसिद्ध पुस्तक श्रृंखला 'फौना आफ ब्रिटिश इंडिया' के सात खंड प्रकाशित हो चुके हैं (डिस्टेंट, 1902-1918)। प्रकाशित सामग्री अवलोकन से पता चलता है कि उत्तरी पूर्वी हिमालय के हैमिप्टेरा प्राणि-समूह में बहुत विविधता पाई जाती है। इसी



चित्र 2. बेलोस्टोमा (विशाल जल-बग); 3. कोरिड (गन्धी-बग); 4. सिक्काडा।



चित्र 5. सिकाडेलिड (लीफहापर); 6. पेन्टाटोमिड (शील्ड बग); 7. टिन्जिड (लेस बग)।

प्रकार की घटना पच्छिमी हिमालय के बग्स में भी पाई जाती हैं, जहाँ वनस्पति भौगोलिक क्षेत्र देखे जाते हैं—जैसे उष्ण कटिबंधी, अर्ध-उष्णकटिबंधी, शीतोष्ण कटिबंध व ठंढ पर्वतीय क्षेत्र। इनमें से अर्धउष्ण कटिबंध क्षेत्र में अधिक हैमिप्टेरा प्राणी समूह मिलता है। यह भी देखा जाता है कि अधिकतर हैमिप्टेरा जो इस क्षेत्र से उपर की तरफ मिलता है, वह तिब्बत, अफगानिस्तान, पाकिस्तान व मध्य पूर्वी प्राणि-समूह से मिलता-जुलता है।

दूसरी तरफ भारतीय प्रायद्वीपीय व विन्ध्य पर्वतमाला तथा गंगा-यमुना का मैदानी भाग में कम हैमिप्टेरा प्राणि-समूह मिलता है (करीब $\frac{1}{6}$ भाग पूरे भारत के प्राणि-समूह का)। कुछ हैमिप्टेरा जैसे प्लांट-लाइस अपने जीवन चक्र में अनूठी विविधता दिखाती हैं। फिर भी स्पीशीज-विविधता और विशेष क्षेत्रिता (मूल रूप से भारत में खोजी गई व पाये जाने वाली) कुछ हैमिप्टेरा परिवारों को जिनका आर्थिक महत्व है, नीचे लिखी तालिका में दिखाया गया है।

तालिका-1: कुछ भारतीय हैमिप्टेरा में जाति विविधता व विशेष क्षेत्रिता

परिवार	जातियों की पूर्ण संख्या	क्षेत्रीय जातियों की संख्या	प्रतिशत
होमोप्टेरा			
एफीडीडी	750	430	57
सिसिडेलीडी	680	306	45
कोक्कोईडिया	677	271	40
मैमब्रेसीडी	200	138	69
साइकीडी	120	69	58
हेटैरोप्टेरा			
लाईगीडी	260	130	50
वाटर बग्स	238	43	19

निष्कर्ष

हैमिप्टेरा वर्ग के कीड़े भारत में सामग्री व विशेषज्ञों के अभाव में ज्यादा अध्ययन नहीं किये जा सके हैं (केवल कुछ परिवार को छोड़कर)। प्रत्यक्ष कारणोंवश भारत के कुछ क्षेत्रों, जैसे रेगिस्तान, की विशेष गवेषणा की आवश्यकता है। इसमें खासतौर से हिमालय पारितंत्र और पूर्वी तथा पच्छिमी समुद्र किनारे के क्षेत्र भी लिये जाने चाहिये। नतीजन ऐसे क्षेत्रों से और

अधिक जातियों का वर्णन होगा। इससे हमें कृषि क्षेत्र में काफी सहायता मिलेगी। हैमिप्टेरा की जैव विविधता का उपयुक्त ज्ञान भी बहुत जरूरी है जिससे हम होस्ट प्लान्ट- पैस्ट-पैरासाइट-प्रीडेटर सम्बन्ध समझ सकते हैं।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि हमारा ज्ञान भारत की नम भूमि पर पाये जाने वाले हैमिप्टेरा प्राणि-समूह के ऊपर बहुत कम है। इस प्रकार के ज्ञान को जानने के लिये हमें अपना अध्ययन को अधिक से अधिक तीव्र करना होगा जिसके लिये हमें नमभूमि का व्यापक व गहन सर्वेक्षण करना होगा। इसके अलावा हमें लाभदायक बग्स जैसे लाख बनाने वाले कीड़े को पालना होगा जो भारत की अर्थव्यवस्था से सीधे जुड़े हुये हैं क्योंकि अधिकतर हैमिप्टेरा वनस्पति को खाने वाले ही होते हैं और बहुत सी स्थिति में ये होस्ट-विशिष्ट भी होते हैं, अतः ऐसे पौधों की रक्षा करने के ऊपर भी ध्यान देना होगा ताकि प्रारिस्थितिक सामंजस्य बनाया जा सके।

आभार प्रदर्शन

मैं भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण विभाग कलकत्ता के निदेशक तथा डा० आर० के० वाष्णेय का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस लेख को लिखने के लिये प्रेरित किया, तथा इसकी गलतियों को भी ठीक किया व समय समय पर अच्छी सलाह देते रहे।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय तितलियाँ

राजेन्द्र कुमार वाष्णीय

**प्राणि-भवन, भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,
कलकत्ता**

कीड़ों के लेपिडोप्टेरा वर्ग में तितली (बटरफ्लाई) तथा शलभ (मौथ) आते हैं। तितलियाँ दिन में उड़ती हैं और यहाँ-वहाँ दिखती हैं। रात में उड़ने या प्रकाश पर आने वाले तितली जैसे कीड़ों को शलभ या परवाना कहते हैं। अलबत्ता तितलियों की भी एक-दो जातियाँ रात के समय बिजली पर आ जाती हैं।

कीड़ों में तितलियों से ज्यादा कोई सुन्दर नहीं। वन, उपवन, उद्यानों में रंग बिरंगी यहाँ-वहाँ उड़ती तितलियाँ फूलों का रस पीती तितलियाँ, कोई धीमी तो कोई तेज गति से यहाँ-वहाँ मँडराती तितलियाँ—यह सामान्य दृश्य है। अपनी विशाल भूमि और विभिन्न पारिस्थितिकी के कारण भारत की तितलियाँ विश्व में किसी से कम नहीं।

तितली पूरी तरह हानिरहित कीड़ा है। अपनी किसी भी अवस्था में कोई भी तितली न कोई बीमारी फैलाती है, न डंक मारती है, न हानिकारक रस निकालती है। उल्टे तितली तो मनुष्य का एक बहुत बड़ा उपकार करती है— वह है पराग-सेचन। विभिन्न फसलों, बागों और उद्यानों में एक फूल से दूसरे फूल पर आते-जाते वह पौधों का पराग सेचन करती जाती हैं, जिससे कि पौधों की संख्या बढ़ती है।

भारत की इन अत्यन्त सुन्दर तितलियों की गाथा रोचक है, ज्ञान वर्द्धक भी। कीड़ों में संख्या की दृष्टि से लेपिडोप्टेरा दूसरा सबसे बड़ा वर्ग है। भारत में इस की जातियों की संख्या लगभग 13000 है और केवल तितलियों की जातियों की संख्या लगभग 1500 है।

भारतीय तितलियों पर पुस्तकें

भारत में तितलियाँ पकड़ कर अध्ययन करके उनका वर्णन प्रकाशित करने का इतिहास बहुत पुराना है। संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं को छोड़ भी दें, तो अंग्रेजी में ही करीब ढाई

सौ वर्ष से वैज्ञानिक भाषा में लिखे प्रकाशन उपलब्ध हैं। लीनियस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिस्टेमा नेचुरी' के दसवें संस्करण में, जो 1758 में प्रकाशित हुआ था, तितलियों को भी सम्मिलित किया था जिनमें से कुछ भारत में भी मिलती थीं। बाद में कई अन्य विदेशी लेखकों ने यहाँ की तितलियों का अध्ययन किया। सबसे पहली बड़ी पुस्तक सन 1883 से सन 1890 के बीच तीन भागों में प्रकाशित हुई। उसके लेखक थे मार्शल एवं डी निशेविले तथा नाम था 'बटरफ्लाइज आफ इण्डिया, बर्मा एन्ड सीलोन'। अब इस पुस्तक का सन 1979 में पुनमुद्रित संस्करण मिलता है।

इवान्स (1932) ने अपनी पुस्तक में जातियों का भेद दिखानेवाली पहचान की 'कुँजियाँ' प्रकाशित कीं, जो बहुत प्रशंसा योग्य हैं। साथ ही उन्होंने पहली बार भारतीय उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली जातियों की संख्या बताई, जो तालिका—1 में उल्लिखित है।

भारतीय तितलियों पर लिखी सबसे मशहूर पुस्तक विन्टर-ब्लिथ की 'बटरफ्लाइज आफ इण्डियन रीजन' है, जिसे बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी ने 1957 में प्रकाशित किया था। इस पुस्तक में दिये गये तितलियों के नामों का संशोधित रूप मैं ने तीन शोध-पत्रों में 1980 से 1990 तक सोसाइटी के 'जरनल' में प्रकाशित किया है।

हाल की अनेक प्रकाशित पुस्तकों में से, गे, केहिमकर एवं पुनीता (1992) की लिखी 'कामन बटरफ्लाइज आफ इण्डिया' मुख्य है, और सस्ती भी। लेकिन इसमें थोड़ी सी जातियों को ही शामिल किया गया है। तितलियों पर अंग्रेजी में कई अन्य लेखकों की पुस्तकें भी विभिन्न क्षेत्रों के लिए प्रकाशित हुई हैं।

वर्गीकरण एवं जातियाँ

भारत में पाई जाने वाली तितलियाँ प्राणि-विज्ञान के अनुसार 9 परिवारों की हैं। इनमें से पहले 8 परिवार या कुल तो 'पेपीलियोनोइडिया' उच्चकुल के अन्तर्गत आते हैं; और अन्तिम परिवार 'हेस्पेरोइडिया' उच्चकुल के अधीन है। तालिका—1 में इन परिवारों के नाम तथा भारतीय उपमहाद्वीप में उनकी पाई जाने वाली जातियों की संख्या दर्शाई गई है, जिसे इवान्स (1932) से लिया गया है और बाद में यही संख्या तालबोट ने 1939 में तथा विन्टरब्लिथ (1957) ने भी लिखी है।

1932 से अब तक तो इस संख्या में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। जंगलों के कटने तथा तितलियों के वासस्थानों के नष्ट होने से कितनी जातियाँ कम हो गई हैं, यह ठीक पता नहीं। कुछ नई जातियों का भी पता लगा है। इस तरह यह सही आकलन होना बाकी है कि तितलियों की इस समय कितनी जातियाँ भारत तथा भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य देशों में पाई जाती हैं?

तालिका—1. भारतीय उपमहाद्वीप में तितलियों की जातियाँ

परिवार	जातियों की संख्या
1. पेपीलियोनीडी	94
2. पीएरिडी	99
3. डेनाइडी	38
4. सेटाइरीडी	210
5. निम्फेलिडी	232
6. लिबीथिडी	5
7. रायोडीनिडी	25
8. लाइसीनिडी	433
9. हेस्पेराइडी	307
	1443

तितलियों का जीवन-चक्र

तितलियों की मादा अंडे देती हैं। यह अंडे बहुत छोटे होते हैं और अधिकतर उनके खाद्य-पौधों के ऊपर ही दिये जाते हैं। कुछ अंडे एक-एक अलग, तो कुछ झुण्ड में। अंडों के आकार भी अलग अलग प्रकार के होते हैं—गोल, अण्डाकार या चपटे। कुछ के रंग अलग तो कुछ डिजाइन वाले।

अंडों से बच्चे निकलते हैं, जिन्हें लार्वा या कैटरपिलर कहते हैं। ये लार्वा खाते हैं अपने भोज्य पौधों की पत्तियाँ। खाना खाकर ये बड़े होते जाते हैं और इस तरह चार-पाँच बार केंचुल छोड़ते हैं। इनके लगभग 8 जोड़े पैर होते हैं, जिनसे ये एक जगह से दूसरी जगह चलकर जा सकते हैं। कैटरपिलर का शरीर सिंगार की शक्ल का होता है, जिसमें एक ओर सिर और दूसरी ओर मलद्वार होता है। कैटरपिलर खुद तो पत्तियाँ खाते हैं, पर बहुत से कैटरपिलरों को चिड़िया, छिपकली, मकड़ी आदि अपना भोजन बना लेते हैं।

लार्वा जब खाना बन्द कर देता है तब अपने पूरे बड़े आकार में आ चुका होता है। अब इसमें अभूतपूर्व शारीरिक परिवर्तन होते हैं और यह एक गठरी नुमा बगैर सिर-पैर वाला प्यूपा या क्राइसैलिस बन जाता है। प्यूपा लार्वा के मुकाबिले छोटा होता है। तितलियों के प्यूपा के ऊपर शलभों के प्यूपा की तरह सफेद झिल्लीदार रेशों का कोकून नहीं चढ़ा होता। प्यूपा कुछ खाता-पीता नहीं है, बस पौधे पर लटका रहता है। कुछ दिनों बाद प्यूपा के अन्दर से वयस्क तितली निकलती है।

वयस्क तितली नर होती है अथवा मादा। उसका शरीर अन्य कीड़ों की भाँति ही होता

है— सिर, थोरेक्स तथा एब्डोमन में विभाजित। थोरेक्स पर तीन जोड़े पैर होते हैं, जो कुछ तितली परिवारों में अल्पविकसित ही रहते हैं और चलने के काम नहीं आते। लेकिन हर तितली में दो जोड़े बड़े पंख होते हैं जो उड़ने के काम आते हैं। ये पंख तितलीके (तथा शलभों के भी) विशेष अंग हैं। बड़े आकार के रंग बिरंगे पंख ही तितली को उसका रूप देते हैं। ये पंख बहुत से छोटे-छोटे शल्क (स्केल) से ढके रहते हैं, जो स्वयं विभिन्न रंगों के होते हैं और तितली के पंख पर एक नियमित डिजाइन बना देते हैं। पंख की ऊपर की डिजाइन तथा नीचे की डिजाइन दोनों भिन्न हो सकती हैं।

तितलियों में प्रजनन नर और मादा के मिलन से होता है। वे अपने शरीर के अन्तिम भाग में स्थित जननांगों को मिलाते हैं और फिर कुछ समय बाद गर्भवती मादा नये अण्डे देती है। कुछ लोग मानते हैं कि तितली केवल एक दिन ही जिन्दा रहती है। यह सही नहीं है। एक तितली का अण्डे से वयस्क तक का पूरा जीवन दो सप्ताह से लेकर कई महीनों तक का हो सकता है। एकाध जाति तो एक साल से ज्यादा भी खींच लेती हैं। वैसे अलग-अलग जाति में तितली की जीवन अवधि भी अलग-अलग है।

तितलियों में विविधता

तितलियों में कई प्रकार की विविधता पाई जाती है। कुल, वंश और जातियों का रंगरूप, जीवनचर्या तथा भोज्य-पौधे अलग-अलग होते हैं। लेकिन इन विभिन्नताओं के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी विविधता हैं जो अन्य कीड़ों में सामान्यतः नहीं होतीं।

कुछ तितलियों के वयस्क नर तथा मादा का रूप रंग इतना विभिन्न होता है कि देखने में वे एक जाति के नहीं लगते। इसे लिंग विविधता कह सकते हैं।

तितलियों के जीवन पर ऋतु तथा मौसम का प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो जाता है। कुछ जातियों में ऋतु परिवर्तन के साथ ही तितली के पंखों पर रंग तथा डिजाइन में कुछ परिवर्तन प्रकट हो जाते हैं। जैसे सेटाइरीडी परिवार के कुछ वंशों में सूखे मौसम (गर्मी) में पंखों के नीचे की डिजाइन हल्की पीली सूखी पत्ती जैसी हो जाती है। जबकि उसी तितली में वर्षा ऋतु आने पर उन पंखों पर गहरे रंग आ जाते हैं और नीचे की तरफ कई छोटी-छोटी गोलाकार आँखें प्रकट हो जाती हैं। इन्हें मौसम की विविधता कह सकते हैं।

भौगोलिक विविधता तो काफी बहुतायत से देखने को मिलती है। तितलियों की कई पहाड़ी जातियाँ या उपजातियाँ मैदानों में पाये जाने वाली जाति/उपजाति से देखने में अलग प्रकार की लगती है। इस तरह कई जातियों में स्थानीय विभिन्नता साफ नजर आती है। कई वैज्ञानिक भौगोलिक विभिन्नता के आधार पर अलग अलग उपजाति निर्धारित करते हैं।

जातियों में ह्रास तथा संरक्षण

हाल के दशकों में विकास के नाम पर वनों को अंधाधुंध काटा जा रहा है। इसके अतिरिक्त चारों तरफ प्रदूषण बढ़ रहा है। खेतों तथा बागानों में कीटनाशक रसायनों का बहुत हुआ उपयोग पर्यावरण के लिये दुष्प्रभाव पैदा कर रहा है। इन सबसे तितलियों के जीवन को भी खतरे बढ़ गये हैं। कुछ जातियाँ दुर्लभ हो गई हैं और कुछ दुर्लभतम। इसलिये तितलियों का संरक्षण आवश्यक है। क्यों कि न केवल वे स्वयं कई जीव-जन्तुओं का भोजन हैं और इस कारण "भोजन-श्रृंखला" का एक भाग हैं, वरन उनके द्वारा पराग-सेचन जैसी महत्वपूर्ण क्रिया भी सम्पन्न होती है। अतएव तितलियों के नष्ट होने का बहुत गम्भीर परिणाम होगा। यह भूलना नहीं है कि मनुष्य के लिये आवश्यक पौधों और फसलों के सेचन के लिये जो भी कीड़े मुख्य हैं उनमें तितलियाँ सर्वोपरि हैं।

इनके संरक्षण के लिये सर्वप्रथम इनके वासस्थान तथा इनके भोज्य-पौधों को बनाये रखना जरूरी है। अर्थात् जंगलों, बागानों तथा खेती की भूमि को 'नगरीकरण' और 'औद्योगीकरण' के नाम पर बलिदान नहीं होने देना है। भारत की अनेक तितली जातियाँ वाइल्ड लाइफ (प्रोटेक्शन) एक्ट की संकटापन्न सूची (सिडयूल्स) में आ गई हैं। व्यापार के लिये भी तितलियों के उपयोग पर रोक लग दी गई है। तितलियों की किसी भी अवस्था के निर्यात पर रोक लगी हुई है। इन सभी के बारे में कानूनी नियम बनाये गये हैं।

संरक्षण की भावना को फैलाना आवश्यक है। कुछ देशों में तितलियों का प्रजनन करके ऐसे 'तितली घर' या "तितली फार्म" खोले गये हैं, जहाँ पर जनता को तितलियों सम्बन्धी जानकारी मिलती है।

अन्य रोचक तथ्य

भारतीय तितलियों के बारे में कुछ अन्य तथ्य बड़े ज्ञान वर्द्धक हैं। उनका संकलन इस प्रकार है:

सबसे बड़ी तितली

भारत में सबसे बड़ी तितली ट्रौड्डस वंश की हैं। इनकी 5 जातियाँ यहाँ मिलती हैं। दक्षिण भारत में पाई जाने वाली ट्रौड्डस मिनीस के पंख फैलाने पर साढ़े सात इंच (19 से.मी.) होता है। यह फैलाव भारत की कुछ चिड़ियों के पंखों के फैलाव से भी बड़ा है।

सबसे छोटी तितली

भारत की सबसे छोटी तितली जाति का नाम फ्रेयेरिया ट्राकिलस पुतली है। इसके दोनों पंखों का फैलाव केवल 1.5 से. मी. होता है।

सबसे सुन्दर तितली

सुन्दरता तो मनुष्य की आँख में है। कौन किसे सुन्दर माने किसे नहीं, इस पर मतभेद हो सकता है। विन्टर-ब्लिथ ने सात देशों के 11 स्त्री-पुरुषों को बिठाकर उन्हें भारत की तितलियाँ दिखाई और उनसे सबसे सुन्दर तितली छाँटने को कहा, तो अंकानुसार जो परिणाम मिले वह तालिका-2 में दिये गये हैं।

दुनिया की सबसे सुन्दर तितली किसे माना जाय, यह निर्णय करना तो दुविधा की बात है। परन्तु हमें यह जानकर खुशी है कि कुछ वैज्ञानिक भारत में पाई जाने वाली ग्लोरियस बेगम तितली (अगाटासा केलीडोनिया) को भी सबसे सुन्दर तितली मानते हैं।

तालिका—2. भारत की सबसे सुन्दर तितली

स्थान	नाम	अंक प्राप्त
प्रथम	ब्लू पीकोक (पेपीलियो वंश, कई जातियाँ जैसे पोलिक्टर, आर्कटयूरस, पेरिस तथा कृष्णा)	48
द्वितीय	कैसरे हिन्द (टीनोपेल्लस इम्पीरियेलिस)	35
तृतीय	बैन्डेड पीकोक (पेपीलियो क्राइनो तथा पेपीलियो बुद्धा)	23.5
चतुर्थ	आरंज ओकलीफ (केलिमा इनेकस)	18
पंचम	बर्ड विंग (ट्रोइडस वंश)	18

सबसे भद्दी तितली

भारत में पाई जाने वाली भद्दी तितलियों में सबसे ऊपर यलो कोस्टर (परेबा आइसोरिया) तथा मौथ बटरफ्लाई (लाइफायरा ब्रासोलिस) का नाम है।

देवी देवताओं के नाम वाली तितली

यह आश्चर्यजनक है कि कई विदेशी वैज्ञानिकों ने आज से लगभग सौ-दो सौ वर्ष पहले जब कुछ नई तितली जातियों का पता लगाया तो उनका नामकरण हिन्दू देवी या देवताओं के नाम पर कर दिया। ऐसे कुछ उदाहरण तालिका-3 में दिये गये हैं।

तितलियों के वैज्ञानिक नामों के अतिरिक्त सामान्य अंग्रेजी नाम भी रखे गये हैं। ये नाम सुविधाजनक हैं। भारत के परिपेक्ष्य में ऐसे कई सामान्य नाम (कामन नेम) हैं जो रोचक हैं, जैसे राजा, नवाब, बेगम, खलीफा, एम्परर (सम्राट), क्रो (कौआ), पीकोक (मोर), जे (नीलकण्ठ), कैसरे हिन्द, भूटान ग्लोरी, कोहिनूर, रोज (गुलाब), टाइगर (बाघ), बबूल ब्लू आदि। निःसन्देह कई नाम भौगोलिक क्षेत्र या अन्य गुणों पर भी आधारित हैं। सन 1983 में मैने ऐसे सभी नामों की एक बृहद सूची प्रकाशित की है।

तालिका-3. देवी देवताओं के नाम वाली तितलियाँ

अंग्रेजी सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम
1. टेल लैस बुश ब्लू	—
2. नादर जंगल क्वीन	—
3. याम फ्लाई	—
4. चेस्टनट टाइगर	—
5. सिंगल सिल्वर स्ट्राइप	—
6. खाकी सिल्वर लाइन	—
7. स्ट्रिपेटेड सैटायर	—
8. गोल्डेन सैफायर	—
9. प्लेन सेलर	—
10. ग्रेट यलो सेलर	—
11. डबलडे'स लैपर्ड	—
12. ब्लू ड्यूक	—
13. पोजी	—
14. चाइनीज बुश ब्राउन	—
15. पाउडर बैरन	—
	पंचाला गनेशा
	स्टिकोपेलमा कामदेवा
	वंश यशोदा
	डेप्पेस सीता
	लेखे रामदेवा
	स्विनडासिस रुक्मिणी
	आलोसिरा सरस्वती
	हेलिओपेरस कृष्ण
	नेप्टिस कर्त्तिका
	नेप्टिस राधा
	न्यूरोसिग्मा शिवा
	यूकेलिडा दुर्गा
	वंश हनुमन्
	माइकालेसिस गीतम्
	यूकेलिडा केला

‘बटरफ्लाई’ नाम क्यों ?

तितली को अंग्रेजी में बटरफ्लाई कहते हैं। बटर माने मक्खन। फ्लाई तो कीड़ों को सामान्यतः कहते ही हैं। जब मक्खन जैसे पंख वाली तितली मिली, तो नाम पड़ गया—बटरफ्लाई। ऐसा माना जाता है कि कामन ब्लिमस्टोन तितली (गोपेटेरिक्स रामनी) के नर के मक्खनी हल्के पीले रंग के पंखों के कारण यह नाम पड़ा। यह तितली उत्तर-पश्चिमी हिमालय में 5000 फुट ऊँचाई के ऊपर तथा उत्तर-पूर्वी भारत और उत्तरी म्यांमार के पहाड़ों में मिलती है।

भविष्य में तितलियों पर कार्य

बहुत सी तितली जातियों के जीवन-चक्र अवधि का ठीक पता नहीं है। यह अवधि प्रसु के अनुसार या स्थान के अनुसार बदलती है या नहीं, यह भी पता नहीं। विशेषतः बहुत सी तितलियों के भोज्य-पौधों का भी ज्ञान नहीं है। उनके प्रजनन तथा संरक्षण के लिये यह जानकारी आवश्यक है। नई जातियों या उपजातियों का पता लगना तो अब कुछ कठिन है, क्यों कि वर्षों के अध्ययन से सभी जातियों उपजातियों का देश-प्रदेश के विभिन्न भागों का

सर्वेक्षण करके पता लगाया जा चुका है। किन्तु उनके भोज्य-पौधों का पूरा पता नहीं लगा है। साथ ही उनके पराजीवी कीड़ों के बारे में भी जानकारी कम है। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण काम है कि लुप्त होती हुई जातियों को बचाए रखना है और इसके लिए अधिक से अधिक उपाय करना। तितलियों के पराग सेचन सम्बन्धित अध्ययन भी विस्तार से होने हैं, कि कौन जाति की तितली किस फसल से जुड़ी हुई है, किस मौसम में, कितने समय तक आदि।

संदर्भ

- इवान्स, डब्लू. एच. 1932. *दि आइडेंटिफिकेशन आफ इन्डियन बटरफ्लाइज*; द्वितीय संस्करण। बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी द्वारा प्रकाशित : 454 पृष्ठ.
- गे, थामस, इजाक डेविड केहिमकर एवं जगदीश चन्द्र पुनीता, 1992. *कामन बटरफ्लाइज आफ इन्डिया*। वर्ल्डवाइड फंड फार नेचर—इन्डिया द्वारा प्रकाशित : 67 पृष्ठ.
- वाष्णैय, आर. के. 1980, 1985, 1990. रिवाइज्ड नोमेनक्लेचर फार टेक्सा इन विन्टरब्लिथ्स बुक आन दि बटरफ्लाइज आफ इन्डियन रीजन, पार्ट I-III. *जरनल आफ बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी*, 76 (1) : 33-40; 82(3): 309-321; 87 (1): 53-61.
- वाष्णैय, आर. के. 1983. इन्डेक्स रोपेलोसिरा इन्डीका —पार्ट 2. कामन नेम्स आफ बटरफ्लाइज फ्रॉम इन्डिया एन्ड नेबरिंग कन्ट्रीज. *रिकार्ड आफ जूलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया, अकेजनल पेपर नं० 47* : 49 पृष्ठ.
- विन्टर-ब्लिथ, एम. ए., 1957. *बटरफ्लाइज आफ दि इन्डियन रीजन*। बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी द्वारा प्रकाशित : 523 पृष्ठ.

वार्षणैय : ढारतीय तितलियाँ

प्लेट -2



1. कैसरे-हिन्द (नर) (टीनोपेल्यस डुप्पीरियेलिस)



2. कैसरे-हिन्द (मादा) (टीनोपेल्यस डुप्पीरियेलिस)



3. कोषन बडे धिंग (गेडडस हेलना)



4. किममन रोज (पेक्लियोप्टा हैक्टर)



5. भूटान ग्लोरी (भूटानिटिस लिडरडेली)



6. कौमन पीकौक (पेपिलियो पोलीक्टर)



7. कॉमन मॉर्मोन (पॉपलियम पॉल्यटस)



8. ऑरेंज ओकलीफ (कल्लिमा इनेकस)



9. ऑरेंज ओकलीफ (नीच) (कल्लिमा इनेकस)



10. रेड लेसविंग (केशोमिया बिक्लिन)



11. क्लिप (पार्थेनोम मित्त्रिया)



12. लैपर्ड (न्यूरोसिग्मा शिवा)

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

जैविक विविधता चींटियों के संदर्भ में

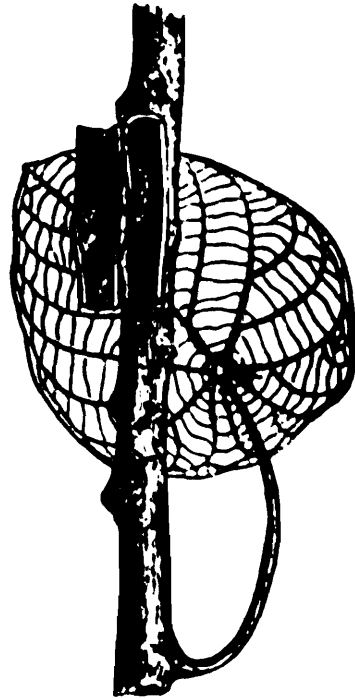
आर० एन० तिवारी

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता-700 053

भूमिका

भारत एक महान देश है। यह एक ऐसा देश है, जहाँ हर प्रकार की ऋतुएँ पायी जाती हैं। फलतः यहाँ की प्राकृतिक संपदा उन्नत है। ऋतु परिवर्तन के कारण प्रकृति के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इसी प्राकृतिक विभिन्नता के फलस्वरूप यहाँ की जैविक विविधता भी उल्लेखनीय है। रायो-डि जिनेरियो (ब्राजील) 1992 में हुए जैविक विविधता के शिखर सम्मेलन में विश्व के प्रमुख जैव-विविधता सम्पन्न क्षेत्रों में भारतवर्ष को भी जैविक विविधता का एक प्रधान क्षेत्र घोषित किया गया। वैसे तो, भारत में, घने जंगलों और अनुकूल वातावरण के कारण, प्रत्येक जीव जंतु सहजता से पनपते हैं, पर कुछ विशेष कारणों से, पर्यावरण स्थिति इतनी बिगड़ती जा रही है, कि अगर पर्यावरण के इस ह्रास को संरक्षण नहीं दिया गया, तो इस देश की समृद्ध जैविक विविधता को बनाये रखना, कठिन ही नहीं, अपितु असंभव हो जाएगा।

प्रस्तुत लेख, कीट-पतंग जगत के 'हाइमेनोप्टेरा' वर्ग की विविधता को प्रस्तुत करने का एक प्रयास है, विशेषकर चींटियों की। फार्मिसीडी परिवार, जिसमें चींटियाँ आती हैं, में वर्गीकरण, 1903 में कुछ विदेशी विशेषज्ञों द्वारा प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर



चित्र 1: केम्पोनोटस क्वड्रीसेप्स चींटियाँ एन्डोस्यरमस फार्मिकेरम के तने में अपना आवास बनाये हुए।

1970 तक, इस विषय पर अध्ययन नगण्य रहा। हाल के वर्षों में, इस परिवार के अध्ययन पर विशेष ध्यान आकृष्ट हुआ है।

विश्व में लगभग 10.7 लाख जीवों की जातियों का वर्णन प्रकाशित किया जा चुका है। अनुमान किया जाता है कि विश्व में जंतुओं की जातियों की संख्या 50 लाख से 1000 लाख तक संभव हो सकती है। प्रायोगिक गवेषकों का अनुमान है कि इन जंतु-जातियों की संख्या 120.5 लाख हो सकती है।



चित्र 2: एकेन्थोमिओप्स क्लेविजर जाति की मजदूर चींटियाँ कोकुन्स के साथ।

निम्नलिखित तालिका-1 में जीव वर्ग की अब तक प्रकाशित जातियों की संख्या एवं इनके अनुमानिक जातियों की संख्या को दिग्दर्शित करने का प्रयास है। इस आँकड़े को सूचीबद्ध करने में जीव वैज्ञानिकों की सलाह ली गयी है तथा प्रकाशित गवेषणाओं को 'जुलाजिकल रेकार्ड्स' से उद्धृत किया गया है। इन आँकड़ों से यह प्रकट होता है कि विश्व में कीट पतंगों की संख्या सर्वोपरि है। इसके बाद आने वाले जीव वर्गों में एराकनिड, मोलस्का एवं वर्टीब्रेटा (कशेरुकी) हैं।

अगर कीट-पतंगों की आनुमानिक संख्या और प्रकाशित जातियों की संख्या को देखें तो ज्ञात होता है कि विश्व के कीट-पतंगों का सिर्फ 19 प्रतिशत ही अभी तक प्रकाशित हो पाए हैं। अतः बाकी 81 प्रतिशत कीटों की जातियों को खोजने का क्रम जारी रखना ही उचित होगा और इस प्रचेष्टा में गवेषकों की भूमिका सराहनीय होगी।

तालिका -1: विश्व के विभिन्न जीव-वर्गों की जातियों का तुलनात्मक विवरण

जीव वर्ग	प्रकाशित जातियों की संख्या	अनुमानिक जातियाँ	
		सर्वोच्च संख्या	कार्यकर संख्या
वाइरस	5,000	500,000 *	500,000
बैक्टीरिया	4,000	3,000,000 *	400,000
फंजाई (फफुन्द)	70,000	1,500,000 *	400,000
एल्गी (काई)	40,000	10,000,000	200,000
एम्ब्राफाइट	250,000	500,000	300,000
प्रोटोजोवा	40,000	100,000 *	200,000
वर्टीब्रेट (कशेरुकी)	45,000	50,000	50,000
निमेटोड	15,000	1,000,000	500,000
मोलस्का	70,000	180,000	200,000
क्रस्टेशिया	40,000	150,000	150,000
एराकनिड	75,000	1,000,000	750,000
कीट-पतंग (इन्सेक्टा)	950,000	100,000, 000 *	8,000,000

विश्व के कीट विशेषज्ञों के लगातार प्रयास के फलस्वरूप 950,000 जातियों को वर्णन के साथ प्रकाशित किया गया है और अनुमान किया जाता है कि इनकी जातियों की कुल संख्या 100,000,000 तक हो सकती है। निम्नतालिका-2 में कीट पतंगों के प्रमुख चार वर्गों की जातियों का तुलनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

तालिका -2: विश्व में कीट पतंगों के चार प्रमुख वर्गों की जातियों का तुलनात्मक विवरण:

वर्ग का नाम	कीट विशेषज्ञों के मतानुसार			
	साउथउड के अनुसार	अमेट के अनुसार	मे के अनुसार	ब्रुश एवं ब्रश के अनुसार
कोलियोप्टेरा	350,000	290,000	300,000	300,000 +
डिप्टेरा	120,000	98,000	98,000	150,000
हाइमेनोप्टेरा	100,000	103,000	110,000	125,000
लेपीडोप्टेरा	120,000	112,000	110,000	120,000

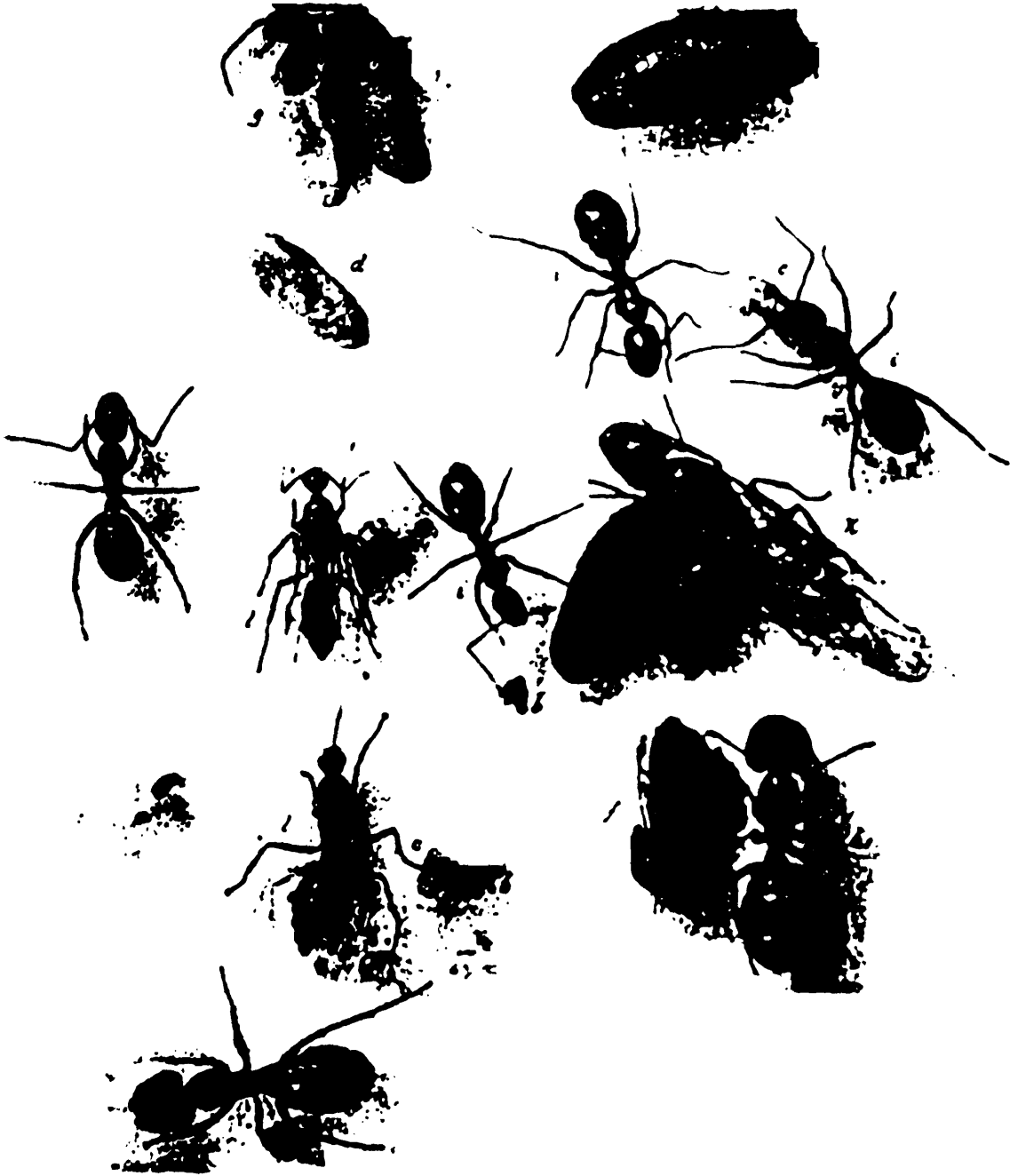
उपरोक्त तालिका-2 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कीट-पतंगों की जातियों की विश्व में अनुमानिक संख्या 100,000,000 है। हाइमेनोप्टेरा वर्ग की प्रकाशित जातियों की सर्वाधिक संख्या 125,000 मान कर चलें तो विभिन्न प्रवर परिवारों में जातियों की संख्या तालिका-3 में दर्शाई गई है।

तालिका -3: हाइमेनोप्टेरा वर्ग के जातियों की संख्या का तुलनात्मक विवरण

सुपर फेमिली (प्रवर वंश)	विश्व में	भारत में
उपवर्ग — ऐपोक्रोटा		
1. एपोइडिया	100,000	350
2. बेसपाइडिया	600	200
3. स्कोलाइडिया	1,500	600
4. फार्मोकोइडिया	8,800	700
5. इकनोमोनिडिया	60,000	12,000
6. चैल्सीडोइडिया	30,000	1039
7. वेथीलाइडिया	2,000	2,00
8. प्रोट्रूपोइडिया	21,000	100
9. साइनोपाइडिया	500	50
10. इवेनाइडिया	350	50
11. सेराफ्रोनाइडिया	35	5
उपवर्ग—सिम फाइटा		
1. टेनथ्रोडिनाइडिया	2,000	200
2. सेफाइडिया	100	5
3. मेगालोडानडाइडिया	15	2
4. सीरीकाइडिया	85	5

विश्व के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में चींटियों की जातियों की संख्या, उन स्थानों की भौगोलिक परिस्थियों के कारण भिन्न भिन्न है। पोलिनेशिया में इनकी संख्या सबसे कम है क्योंकि

कि सिर्फ 42 जातियों ही वहाँ से प्रकाशित की गयी हैं। जब कि इनकी सर्वोच्च संख्या अफ्रीका महाद्वीप में पायी जाती है; यह संख्या यहाँ 2,500 है। यूरोप में इनकी संख्या 180 है। एशिया में इनकी संख्या सर्वोच्च से थोड़ा कम 2,080 है।



चित्र 3: कैम्पोनोटस अमेरिकेन्स जाति की चींटियाँ अण्डों के साथ

निम्नलिखित तालिका -4 में चींटियों की जातियों को विश्व के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में दर्शाया गया है।

तालिका -4: चींटियों की जातियों की संख्या भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर

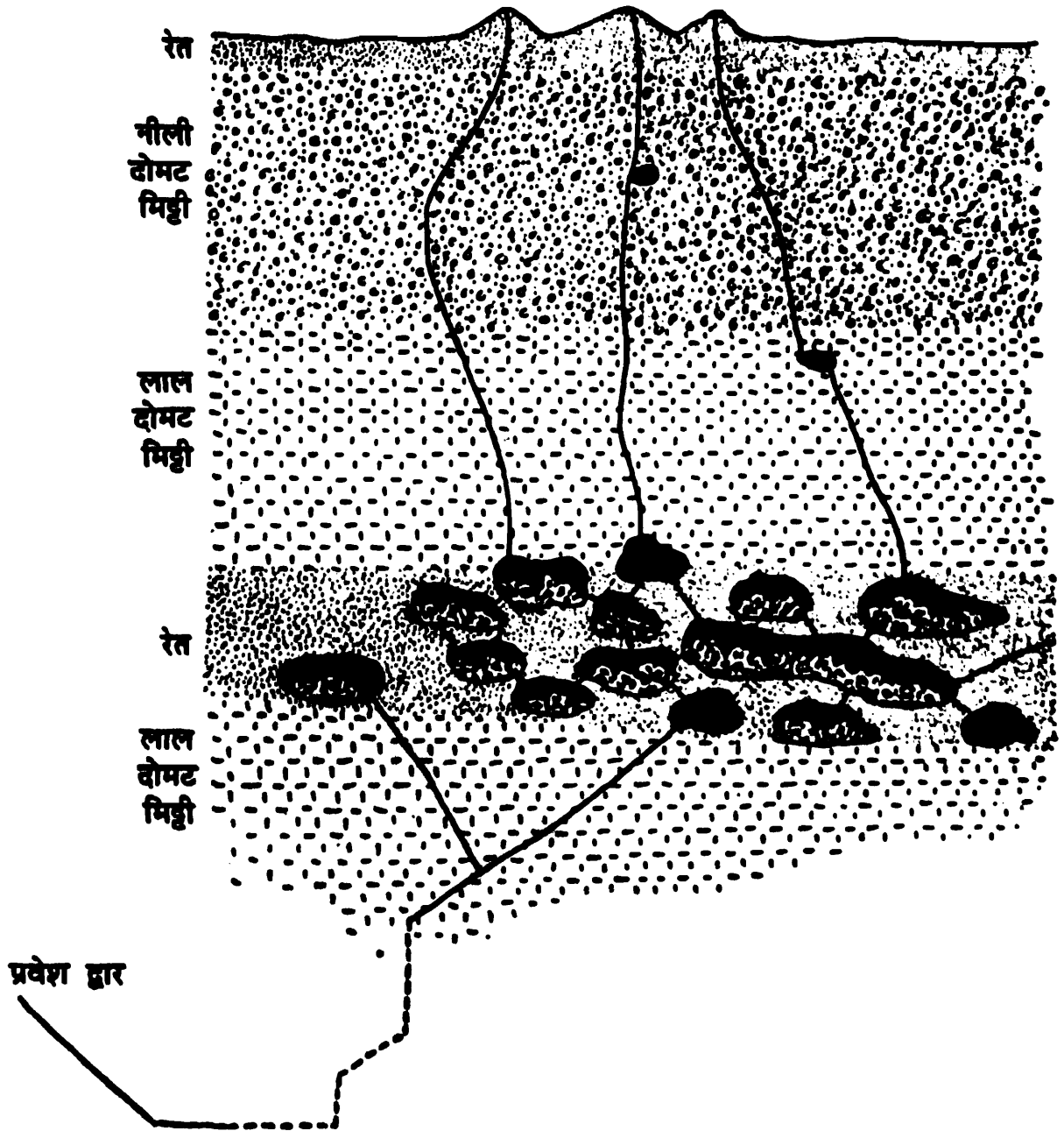
भौगोलिक क्षेत्र	जातियों की संख्या
1. नियोट्रोपिकल क्षेत्र (वेस्ट इंडिज, मैक्सीको, मध्य एवं दक्षिण अमेरिका)	2,162
2. निआर्कटिक क्षेत्र (उत्तरी अमेरिका एवं मैक्सीको का उत्तरी भाग)	580
3. यूरोप	180
4. अफ्रीका	2,500
5. एशिया	2,080
6. मेलानेशिया	275
7. आस्ट्रेलिया	985
8. पोलिनेशिया	42
	योग 8804

चींटियों का संदर्भ

संसार में कीट-पतंग जगत में काफी सामाजिक कीट-पतंग पाये जाते हैं, उदाहरण स्वरूप अमेजन घाटी के वर्षा वाले जंगलों के संपूर्ण बायो-मास का एक तिहाई भाग चींटियों एवं दीमकों से भरा पड़ा है। यहाँ प्रति हेक्टर भूमि में चींटियों की संख्या लगभग 80 लाख एवं दीमकों की संख्या लगभग 90 लाख है। इनके साथ मधु मक्खियों एवं बरों (वास्पस) की संख्या को जोड़ दिया जाय तो यहाँ के संपूर्ण बायो-मास का लगभग 75 प्रतिशत, इन्हीं सामाजिक कीट-पतंगों से भरा पड़ा है। भारत में इस प्रकार का कोई अध्ययन अभी नहीं हो पाया है, पर अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ पर भी सामाजिक कीट-पतंगों की प्रधानता है।

घनत्व

लेविडक्स (1968, 1982) के मतानुसार, आइवोरी कोस्ट देश के एक वर्ग हेक्टर भूमि में स्थित 7000 निवेशों (कालोनी) में लगभग 200 लाख चींटियाँ पायी गयीं। इनमें सिर्फ एक जाति केम्पोनोटस एकभापीमेन्सीस की संख्या ही लगभग 20 लाख बतायी जाती है। अफ्रीका के जंगलों में ड्राइवर एन्ट डोराइलस एसपी की संख्या सिर्फ एक कालोनी में 200 लाख पायी गयी है। होकाडो (जापान) के तटवर्ती क्षेत्र में चींटियों की एक जाति फार्मिका येसेन्सीस की लगभग 3060 लाख मजदूर चींटियाँ तथा 1,080,000 रानी चींटियाँ का पाया जाना बताया जाता है। 2.7 किलोमीटर भूमि में स्थित 45,000 बिलों (नेस्ट) में ये चींटियाँ पायी गयीं जो एक दूसरे से भीतर ही भीतर मिली हुयी थीं।



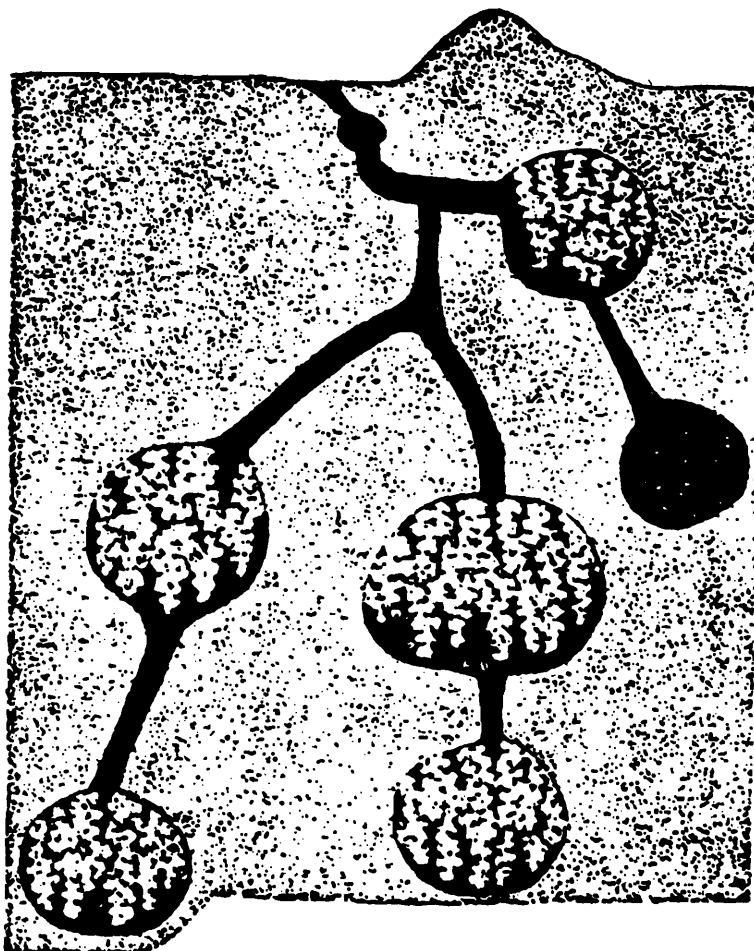
चित्र 4: पत्तीभक्षक आटा वंश की चींटियों का भूमि के नीचे स्थित आवास।

विल्सन (1959) ने न्यूगिनी के पूर्वोत्तर क्षेत्र पापुआ के वर्षा वाले क्षेत्र की 2.6 वर्ग किलोमीटर भूमि में चींटियों की 175 जातियों की सूची तैयार की जो 59 वंश (जेनेरा) से संबंधित थीं। बोल्टन (1921) ने घाना के टाटों कोकोआ बागान क्षेत्रों में एक वर्ग किलोमीटर भूमि में चींटियों की 219 जातियों को सूचीबद्ध किया जो 63 वंश से संबंधित थीं। इसी प्रकार केम्प (1964) ने ब्राजील के साओ-पाउलो क्षेत्र के एक वर्गमील भूमि में चींटियों की 272 जातियों को सूचीबद्ध किया जो 71 वंश से संबंधित थीं।

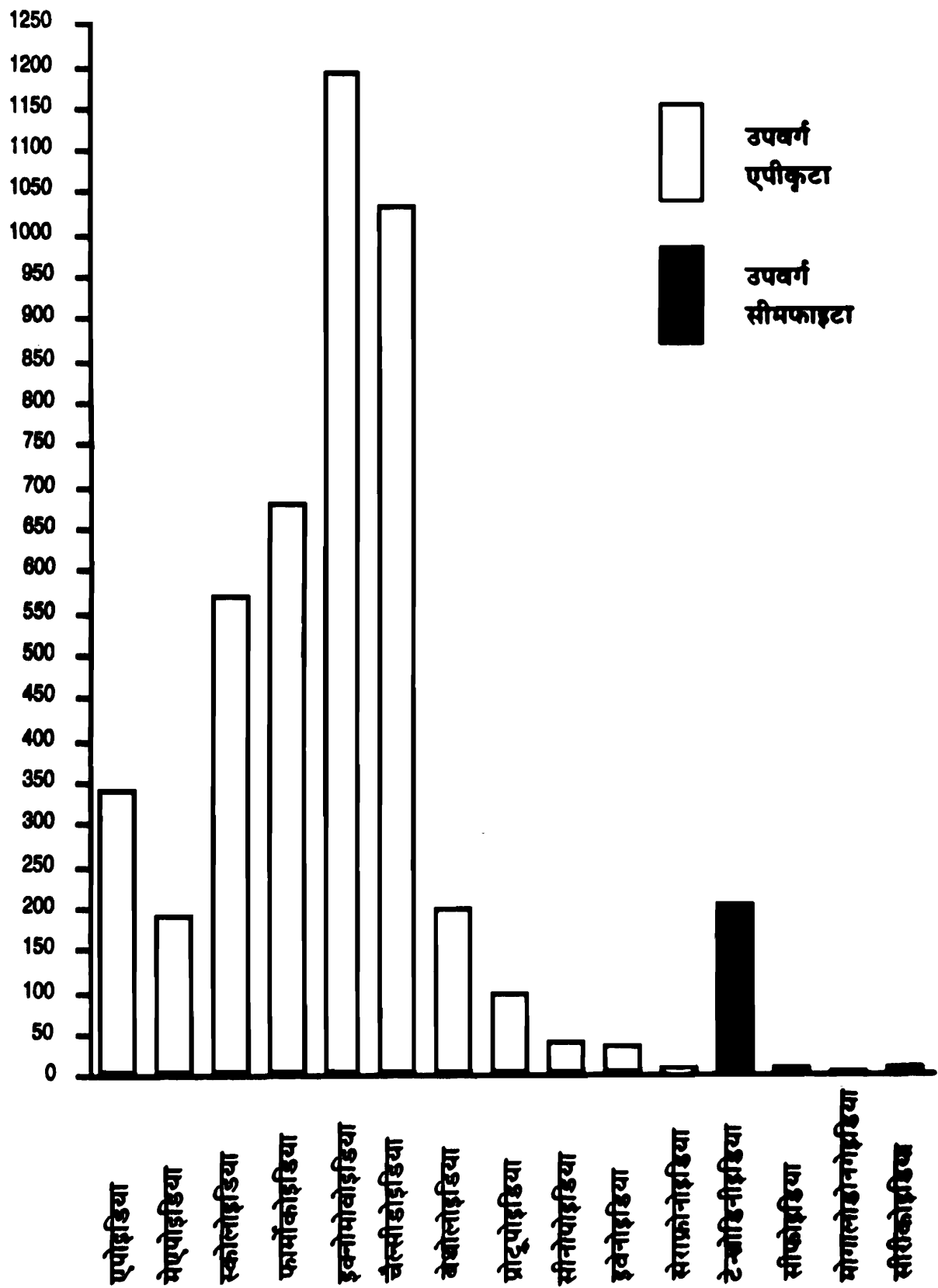
दूसरी तरफ शीतोष्ण टेम्परेट कीड़ों का विश्लेषण करें तो देखते हैं कि प्रति किलोमीटर भूमि में चींटियों की जातियों की संख्या घटती जाती है। टेलवर (1975) ने मिचीगन, अमेरिका के 8 वर्ग किलोमीटर भूमि में चींटियों की 87 जातियों का पता लगाया जो 23 वंश से संबंधित थी। वान-पेल्ट (1956) फ्लोरिडा के वेल्का रिजर्व में 8 वर्ग किलोमीटर भूमि में चींटियों के 36 जातियों की सूची बनायी जो 30 वंश से संबंधित थी।

स्थलीय पर्यावरण पर चींटियों का प्रभाव

स्थलीय आवास में चींटियाँ अन्य कीट पतंगों तथा छोटे मेरुदण्डहीन जन्तुओं के ऊपर शिकार करती हुयी पायी गयी हैं। मध्य एवं दक्षिण अमेरिका के जंगलों में चींटियों के कुछ विशेष वंश जैसे एक्रोमिरमेक्स तथा आटा, पत्ती-भक्षक के रूप में विनाशकारी चींटियाँ हैं, जो पेड़-पौधों की पत्तियों को काट-काट कर पौधों को इस प्रकार क्षति ग्रस्त करती हैं, कि पौधों में सिर्फ डालियाँ ही बची नजर आती हैं।



चित्र 5: ट्रेकीमीरमेक्स जाति का भूमिगत आवास, जो अलग-अलग खण्डों में होते हुए भी एक दूसरे से जुड़े हैं। इन खण्डों में फंगस गार्डन भरा है जो चींटियों के भोजन के रूप में काम आता है।



चित्र 6: भारत में हाइमेनोप्टेरा वर्ग की जातियों की संख्या उपवर्गों (सुपरफैमिली) के अनुसार ।

दक्षिण-पश्चिम अमेरिका के मरुभूमि में पाए जाने वाली प्रोगोनोमिरमेक्स वंश की चींटियाँ अन्न-भक्षी कीट के रूप में पायी जाती हैं, और इनसे होने वाले अन्न की क्षति, मेरुदण्डीय प्राणियों से होने वाले क्षति से भी ज्यादा आँकी गयी है। इन्हीं क्षेत्रों के अन्य भागों में मकड़ियों एवं कैराबीड गुबरैलों (बीटल्स) की बढ़त को रोकने में जैविक रोकथाम (बायोलॉजिकल कंट्रोल) के रूप में, चींटियों का योग-दान सराहनीय है।

पृथ्वी के भौतिक पर्यावरण को परिमार्जित करने में भी चींटियों का कुछ योग-दान है। केंचुओं द्वारा खोदी गयी मिट्टी से ज्यादा मिट्टी, इन चींटियों द्वारा खोदी जाती है, जो कि उस विशेष मिट्टी को उपजाऊ बना देता है। साथ ही साथ बीजों के वितरण में भी ये काफी सहायक पायी गयी हैं। मिट्टी की इस प्रकार खुपाई होने से जीव-जंतुओं एवं पेड़ पौधों के अवशेषों की भरमार हो जाती है। फलतः इस मिट्टी में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की मात्रा ज्यादा पायी जाती है और यह मिट्टी उर्वरा होकर खेती-बाड़ी के योग्य बन जाती है।

ग्रेडेल एवं एसनर (1985) के मतानुसार फार्मीसीनी उप-परिवार की चींटियाँ विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 10 ग्राम फार्मिक एसिड का मिश्रण करती हैं।

जैविक विविधता की समस्यायें

जीव-वैज्ञानिकों का अनुमान है कि विश्व में पाए जानेवाले जीव-जंतुओं की जातियों की संख्या 50 लाख तक हो सकती है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने अन्दाज लगाया है कि यह संख्या 500 लाख तक हो सकती है। जैविक-विविधता का यह बढ़ता आँकड़ा विशेषकर वर्षा वाले जंगलों में कार्यरत वर्गीकारक वैज्ञानिकों के अध्ययन का फल है। केवल उष्ण-कटिबन्धी वर्षा वाले जंगलों में ही कीट-पतंगों की संख्या प्रायः 300 लाख होने की संभावना है।

जहाँ पर विश्व में इतनी अधिक जैविक विविधता है, वहीं पर प्रगति के नाम पर होने वाले यांत्रिक और औद्योगिक प्रसार के फलस्वरूप प्रतिदिन 50 जातियाँ लुप्त होती जा रही हैं (विल्सन 1988 एवं मायर्स 1986)। अगर इस विभीषिका को समय पर रोक नहीं गया, तो विश्व में जीव-जंतु इस प्रकार लुप्त हो जाएंगे, कि मानव का अस्तित्व भी प्रश्न वाचक चिह्न बन कर रह जाएगा।

विश्व धरातल से प्राणियों के जातियों का लुप्त होना एक क्रम सा बन गया है, पर निःसंदेह इसका मुख्य कारण प्राकृतिक आवास का छिन्न-भिन्न होना है। उदाहरण के रूप में सहारा मरुभूमि की 65 प्रतिशत पारिस्थितिकी अस्त व्यस्त हो चुकी है। इसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया का भी 67 प्रतिशत प्राकृतिक आवास प्रायः नष्ट हो चुका है।

बाहर से लायी गयी जातियों (विजातिय जातियों) से होने वाले नुकसान का अन्दाज सिर्फ तब पता चलता है, जब आस पास की और जातियाँ लुप्त होने लगती हैं। उदाहरण स्वरूप एक विशेष मछली अमेरिकन कोई जिस तालाब में छोड़ दी जाती है, वहाँ पर स्थित मछलियों की अन्य जातियाँ क्रमशः उस तालाब से लुप्त हो जाती हैं, और बच जाता है— अमेरिकन कोई

का विशाल समुदाय।

सर्वोपरि, ऋतु परिवर्तन इतने बृहद रूप में होता जा रहा है कि अगर परिवर्तन का यह क्रम चलता रहा, तो पूरे विश्व का पारिस्थितिकी तंत्र परिवर्तित हो जाएगा। फलतः प्राकृतिक आवास टुकड़े-टुकड़े में विभाजित हो जाएगा और प्राकृतिक आवास में पाए जाने वाले जीव-जंतु क्रमशः लुप्त हो जाएंगे।

उपसंहार

मानव ने विश्व पर्यावरण को इतना अधिक प्रभावित कर दिया है कि संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र ग्रसित हो गया है। खेती-बाड़ी का विस्तार, जंगलों को अनावश्यक रूप में काटते जाना, औद्योगिक एवं सांस्कृतिक विकास के नाम पर धरातल का अधिकांश अंश हड़प लेना, वर्तमान में प्रगति नजर आता है किन्तु अन्ततः विनाश का साधन बन जाएगा। विश्व के संपूर्ण खाद्य पदार्थों का 2/5 भाग सिर्फ मानव ही भोग कर रहा है और 3/5 भाग भोज्य पदार्थों पर बाकी सभी जीव जन्तु जीवन यापन करते हैं, जो कि जैविक विविधता के अस्तित्व के लिए खतरे का स्रोतक है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय मकड़ी, बिच्छू, काँतर, माइट आदि (एरेकनीडा)

अशोक कान्ति सान्याल

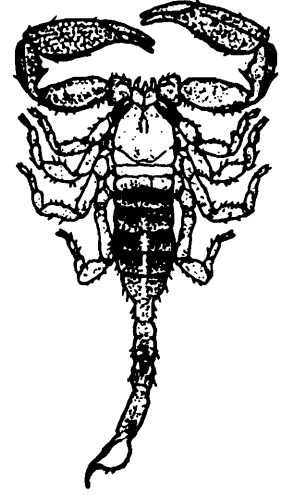
भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता

एरेकनीडा फाइलम आर्थ्रोपोडा के अन्तर्गत एक श्रेणी है, जिसमें बिच्छू, मकड़ी, टिक, माइट इत्यादि जीव जन्तु शामिल हैं। इनके सिर और वक्षस्थल मिलकर एक किफेलोथोरेक्स शरीर बनाते हैं, चार जोड़ी पैर होते हैं, किन्तु कोई सूँड़ (एन्टीना) नहीं होता। इनका शरीर दो भागों में विभक्त होता है, किफेलोथोरेक्स अथवा प्रोसोमा एवं उदर (एब्डोमन) अथवा ओपिस्थो-सोमा। इनके आठ साधारण आँखें होती हैं, जिनकी स्थिति निश्चित नहीं हैं। मुँह में असली जबड़े नहीं होते। ये अपने भोजन को उपांगों (किफेलोथोरेक्स एपेन्डेज) द्वारा लेते हैं। ये छः जोड़ी उपांग हैं, प्रथम दो जोड़ी खाद्य प्रेषित करने के लिए, एवं शेष चार जोड़ी इनके पैर हैं। प्रथम जोड़ी उपांग को चेलीसेरी एवं द्वितीय जोड़ी को पेडीपेल्प कहते हैं। इन जन्तुओं में नर एवं मादा सम्पूर्ण रूप से भिन्न होते हैं। इनके बच्चे अंडों से निकलते हैं एवं देखने में प्रायः वयस्क जैसे रूप के होते हैं। ये बच्चे कई बार खाल बदलते हैं तथा अन्त में वयस्क रूप धारण करते हैं। एरेकनीडा वर्ग के जन्तु साधारणतः स्थलचर एवं मांसाहारी होते हैं। कुछ दिन के समय में सक्रिय रहते हैं, तो कुछ निशाचर होते हैं। भारत में एरेकनीडा जन्तुओं की जातियों की संख्या सारणी 1 में दी गई है।

बिच्छू (स्कोरपियोनिडा)

ये पृथ्वी के सबसे प्राचीन प्राणियों में से एक हैं। इनकी पूँछ के अन्त में डंक होता है जिसमें विष भरा होता है। सभी बिच्छू निशाचर होते हैं एवं शमीले स्वभाव के प्राणी हैं। ये पत्थरों के नीचे, लकड़ी के तनों के नीचे, वृक्षों की छाल के नीचे एवं छोटे-छोटे गड्ढों में पाये जाते हैं। ये बिच्छू मनुष्य के लिये बिल्कुल ही लाभप्रद नहीं हैं। इन्हें पकड़ने पर ये डंक मारते हैं और जहर डाल देते हैं। कुछ जातियों के बिच्छूओं के काटने पर उस स्थान पर सूजन आ जाती है और कभी-कभी बुखार भी आ जाता है। उत्तरी अफ्रीका और अमरीका की कुछ जातियों के डंक से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। इनके निवास स्थान के अनुसार

इन्हें तीन भागों में विभक्त किया गया है: जैसे बिल में रहने वाले, चट्टानों पर रहने वाले और पेड़ों पर पाये जाने वाले। इन तीनों स्वभाव की जातियों के बिच्छू भारत में पाये जाते हैं। अधिकांश बिच्छू जल से दूर रहते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो कुछ देर तक ज्वार के पानी में रह सकते हैं। अत्यधिक ठंड वाले देशों को छोड़कर बिच्छू पृथ्वी के सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। शुष्क मरु क्षेत्रों में ये अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनकी जातियों का निवास समुद्र तटीय क्षेत्रों से लेकर हिमालय तथा आल्प्स पर्वत जैसे उच्चता वाले क्षेत्रों तक है।

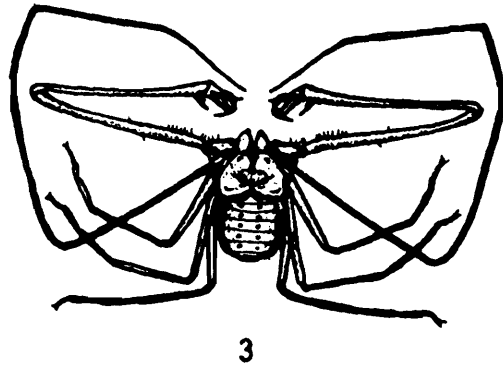
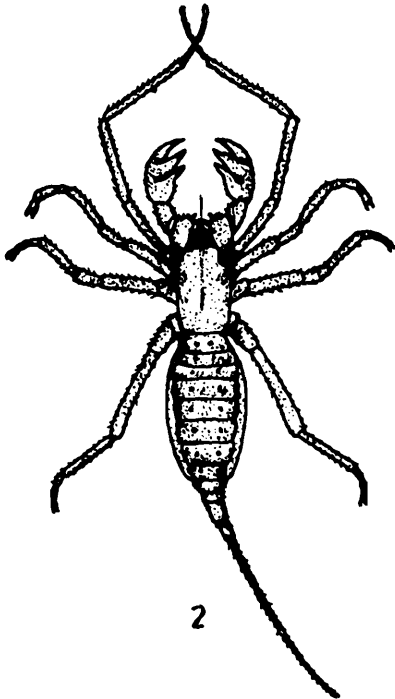


चित्र 1: बिच्छू (स्कोरपियोनिडा)

भारतीय बिच्छूओं पर सर्वप्रथम अध्ययन करने का श्रेय पोकौक (1900) को है, तथा हाल ही में टीकादार एवं बस्ताबडे (1981) ने भारतीय बिच्छूओं की जातियों का अध्ययन किया है। वर्तमान समय में भारत में 5 वंशों की 102 जातियाँ पायी जाती हैं।

पेडीपेल्लिडा

एक अन्य वर्ग पेडीपेल्लिडा को सामान्यतया 'चाबुक वाला बिच्छू' कहा जाता है। भारत में इनकी २५ जातियाँ पाई जाती हैं।

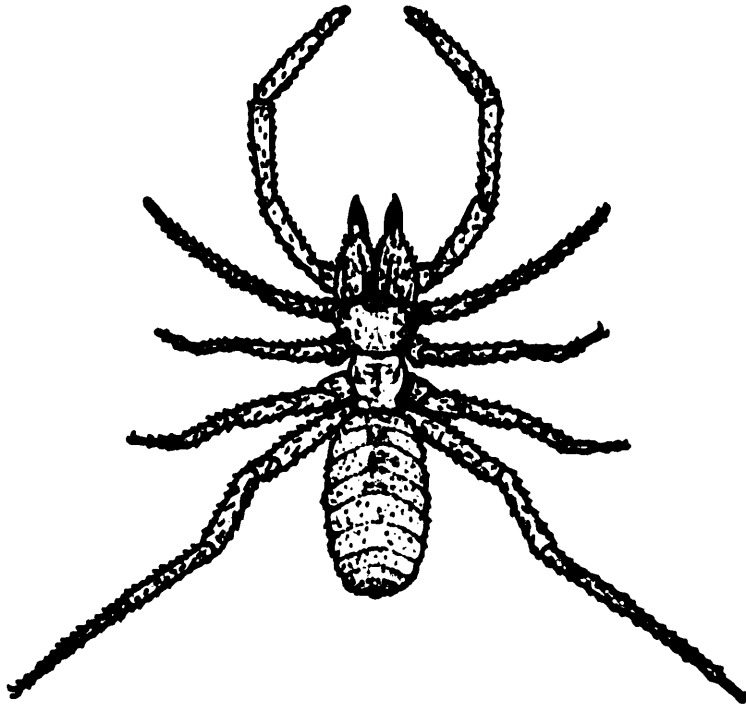


चित्र-2: लेजयुक्त चाबुक वाला बिच्छू (पेडीपेल्लिडा)
चित्र-3: लेजविहीन चाबुक वाला बिच्छू (पेडीपेल्लिडा)

सान्याल: भारतीय एरेकनीडा

सोलप्प्यूजिडा

इस वर्ग के अन्तर्गत 'नकली मकड़ी' या 'वायु बिच्छू' पाये जाते हैं। ये सामान्यतया निशाचर और शिकारी स्वभाव के मौसाहारी प्राणी हैं। ये प्रधान रूप से मरुस्थल में पाये जाते हैं एवं ये भारत के कुछ जंगलों में भी मिलते हैं। इनका मुख्य खाद्य कीड़े-मकोड़े, बिच्छू एवं छिपकली के बच्चे आदि हैं। अब तक भारत में इस वर्ग के अधीन 15 जातियाँ दो परिवारों में अन्वेषित हैं।



चित्र 4: नकली मकड़ी (सोलप्प्यूजिडा)

तालिका 1 : भारत में एरेकनीडा जन्तुओं की जातियों की संख्या

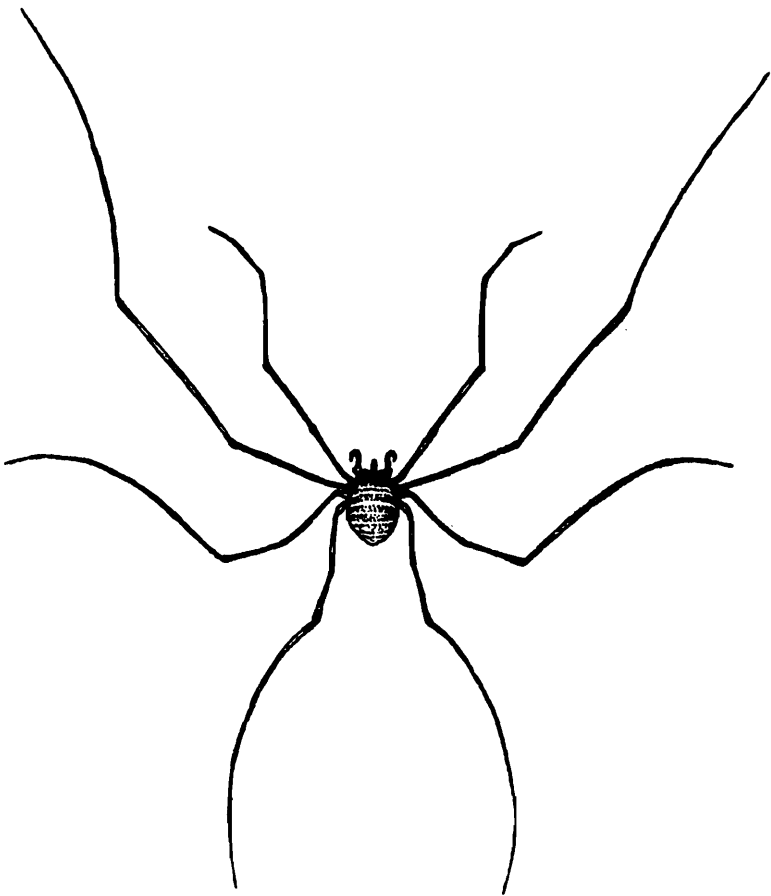
वर्ग/उपवर्ग	परिवार (वंशों) की संख्या	जातियों की संख्या	क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाली जातियाँ	भारत में छोटी नकी जातियों की संख्या
स्कोरपियोनिडा	5	102	70	70
पेडीपेल्लिडा	4	25	21	21
सोलप्प्यूजिडा	2	15	12	12
ओपीलियोन	1	167	65	68
स्यूडोस्कोरपियोनिडा	13	100	49	49
एकेरी	184	3035	910	929
क्रिटोस्टिगमाटा	64	328	170	170
मेसोस्टिगमाटा	38	357	163	163

क्रमशः

वर्ग/उपवर्ग	परिवार (वंशों) की संख्या	जातियों की संख्या	क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाली जातियाँ	भारत में खोजी नयी जातियों की संख्या
प्रोस्टिगमाटा	52	1093	532	549
एस्टिगमाटा	28	140	19	19
मेटास्टिगमाटा	2	107	26	28
एरेनी	44	1015	455	478
योग	253	4459	1582	1627

बहुत लम्बी टाँगों वाली मकड़ी (फेलेन्जिडा या ओपीलियोन)

यह 'हारवेस्ट मैन' नाम से भी परिचित हैं। क्योंकि फसल काटते समय खेतों में ये प्रायः देखे जाते हैं। लम्बे पतले पैर एवं खण्डित उदर के कारण यह आसानी से पहचाने जाते हैं। इस वर्ग के प्राणी दिन में नहीं निकलते और सूर्यास्त के बाद खाद्य की खोज में निकलते हैं। प्राथमिक रूप से माँसाहारी हैं एवं मृत जीव जन्तु को खाना पसन्द करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर रोटी या अन्य तेलयुक्त पदार्थों को भी खाते हैं।

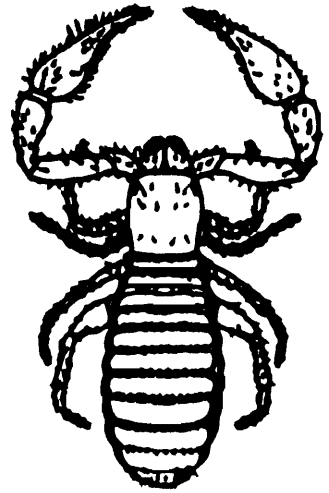


चित्र 5: हारवेस्ट मैन (फेलेन्जिडा)

भारत उप महादेश में कई प्रकार के ओपीलियोन पाये जाते हैं। इनका कोई विशेष आर्थिक महत्व नहीं है, परन्तु जैविक नियन्त्रण में ये सहायक होते हैं। भारत में अभी तक एक वंश के अधीन 167 प्रजातियों का पता लगा है।

बिच्छू जैसी मकड़ी (कीलोनेथी या स्यूडोस्कोरपियोनिडा)

ये अत्यन्त छोटे आकार के प्राणी हैं, जिनका बिच्छुओं से बहुत सादृश्य है। इनके पेडीपेल्स एवं शरीर की रचना बिच्छुओं की तरह दिखती है, किन्तु शरीर का पिछला भाग बिच्छुओं की भाँति सँकरा नहीं होता। अंधकार या नमी वाले स्थान, वृक्षों की छाल के नीचे, पत्थरों एवं लट्टों के नीचे, सड़े गले लकड़ी-पत्तों के बीच, घोंसलों में एवं मुर्गी के बाड़े में ये पाये जाते हैं। इन छोटे एवं शर्मीले स्वभाव के प्राणियों के कई प्रकार भारत में पाये जाते हैं। अब तक भारत में इन के 13 वंश के अन्तर्गत लगभग 100 जाति सूचीबद्ध किये गये हैं। भारत में इन प्राणियों पर डा० मूर्ति ने विशद गवेषण किया है।

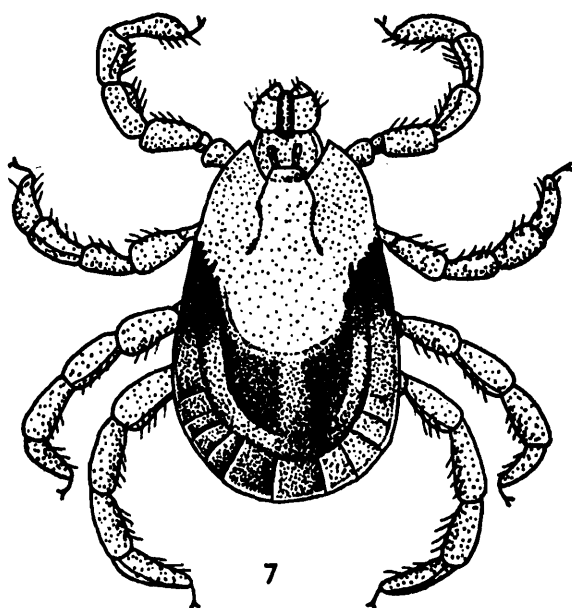


चित्र 6: बिच्छू जैसी मकड़ी
(स्यूडोस्कोरपियोनिडा)

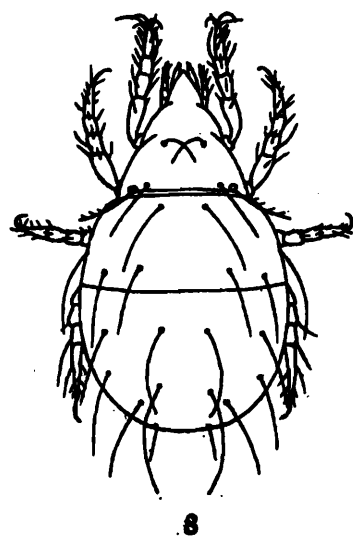
चिंचड़ी या बरूथी; कुटकी या किलनी (टिक और माइट)

अन्य एरेकनीडा की भाँति एकेरिना या एकेरी वर्गके भी चार जोड़ी पैर, एक जोड़ी चेलीसेरी और एक जोड़ी पेडीपेल्स होते हैं। किन्तु इनका शरीर कई खण्डों में विभक्त नहीं होता। टिक का आकार 500 से 20,000 माइक्रोन के बीच तथा माइट का आकार 150 से 13,000 माइक्रोन के बीच होता है, यानी बहुत सूक्ष्म प्राणी हैं। यह सभी संभाव्य स्थानों पर जैसे समुद्र तटीय क्षेत्रों से लेकर पर्वतों की ऊँचाई पर, मरुस्थल में, आर्कटिक क्षेत्रों में एवं महासागर में स्वच्छन्द रहते हैं। यह स्वतन्त्र एवं परजीवी दो प्रकार के होते हैं। माइट मिट्टी में, गन्दगी के ढेर में, वनस्पति में, कृषि भूमि, चरागाह में, खारे एवं मीठे पानी में अधिक संख्या में रहते हैं। ये जन्तु रीढ़ की हड्डी विहीन, एवं मनुष्य तथा अन्य रीढ़ की हड्डी वाले प्राणियों के शरीर के बाहर परजीवी प्राणियों के रूप में रहते हैं।

एकेरी प्राणी आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। वृक्षों में रहने वाले पत्तों से रस चूसकर वृक्ष को हानि पहुँचाते हैं। कुछ चिंचड़ी ऐसे हैं जो वृक्षों में जीवाणु जनित बीमारियाँ फैलाते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो गोदामों में अनाज को क्षति पहुँचाते हैं। परजीवी माइट एवं टिक पालतू जानवरों, मधुमक्खी, मुर्गी आदि के शरीर से खून चूसकर या उनके शरीर में जीवाणु जनित रोग संक्रमित करके उनको हानि पहुँचाते हैं। टिक कई बार मनुष्य के शरीर में जीवाणु जनित



चित्र 7: किलनी;



चित्र 8 : चिंचड़ी (एकारी)

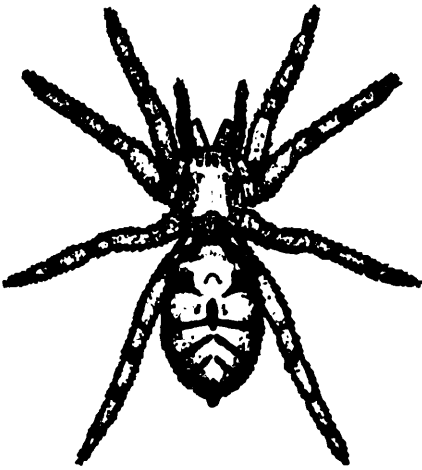
रोग फैलाते हैं। कुछ जलीय माइट हैं जो मछली एवं अन्य जलीय प्राणियों के शरीर के बाहर परजीवी रूप से रहकर उनको क्षति पहुँचाते हैं। ये मनुष्य में श्वास की बीमारी, एवं चर्मरोग फैलाते हैं। लेकिन यह सत्य है कि सभी माइट हमारे शत्रु नहीं हैं। कुछ जातियाँ बड़ी ही कुशलता से वृक्षों को हानि पहुँचाने वाले अन्य माइट को खाकर वृक्षों को हानि से बचाती हैं। कुछ जलीय माइट मच्छरों के लारवा को खाकर इनकी संख्या को सीमित करते हैं। मिट्टी के माइट जैवीय पदार्थों को सड़ाने में महत्वपूर्ण हिस्सा लेकर मिट्टी की उर्वरता की वृद्धि करते हैं।

पूरे विश्व में चिंचड़ी (माइट) की लगभग 30,000 जातियाँ पाई गई हैं। अभीतक भारत में कुल 2025 जातियाँ एवं 184 परिवार के चिंचड़ी (माइट) सूचीबद्ध किये गये हैं। कुटकी (टिक) की 107 जातियाँ दो परिवारों में पाई जाती हैं।

मकड़ियाँ (एरेनी)

ये अत्यन्त प्राचीन प्राणियों में से एक हैं। लगभग सभी रहने योग्य स्थान जैसे जल, मिट्टी के नीचे एवं ऊपर, समुद्र तटीय क्षेत्र से लेकर पहाड़ों के उच्च शिखर तक, मरूस्थल से लेकर बर्फीले क्षेत्रों तक ये पाये जाते हैं। मकड़ियों को मनुष्यों के घरों में, परित्यक्त इमारतों में, मैदानों, जंगलों में, लट्टों एवं पत्थरों के नीचे एवं वृक्षों पर देखा जा सकता है। एक सामान्य धारणा है कि मकड़ियाँ जहरीली होती हैं और इनके काटने से बहुत हानि पहुँचती है। परन्तु यह धारणा सत्य नहीं है। ब्लैक विडो स्पाईडर अथवा तरनतुला के अलावा अन्य सभी मकड़ियाँ कोई हानि नहीं पहुँचाती हैं। ये दोनों मकड़ियाँ भारत में नहीं मिलतीं।

इसके विपरीत मकड़ियों को मानवता का बहुत बड़ा सहायक कहना चाहिये, क्योंकि वे मनुष्य एवं पालतू जानवरों के लिए हानिकारक कीड़ों को खाकर उनकी सहायता करती हैं।



चित्र 9: मकड़ी (एरेनी)

ये रूई, सेब, केला एवं धान के ऊपर पाये जाने वाले हानिकारक कीड़ों को खाकर इन फसलों को बचाने में सहायक होती हैं। हेटेरोपोडा मकड़ी का प्रिय खाद्य तिलचट्टा है, अतः तिलचट्टों के दमन में इनका उपयोग किया जा सकता है। कई मकड़ियों का होमियोपैथिक और एलोपैथिक दवाइयों को बनाने में उपयोग किया जा रहा है। इसके अलावा कहते हैं कि मकड़ियों के रेशों से अनेक बीमारियों जैसे कान दर्द, सिर दर्द, बुखार का इलाज भी किया जाता है।

मकड़ी पृथ्वी पर पायी जाने वाली एक अत्यन्त परिचित प्राणीजात है। सम्पूर्ण विश्व में 30,000 से अधिक इनकी जातियों की खोज हुई है। भारत उपमहादेश में अब तक 44 परिवारों के अन्तर्गत 1015 जातियों की मकड़ियाँ पाई गई हैं। यह संख्या विश्व की कुल मकड़ी जाति की केवल 3% है। भारत में इस विषय पर स्वर्गीय डा० बी० के० टीकादार ने विशद अध्ययन किया।

एरेकनीडा के संरक्षण का महत्व:

एरेकनीडा जन्तुओं का विशेष रूप से महत्व है क्योंकि मिट्टी में रहने वाले माइट आदि जैविक पाचन के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि करते हैं। कुछ का उपयोग होमियोपैथिक और एलोपैथिक दवाइयों के बनाने में होता है। कुछ एरेकनीडा मनुष्यों के लिए हानिकारक भी है जैसे बिच्छू, चिंचड़ी एवं टिक। फिर भी प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने के लिए इनका संरक्षण जरूरी है। इसके लिए चनों एवं प्राकृतिक वातावरण को बनाये रखना होगा।

आभार ज्ञापन

इस लेख को तैयार करने में श्रीमती मिलि सान्याल के सहयोग एवं प्रामर्श के लिए मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

रक्तचूषक आर्थ्रोपोड

सन्तोष कुमार टण्डन

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

एवं

नीलम टण्डन

स्कूल आफ ट्रापिकल मेडीसिन, कलकत्ता

जन्तुओं में आर्थ्रोपोडा सबसे बड़ा फाइलम है। इनकी विश्व में पाई जानेवाली 900,000 जातियों में से लगभग 57000 जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। इस फाइलम को चार बड़े समुदायों में विभक्त किया गया है:—

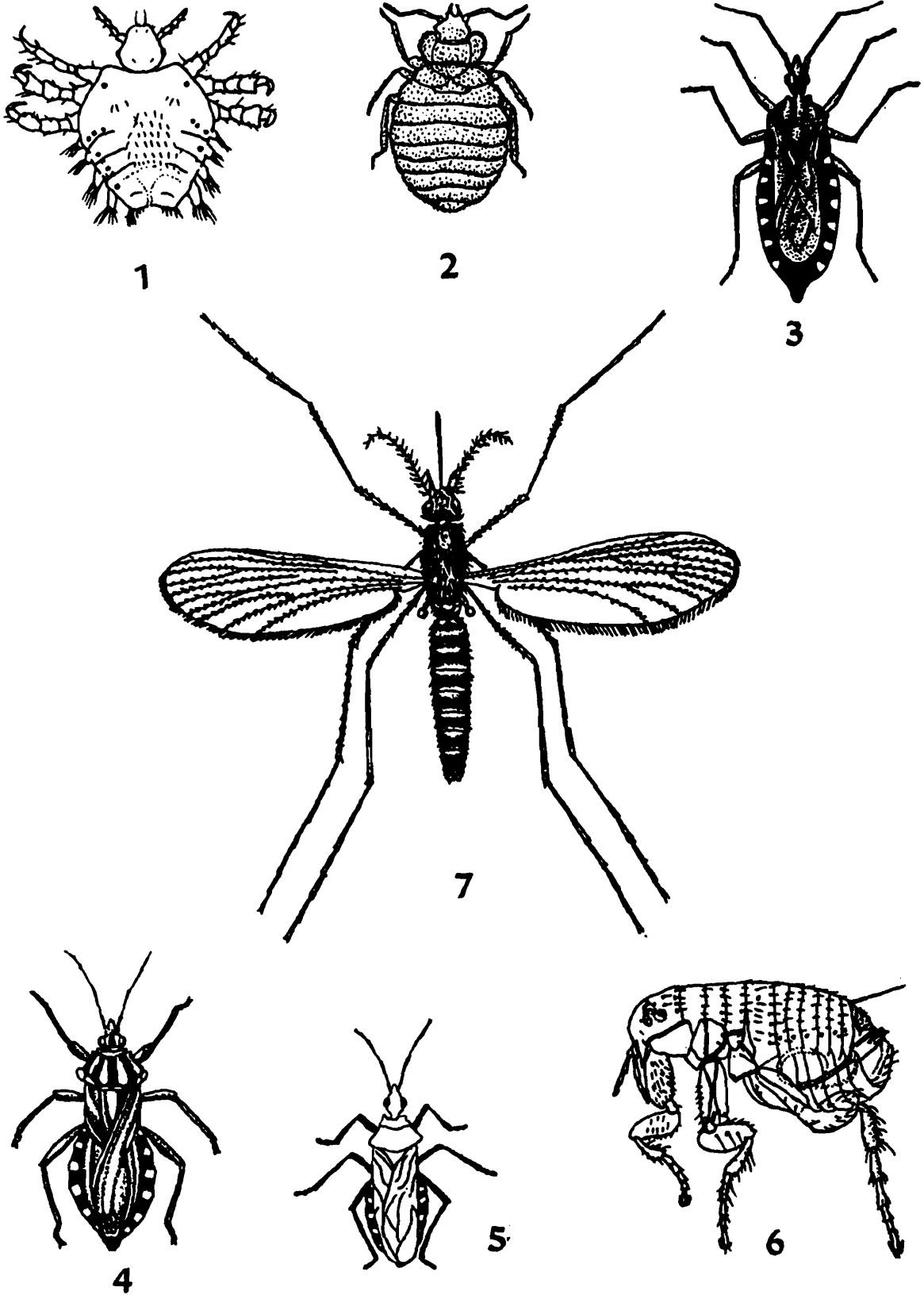
1. क्रस्टेशिया, 2. माइरियापोडा, 3. इन्सेक्टा तथा 4. एरेकनिडा। इसके अतिरिक्त ट्राइलोबिटा वर्ग भी है जो अब लुप्त हो चुका है।

इन्सेक्टा (कीट वर्ग) आर्थ्रोपोडा का सबसे बड़ा समुदाय है, जिसमें चिकित्सा (मेडिकल) और पशुचिकित्सा (वेटेरिनरी) के महत्व के रक्त पीनेवाले हिमेटोफैगस कीट भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार के कीट वर्ग को 5 गणों में विभक्त किया गया है:—

(1) मैलोफेगा, (2) साइफनकुलैटा, (3) हेमीप्टेरा, (4) साइफनोप्टेरा और (5) डिप्टेरा।

मैलोफेगा

ये पंखहीन कीट हैं जो बाह्य परजीवी के रूप में मुख्य रूप से चिड़ियों के ऊपर और कभी-कभी-कभी स्तनधारी जन्तुओं के ऊपर पाये जाते हैं। ये मुख्यतः पंख के टुकड़ों, बालों और दूसरे बाह्य त्वचीय चीजों का भक्षण करते हैं। लेकिन कुछ कीट जैसे गाइरोपस ओवेलीस और ग्लिरिकोला पोर्सेली, बाल (हेयर) फालिकुलस से सीबम और सीरम का भक्षण करते हैं। मेनाकैन्थस की जातियाँ पंखों के साथ-साथ रक्त का भी भक्षण करती हैं।



चित्र 1. थाइरिस प्यूविस (एनोप्लूरा) 2. खटमल (बैड-बग) 3. ट्राएटोमा मैजिस्टिस 4. ट्राएटोमा (मादा)
5. ट्राएटोमा (नर) 6. जिनोप्सीला चिआपिस (पिस्सू) 7. क्यूलेक्स फैटिगन्स ।

हेमीप्टेरा

हेमीप्टेरा के अन्तर्गत, कुछ हेटरोप्टेरन्स कीट, जैसे कीसिंग खटमल, एसेसिन खटमल, कनेनोज खटमल आदि हिमेटोफैगस स्वभाव के होते हैं और सामान्यतः दूसरे कीटों का रक्त चूसकर जीवित रहते हैं। लेकिन कुछ कीट जैसे ट्रायटोमा मेजिस्टस (चित्र 3-5) और रोडभिअस प्रोलिक्सस मनुष्य तथा अन्य उच्च जन्तुओं का भी रक्त चूसते हैं। ये कीट ट्रिपैनोसोमा कूजी के वाहक होते हैं और दक्षिणी अमेरिका में एक भयानक बीमारी ट्रिपैनोसोमिऐसिस का कारण हैं। बिस्तरे में रहनेवाला खटमल (बैडबग)(चित्र-2) सर्वत्र पाये जानेवाला जन्तु है, जो मनुष्य के रक्त का शोषण करता है। कालाजार, ओरिएन्टल सोर, कोढ़, चेगास रोग, मुरीन टाइफस, प्लेग, चेचक, पीत प्वर इत्यादि के कीटाणु भी खटमल द्वारा ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचते हैं।

साइफनोप्टेरा

ये छोटे पंखविहीन कीट हैं जिन्हें “प्ली” कहते हैं और जो ग्रीढ़ अवस्था में गर्भरक्त वाले जन्तुओं के उपर बाह्य परजीवी के रूप में पाये जाते हैं।

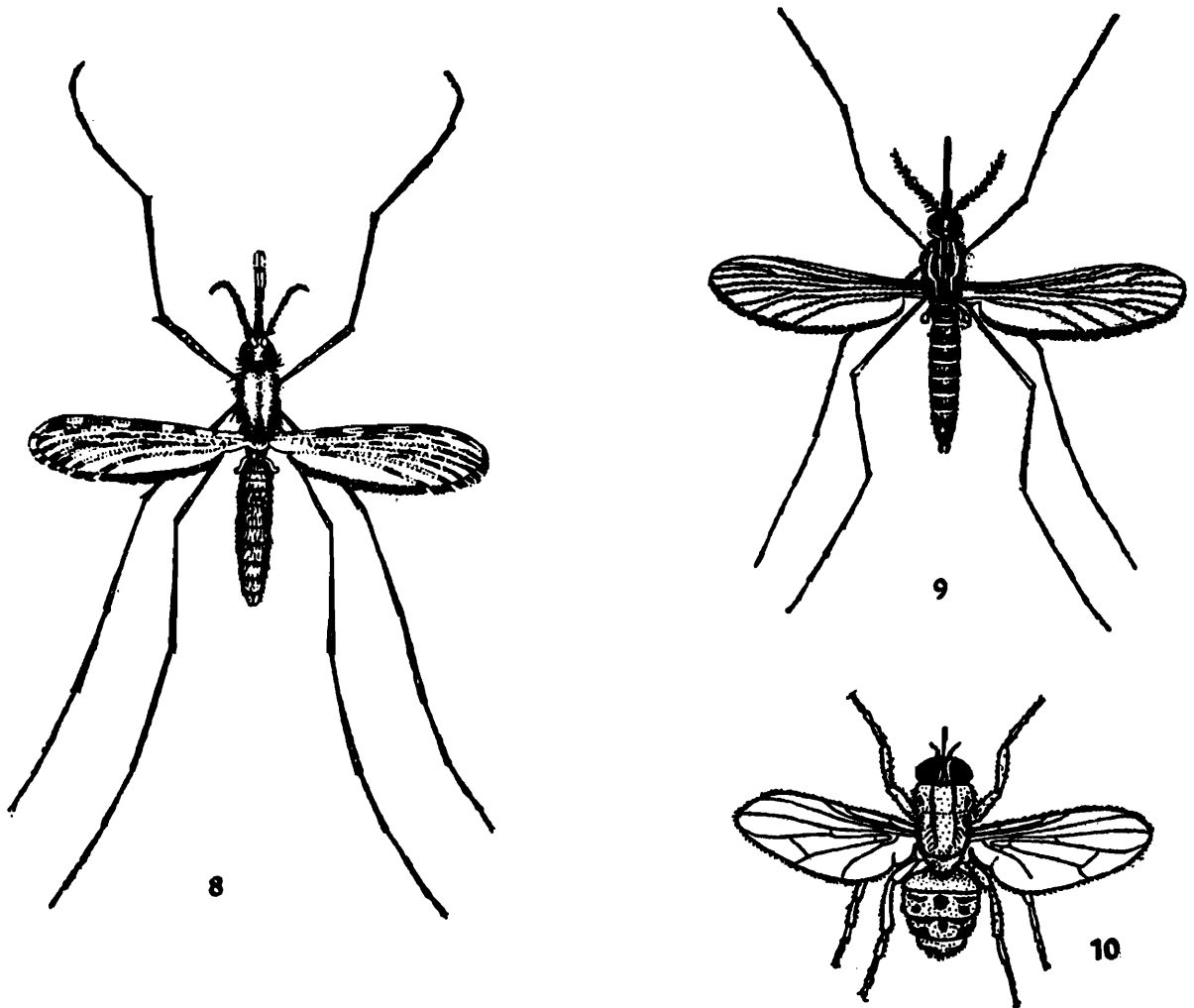
पिस्सू(चित्र 6) स्तनधारियों तथा पक्षियों के रक्त भक्षक परजीवी हैं और उनके शरीर पर वास करते हैं। जब कभी एक पोषक (होस्ट) मर जाता है, तो ये पिस्सू शरीर के ठंडा होते ही दूसरे होस्ट की तलाश करते हैं जो हमेशा उसी जाति का नहीं होता है। बहुत सी जातियाँ एक ही होस्ट पर पायी जाती हैं, जबकि कुछ दूसरे अन्य तरह के पोषकों पर भी पायी जाती हैं। पिस्सूओं के विभिन्न जातियों और उनके पोषकों के बीच का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ नहीं है, क्योंकि किसी विशेष जाति के पोषक (होस्ट) की अनुपस्थिति में ये दूसरे होस्टों के रक्त का भी शोषण करते हैं।

इस गण की लगभग 1000 जातियों का विश्व में आकलन किया गया है जिसमें 52 भारतीय प्रायद्वीप में पायी जाती हैं। भारत में, चूहों पर रहनेवाला पिस्सू (जीनोप्सीला क्लिओपिस) बबोनिक प्लेग फैलाता है। ये मुरीन टाइफस के वाहक के रूप में भी कार्य करते हैं। चूहा लाउस और चूहा चूट की बीमारियाँ फैलाती हैं। मनुष्य में पाया जानेवाला पुलेक्स इरिटेंस सर्वत्र पाया जाता है। यद्यपि मनुष्य इसका सबसे प्रिय पोषक (होस्ट) था परन्तु अब यह मुख्यतः सूअर के शरीर पर पाया जाता है।

डिप्टेरा

(चित्र 7-12)

डिप्टेरा कीड़े अनिवार्यतः रक्तचूसक (हिमेटोफैगस) कीट हैं। निर्मेटोसेरा समुदाय जो कीटाणुके दक्ष वाहक हैं, मनुष्य और जन्तुओं में विभिन्न रोग फैलाते हैं। डिप्टेरा की अधिकतर जातियाँ



चित्र 8. एनोफेलिस स्टीफेन्साइ; 9. ऐडिस एजिप्टीआइ; 10. ग्लोसिना पैलपेलिस।

अक्षतिकर हैं। लेकिन रक्त चूसने की आदत बहुत से कुलों में पायी जाती है जैसे कुलीसीडी कुल के कीट।

मच्छर, मानव मलेरियल परजीवी की चार जातियों, सिमियन मलेरिया की एक जाति, टिलारिओडी की दो या अधिक जातियों, और आर्वोवाइरस के वाहक होते हैं।

मानव मलेरिया के वाहक एनोफलीज मच्छर होते हैं। विश्व में इसकी 400 जातियों में से 56 जातियाँ भारत में पायी जाती हैं और इसमें 13 मलेरिया परजीवी फैलाने का कार्य करती हैं। कुछ व्यूलेक्स समुदाय के मच्छरों द्वारा मनुष्य में बुचेरेरियन फाइलेरिया (हाथीपाँव) फैलता है। इनकी विश्व में 150 जातियाँ पाई जाती हैं।

भारत में डेंगू और चिकुनगुन्या तथा अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका में पीला बुखार ऐडिस इजिप्टी मच्छर के द्वारा फैलता है।

इसी प्रकार क्यूलेक्स क्वीनकेफेसिएटस पश्चिमी नाइल वाइरस और क्यूलेक्स विन्गुई भारत में जापानी इन्फेलाइटिस फैलाते हैं। सिमुलिडी कुल के छोटे शरीर वाले 'मिजेज' को काली मक्खियों के नाम से जाना जाता है। कुछ काली मक्खियों को छोड़कर अधिकतर मक्खियाँ गर्म रक्तकायें कशेरुकी जन्तुओं को काटती तथा उनके रक्त को चूसती हैं। इस तरह की आदत के फलस्वरूप काली मक्खियाँ कई रोगवाहक जीवों को फैलाती हैं जैसे स्तनधारियों में फाइलेरियल निमैटोड और पक्षियों में प्रोटोजोआ के परजीवी। ये ट्रिपनोसोमिएसिस के प्राकृतिक वाहक भी होते हैं।

साइफनकुलैटा (ऐनोप्लूरा)

जू स्तनधारी प्राणियों का रक्त चूसनेवाला बाह्य परजीवी है। इस समुदाय की लगभग 450 जातियों का वर्णन किया जा चुका है। इनमें से दो जातियाँ मनुष्य तथा लगभग एक दर्जन जातियाँ घरेलू जन्तुओं को प्रभावित करती हैं। शेष जातियाँ अन्य स्तनधारी जन्तुओं जैसे बन्दर, खरगोश, चूहा, सील और हाथी इत्यादि के ऊपर पायी जाती हैं। जू की बहुत सी जातियों का वर्णन अभी भी अधूरा है। मनुष्य के ऊपर सामान्य रूप से पाया जानेवाला जू, पेडीकुलस ह्यूमनस गन्दे तरह से रहनेवाले मनुष्यों को ग्रस्त करता है। मनुष्य के सिर पर पाया जानेवाला लाइस पी. ह्यूमनस कैपिटिस सिर के बालों में और पी. ह्यूमनस कारपोरिस शरीर के बालों में पाया जाता है। शरीर पर रहनेवाला जू सिर पर पाए जानेवाला जू से अधिक भुखमरी के प्रतिरोधक होते हैं।

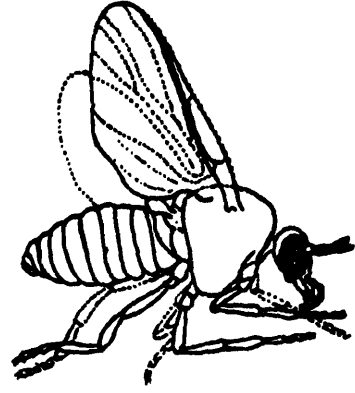
पी. ह्यूमनस बहुत अधिक चिकित्सा महत्व का होता है। यह न केवल खुजली के साथ ही साथ ज्वलनशील प्रतिक्रिया वाला होता है, बल्कि यह एपिडेमिक टाइफस, ट्रेच ज्वर और एपिडेमिक रिलैप्सींग ज्वर को भी फैलाता है। क्रैब लाइस (चित्र 1) प्यूबिक क्षेत्र में पाया जाता है लेकिन इससे कोई बीमारी नहीं होती है।

एरेकनिडा

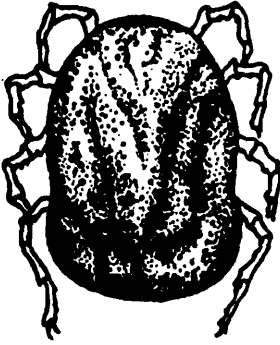
टिक्स और माइट्स (एकेराइना) गण रक्त चूसक आर्थ्रोपोडा का दूसरा महत्वपूर्ण समुदाय है। सख्त टिक्स (इक्सोडीडी कुल) और कोमल टिक्स (अर्गेसाइडी कुल) दोनों ही गर्म रक्त वाले धिड़ियों और स्तनधारी जन्तुओं तथा ठंडे रक्त वाले (भेक और सरीसृप) कशेरुकी जन्तुओं के ऊपर बाह्य परजीवी के रूप में पाये जाते हैं। दोनों लिंग परजीवी होते हैं। उनमें से अनेक प्रोटोजोन और कुछ सूखा रोग वाली बीमारी फैलाने के वाहक होते हैं। कुछ जातियाँ, जन्तुओं तथा मनुष्य में खतरनाक लकवा की बीमारी भी फैलाती हैं।



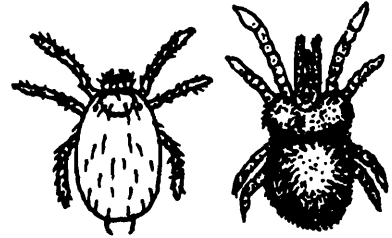
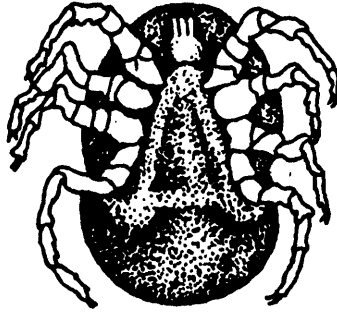
11



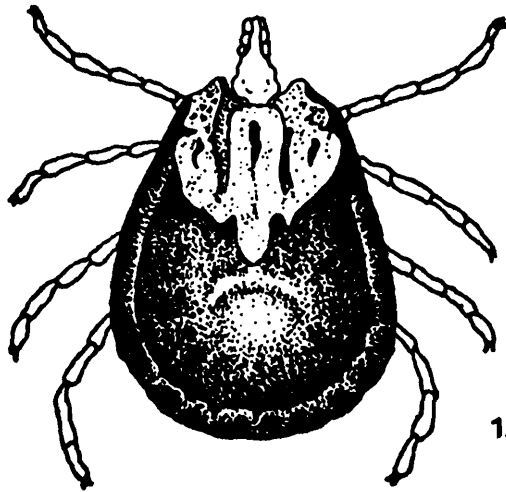
12



13



14



15

11. फ्लेबोटोमस आरजेन्टिपस (सैंड फ्लाई या रेत की मक्खी); 12. सिमुलियम इन्डीकम (डिपडिम मक्खी); 13. आनीफोडोरस सेविग्रियाइ (ऊपर तथा नीचे); 14. ट्राम्बीक्युला डीलैण्डिस (लार्वा और निम्फ); 15. डर्मसेन्टर एन्डरसोनी (मादा)

टिक्स भी तरह-तरह के जन्तुओं में बीमारी फैलाते हैं जैसे बबेसिया, रिकेट्सिया और भीलेरिया के पैथोजेन। टिक अपना जीवन चक्र एक पोषक, द्विपोषक या त्रिपोषकों में पूरा करते हैं। इस आधार पर उन्हें तीन प्रकार में बांटा गया है। इक्सोडिड टिक्स के 9 वंश भारत में पाए जाते हैं।

इक्सोडस होलोसाइकलस पश्चिमी आस्ट्रेलिया और भारत में पाया जाता है। आस्ट्रेलिया में ये कुत्तों, कंगारू, चूहों और चिड़ियों के परजीवी के रूप में पाये जाते हैं। मनुष्य भी कभी-कभी इस रोग का शिकार होता है।

भारत में एच. वाइस्पाइनोसा तरह-तरह के घरेलू और जंगली जानवरों पर पाये जानेवाला टिक्स है। यह मुख्य रूप से एशियन जाति का है परन्तु दूसरे देशों जैसे अफ्रीका में भी फैल गया है। एच. लीची, भारत में बाघ के शरीर पर पाया जाता है। एच. मोंगेमेरी उत्तरी भारत और जम्मू कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जानेवाले चोड़ों और भेड़ों पर पाया जाता है। हीमिफाइसेलिस स्पीनीजेरा बन्दरों में फैलनेवाली क्यासानूर वन बीमारी (के. एफ.डी) का मुख्य वाहक है। यह टिक्स चूहे, गिलहरी, छछून्दर, बन्दर और चिड़ियों को संक्रमित करता है। भारत के कर्नाटक राज्य में यह रोग फैला हुआ है।

डर्मैसिटर (चित्र 15) तीन पोषकवाला टिक है जो उत्तरी अमेरिका के मनुष्य और जन्तुओं को संक्रमित करता है और टाइफस रोग फैलाता है। रिपीसीफेलस की भारत में दो जातियाँ पायी जाती हैं। एक कुत्तों को और दूसरी घरेलू और जंगली जन्तुओं को संक्रमित करती है। भारत में बुफीलिस की दो जातियाँ पायी जाती हैं— बी. आस्ट्रेलिस और बी. एण्ड्रीडस। बी. आस्ट्रेलिस चौपायों का परजीवी है और भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमेरिका और अफ्रीका में पाया जाता है। ये चौपायों में पीरोप्लाजम को फैलाते हैं। टेकसाज प्वर प्राणी भारत में मुख्य रूप से बी. आस्ट्रेलिस के द्वारा फैलता है। हायलोमा इजिप्टीअम भारत में चोड़ों, ऊंटों और चौपायों पर पाया जाता है। एपोनोमा गरमेस्ट लुकेसी भारत में सर्वत्र मिलता है और सोंपों पर आक्रमण करता है। भारत में सामान्यतः जो टिक घरेलू जन्तुओं को प्रभावित करते हैं उसके कुछ उदाहरण बुफीलिस आस्ट्रेलिस, रीप सीजीनेन्स, रीप हीमिफाइसेल्वायडीस, हायलोमा इजिप्टीअक, हीमिफाइसेलिस वाइसपाइनोसा हैं।

भारत में टिक की 20 जातियाँ पायी जाती हैं जो मनुष्य को संक्रमित करती हैं और तरह-तरह की बीमारियाँ फैलाती हैं। दूसरी 8 जातियाँ घरेलू जन्तुओं को संक्रमित करती हैं। वैज्ञानिकों को टिक टाइफस के श्रीनगर, अलमोड़ा, जबलपुर, लखनऊ, मैसूर, सिकंदराबाद, पूना, इम्फल इत्यादि जगहों पर पाये जाने के ठोस प्रमाण मिले हैं। मैसूर में बूटोन्यूज प्वर और टाइफस प्वर की कुछ घटनाओं को उल्लेख किया गया है जो संभवतः टिक द्वारा ही फैले हैं। कोयल टिक कुल के सभी सदस्य परजीवी हैं और रक्तपान करते हैं। इसके दो वंश हैं— (1) अर्गास, (2) आर्निथोडोरस (चित्र 13)। इसमें पहला मुर्गों और बत्तखों को प्रभावित करता है। यह चीकेन कॉलरा और मुरगा प्लेग के वाहक का कार्य करता है। बाद वाले की जातियाँ घरेलू जानवरों जैसे भेड़, कुत्ता, बकरी, सूअर इत्यादि को प्रभावित करती हैं।

माइट्स : माइट एरेकनीडा समुदाय का सदस्य है जो मुख्यतः रक्त चूषक है और निम्नलिखित बीमारियों को फैलाता है:

डर्मेनिसस गैलाइनि : यह रक्त चूषक परजीवी है जिसके अनेक जंगली और घरेलू जन्तु पोषक हैं। यह मनुष्य को भी संक्रमित करता है और चर्म रोग तथा तीव्र जलन उत्पन्न करता है। उष्ण कटिबन्ध वाले क्षेत्रों में यह मुर्गियों का एक मुख्य परजीवी है।

ऑर्निथोनिसस बैकोली : यह सर्वत्र पाया जाता है और चूहों का मुख्य परजीवी है, यद्यपि मनुष्य को काटने के भी अनेक रिकार्ड हैं।

ऑर्निथोनिसस बर्सा : ये शीतोष्ण कटिबन्ध में पाया जानेवाला प्रमुख रक्त चूषक परजीवी है जो घरेलू मुर्गियों पर रहता है। यह उप-शीतोष्ण कटिबंध में भी पाया जाता है। यह परजीवी मनुष्य को भी काटता है और कुछ बेचैनी पैदा करता है।

ऐंट्रोलीलेप्स इजैलिस : यह सर्वत्र पाया जानेवाला परजीवी चिड़ियों के घोंसलों तथा छोटे स्तनधारी जन्तुओं पर पाया जाता है।

अरक्त भक्षी माइट्स : ये मनुष्य तथा समकक्ष जन्तुओं में बीमारी फैलाते हैं।----बहुत सी दूसरी डर्मेनिसिड जातियाँ जो साधारणतः चिड़ियों तथा छोटे स्तनधारी जन्तुओं से सम्बन्धित हैं वे या तो प्राकृतिक रूप से या प्रायोगिक दशाओं द्वारा मानव पैथोजेन्स से ग्रसित होती हैं।

कुछ माइट्स संरक्षित खाद्यान्नों के शत्रु भी हैं तथा कई स्पर्श डर्मेटाइटिज फैलाने का कारण भी होती हैं। माइट की तीन जातियाँ, पोलैण्ड इच (गेहूँ पर), बेकर्स इच और ग्रोसर्स इच की उत्तरदायी हैं। ग्लाइसीफैगस डीस्ट्रम्बर भूसे में बहुतायत से मिलता है और मनुष्यों में राइनाइटिस, आंखों की जलन, इत्यादि रोग फैलाते हैं। मूत्राशय और छुद्रांत्र को कुछ एक्कैराइडी संक्रमित करते हैं। एक्कैराइडी और पाइरोग्लीफाइडी कुलों की जातियाँ फेंफड़ों के दोषों वाले रोगी के थूक में मिलती हैं।

डर्मेटोफैगवायडिज फेराइनी और डी. प्टेरोनिसाइन्स चिड़ियों और स्तनधारियों के ऊपर पाये जाते हैं। इनका मुख्य भोजन चर्म डैंडर है। ये खाद्यान्न गृहों और आवासी घरों के पास की धूल में रहते हैं। ये माइट्स श्वसन तंत्र में एलर्जिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं जिससे मनुष्यों में दमा और राइनाइटिस की बीमारी हो जाती है।

सार्कोप्टीड्स गर्म रक्त वाले जन्तुओं के त्वचा पर परजीवी के रूप में पाये जाते हैं। इनकी जातियाँ स्तनधारियों में मैनेज का कारण होती हैं और कुछ पक्षियों में “स्केली लेग” का कारण होती हैं।

स्कैबीज या इचमाइट **सार्कोप्टीज स्कैबी** मनुष्यों तथा अन्य स्तनधारियों को संक्रमित करती हैं। सबसे ज्यादा प्रभावी अवस्था सम्भवतया निनिषेचित मादा होती है जो त्वचा के एपिथीलियम में घुस जाती है और प्रतिदिन दो या तीन अंडे लगभग दो महीने तक देती है।

साधारणतः कृषक पाइमोटिड्स द्वारा संक्रमित होते हैं और इनका शरीर के सभी भागों पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि माइट्स त्वचा के अन्दर नहीं घुसते हैं लेकिन उनके काटने से बड़ी खुजली होती है।

डेमोडेक्स जीनस के सदस्य (कुल-डेमोडिसाइडी) साधारणतया फालिकिल माइट कहलाते हैं, जो मनुष्य के रोम फालिकिल में घुस जाते हैं और सबक्यूटेनियस स्त्राव विशेष रूप से सीबम का भक्षण करते हैं। डी. फालिकुलोरम मनुष्य के हेयर फालिकिल्स और सिवैसियस ग्रन्थियों, विशेष रूप से नाक और आँख की पलकों में रहते हैं और कभी-कभी खोपड़ी को भी संक्रमित करते हैं।

ट्राम्बिकुलिड माइट्स (चित्र 14) की अपरिपक्व (लारवल) अवस्थाएं जो साधारणतया चिगर या लाल बग कहलाती हैं कशेरुकी प्राणियों के बाह्य परजीवी होते हैं। इनके 700 से भी अधिक जातियों का वर्णन हो चुका है जिनमें से 20 जातियाँ मनुष्य में डर्मेटाइटिस (ट्राम्बिडिओसिस या स्क्रब टाइफस) रोग फैलाती हैं या मानव पैथोजेन्स की वाहक होती हैं।

मनुष्य का सबसे भयंकर रोग जो माइट से होता है वह सी. रिकेट्सिया है। यह बोमारी पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया (भारतीय प्रायद्वीप और इन्डोनेशिया सहित), उत्तरी आस्ट्रेलिया, न्यू गिनी ओर हिन्द महासागर तथा दक्षिणी पश्चिमी प्रशांत महासागर के कुछ द्वीप समूहों के मनुष्यों में होती है। इसके मुख्य वाहक लेप्टोट्राम्बिडियम, वी. आकामुशी और एल. डीलिएन्सी नामक माइट हैं।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय प्रोटोजोआ की विविधता

अशोक कुमार दास

एवं

ध्रुव नारायण तिवारी

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

प्रोटोजोआ एक कोशिकीय सूक्ष्मदर्शीय जीव हैं। ये अधिकांशतः 5 माइक्रोन से लेकर 250 माइक्रोन लम्बाई तक पाये जाते हैं (1 माइक्रोन = 1/1000 मि.मी.)। भारतीय प्रोटोजोआ की कुछ जातियाँ की लम्बाई 500 माइक्रोन से ज्यादा होती है, उदाहरणार्थ बृहत अमीबा और पेलोमिक्सस एवं कुछ जातियों की लम्बाई 1000 माइक्रोन से भी ज्यादा पाई जाती है, उदाहरणार्थ सीलीएट। प्रोटोजोआ एक कोशिकीय होते हुए भी अपने जीवन के लिये आवश्यक सभी शारीरिक क्रियाओं को पूरा करने में सक्षम हैं।

लगभग दो दशक पहले तक प्राणी वर्गीकरण में प्रोटोजोआ को एक फाइलम के रूप में रखा गया था लेकिन स्केनिंग और इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से इनका अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हुआ कि प्रोटोजोआ एक प्राकृतिक समूह नहीं, बल्कि यह सात फाइलम्स का अन्य उच्च विषमजातीय संग्रह है। अतएव प्रोटोजोआ को सबकिंगडम के स्थान के बजाय किंगडम प्रोटिस्टा के अधीनस्थ रखा गया है।

विश्वव्यापी स्थिति :

विश्व में प्रोटोजोआ की लगभग 65000 जातियाँ जानी जाती हैं, जिनमें आधे से कुछ अधिक जीवाश्म हैं। विश्व के जीवित प्रोटोजोन्स की अनुमानित जातियों की संख्या को तालिका-1 में दर्शाया गया है और उनकी तुलना भारत में पाये जानी वाली प्रोटोजोन्स की जातियों की संख्या से की गई है।

तालिका-1: जीवित प्रोटोजोन प्राणियों की जातियों की संख्या

संघ	स्वतंत्र रूप में पाये जाने वाले		परजीवी, सहजीवी एवं एवं सहभोजी रूप में पाये जाने वाले		योग	
	विश्व में	भारत में	विश्व में	भारत में	विश्व में	भारत में
सार्कोमस्टीगोफोरा	16,400	847	2,050	233	18,450	1,080
सीलीयोफोरा	4,700	400	2,500	200	7,200	600
एपीकमप्लेक्सा	—	—	4,550	750	4,550	750
माइक्रोस्पोरा	—	—	550	20	550	20
मीक्सीजोआ	—	—	500	125	500	125
एसीटोस्पोरा	—	—	कुछ जातियाँ	2	कुछ जातियाँ	2
लेबीरीन्थोमार्फा	—	—	कुछ जातियाँ	—	कुछ जातियाँ	—
योग	21,100	1,247	10,150	1,330	31,250	2,577

उपरोक्त तालिका से यह प्रत्यक्ष है कि भारतीय प्रोटोजोआ विश्व के कुल प्रोटोजोआ समूह के लगभग 8 प्रतिशत हैं। भारतीय प्रोटोजोआ 48 प्रतिशत स्वतंत्ररूप में और 52 प्रतिशत परजीवी रूप में पाये जाते हैं।

जैविक विविधता :

भारत में अब तक ज्ञात प्रोटोजोआ के सम्पूर्ण कुल, वंश और जातियों की संख्या को तालिका-2 में दर्शाया गया है।

तालिका-2: भारत में प्रोटोजोआ प्राणियों की संख्या

समूह	अनुमानित संख्या		
	कुल	वंश	जातियाँ
संघ सार्कोमस्टीगोफोरा			
उप संघ मस्टीगोफोरा	28	60	400
उप संघ सार्कोडाइना	35	85	650
उप संघ ओपेलीनेटा	1	4	30
संघ सीलीयोफोरा	70	150	600
संघ एपीकमप्लेक्सा	20	42	750
संघ माइक्रोस्पोरा	2	4	20
संघ मिक्सोजोआ	4	12	125
संघ लेबीरीन्थोमार्फा	—	—	—
संघ एसीटोस्पोरा	1	1	2
योग	161	358	2,577

भारत की 2,577 जातियों में से 1,330 परजीवी हैं। ये परजीवी जातियाँ 585 अन्य परपोषी (होस्ट) जातियों से प्राप्त किये गये हैं, जिनका विवरण तालिका-3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-3 : प्रोटोजोआ के परपोषी (होस्ट) प्राणियों की जातियों की संख्या

परपोषी प्राणी वर्ग	परपोषी जातियों की संख्या	परजीवी प्रोटोजोआ जातियों की संख्या
स्तनपायी	70	150
पक्षी	120	260
सरीसृप	25	110
जलस्थलचर	25	110
मछली	125	350
अकशेरुकी	220	350
योग	585	1,330

यह उल्लेख करना उचित है कि भारतवर्ष में स्वतंत्ररूप में पाये जाने वाले प्रोटोजोआ मीठेजल, खाराजल, समुद्रीजल, मिट्टी और मौस से प्राप्त किये जाते हैं। भारतीय परजीवी प्रोटोजोआ (जिसमें सहजीवी और सहभोजी भी हैं) विविध परपोषी तन्तुओं से प्राप्त किये गये हैं, जिन्हें पाँच श्रेणियों में रक्खा जा सकता है; (i) अधिजान्तव, जो सामान्यतः स्थानबद्ध बाह्यसहभोजी जलीय जानवरों के शारीरिक सतह पर पाये जाते हैं, (ii) ल्यूमेनीकोल्स, जो कशेरुकी और अकशेरुकी परपोषियों की आहार नाल में पाये जाते हैं, (iii) प्रगुही, जो अकशेरुकियों खासकर ऐनेलीडा के प्रगुहा (सीलोम) में पाये जाते हैं; (iv) ऊतकजीवी, जो कशेरुकी और अकशेरुकी परपोषियों के विभिन्न अंगों के लसीका (लीम्फ) और ऊतक में पाये जाते हैं और (v) समलजन्तु, जो बहुत से जानवरों के मल पदार्थ और पानी में सड़ रहे अव्ययी पदार्थों में पाये जाते हैं।

प्रोटोजोआ भौगोलिक वितरण में सर्वव्यापी हैं। ये प्रत्येक संभव प्राकृतिक वास स्थानों में प्राप्त हैं, जैसे गहरे महासागरों के तलों से लेकर पहाड़ों की ऊँची चोटियों और गर्म झरनों से लेकर दक्षिणीध्रुव के बर्फीले क्षेत्रों तक। भारत में इनकी जैविक विविधता पर कम कार्य हुआ है। स्वतंत्ररूप में पाये जाने वाले प्रोटोजोआ की बहुत से भारतीय राज्यों में पूर्णरूप से खोज नहीं की गई है।

उपयोगिता :

प्लवक (प्लैन्कटोनिक) प्रोटोजोआ (खासकर प्लैजीलेट और सीलीएट) जलीय पारितंत्र में खाद्यजल के मूल उपभोक्ता की भूमिका निभाते हैं। नेरीटांचली क्षेत्र के तलों में रहनेवाले समुद्री

प्रोटोजोआ भी (फारैमीनीफेरा और रैडियोलैरिया) वेलांचली निक्षेप के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। मिट्टी में रहने वाले प्रोटोजोआ (खासकर राइजोपोड और सीलीएट) पत्तों के कूड़े-कचरों तथा सूक्ष्मजीवियों से मिलकर वनों के फर्श को आद्रीकरण और खनिजन में सहायता करते हैं। कुछ प्रोटोजोआ (फ्लैजीलेट और सीलीएट) नदी नालियों के गंदे तथा सड़े हुये पानी को प्राकृतिक जल में रूपान्तरित करने में सहायक होते हैं।

बहुत से ऐसे परजीवी प्रोटोजोआ हैं जो मनुष्य तथा घरेलू जानवरों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों को फैलाया करते हैं। उदाहरणार्थ प्लाज्मोडियम फैलसीपैरम और प्लाज्मोडियम वाईवाक्स जातियाँ मनुष्य में मलेरिया रोग उत्पन्न करते हैं; लिसमानिया की दो जातियाँ (लिसमानिया डोनाभानी और लिसमानिया ट्रापिका) कालाजार और उष्णकटिबंधीय घाव उत्पन्न करते हैं; एन्टामीबा हिस्टोलिटिका और जियार्डिया लैम्बलिया क्रमशः आमातिसार तथा पतला दस्त बीमारियाँ पैदा करते हैं। कुछ काकसीडिया की जातियाँ कुक्कुट पालन में काकसीडियता, मछलियों के रोगों में मीक्सोजोआ; तथा रेशम के कीड़ों में माइक्रोस्पोरा पेब्राइन रोग करने के उत्तरदायी हैं।

अंततोगत्वा प्रोटोजोआ की भूमिका प्रकृति में महत्वपूर्ण है। एक तरफ वनस्पति एवं जन्तु समुदाय की स्थिरता एवं उर्वरता के लिए आवश्यक उर्जा अनुरक्षण कार्बन एवं लवण पदार्थों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, तो दूसरी तरफ मनुष्य एवं वन्यजीवों में कुछ भयंकर बीमारियाँ भी फैलाते हैं।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

मीठे पानी के जू प्लैंकटन (प्राणिप्लवक)

कृष्णमूर्ती वैकटरमण एवं धुवनारायण तिवारी

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

प्राणिप्लवक वे सूक्ष्म प्राणी हैं जो स्वतंत्र रूप से तथा स्वेच्छापूर्वक खुले जल में तैरते हुए पाए जाते हैं। इनमें अधिकाधिक संख्या क्रस्टेशियाई प्राणिप्लवकों की होती है जिनमें क्लैकियोपोड, कोपीपोड, आस्ट्रेकोड तथा डेकापोड के लार्वा सम्मिलित हैं।

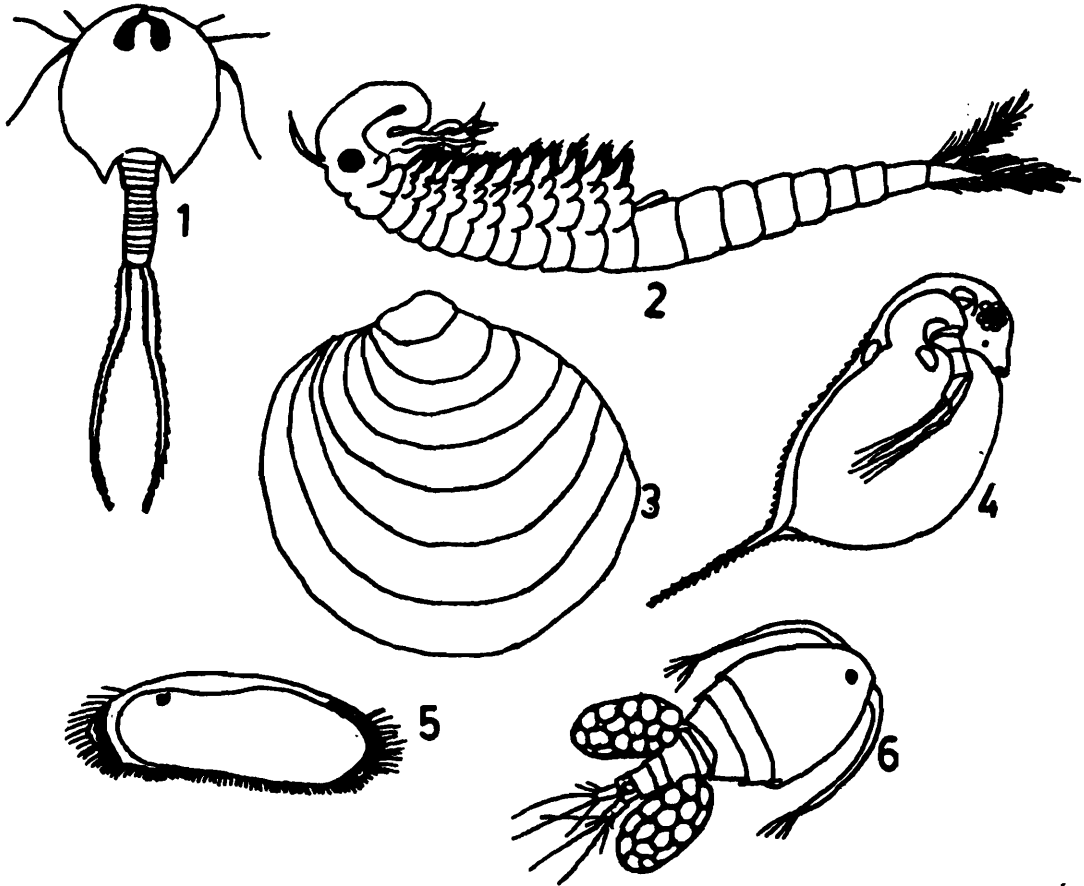
पादप्लवक सौर्य ऊर्जा की सहायता से कार्बन डाईआक्साइड तथा जल के मिश्रण में रासायनिक क्रिया द्वारा जटिल खाद्य पदार्थ तैयार करते हैं। प्राणिप्लवक प्राथमिक उपभोक्ता हैं जो इन पादप्लवकों पर भोजन के लिए निर्भर हैं। छोटे-छोटे मांसाहारी जन्तु इन प्राथमिक उपभोक्ताओं का भक्षण करते हैं और बड़े मांसाहारी, छोटे मांसाहारी पर भोजन के लिए निर्भर होते हैं। इस चक्र को 'भोजन श्रृंखला' कहते हैं। मत्स्य पालन में प्राणिप्लवकों का महत्वपूर्ण स्थान है। वे न केवल मत्स्य फ्राई तथा प्रौढ़ मत्स्य के आहार ही हैं, बल्कि वे इन्हें बहुत ही रुचिकर हैं। कुछ प्राणिप्लवक मत्स्य उद्योग से सीधे सम्बन्धित हैं।

क्रस्टेशियाई प्राणिप्लवकों को रेशम, अरगन्डी, टेरीलीन, नाइलोन आदि सिन्थेटिक रेशों से बने प्लवक जाल द्वारा एकत्र किया जाता है। इन जालों के छिद्रों का आकार 35 से लेकर 335 माइक्रोन तक का होता है। बहुत प्रकार के पानी के पारखी तथा बोतलें ऐच्छिक गहराई के क्षेत्रीय एवं उदवृत्तीय प्राणिप्लवकों को इकट्ठा करने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। इनका उपयोग प्राणिप्लवकों के परिमाणात्मक तथा जनसंख्या के घनत्व के अध्ययन में भी किया जाता है। आजकल जिन पारखी यन्त्रों का जलीय शोध में प्रयोग किया जाता है और बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं, वे हैं रटनर का जलीय पारखी, क्लार्क वम्पस का जलीय पारखी और यूनिवर्सल जलीय पारखी। प्राणिप्लवकों को इकट्ठा करने के साथ ही साथ, 2-10 प्रतिशत सान्द्रता वाले फारमेलीन के घोल में स्थिर तथा परिरक्षित कर लिया जाता है। सही पहचान के लिए प्लवकों की परीक्षा सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के उच्च आवर्धन पर की जाती है।

क्रस्टेशिया पृथ्वी के इतिहास में काफी पूर्वकाल से जाने जाते हैं। इनकी आज विश्व में लगभग 40,000 जातियाँ पाई जाती हैं (मूर और मैकार्निंक 1969)। क्रस्टेशिया का वर्गीकरण विवादास्पद है। कुछ इसे आर्थ्रोपोडा की एक श्रेणी मानते हैं तथा दूसरे इसे उपसंघ या संघ का दर्जा प्रदान करते हैं। इन्हीं कारणों से इस श्रेणी के वर्गीकरण में आए परिवर्तनों को इस विवरण में शामिल नहीं किया गया है। सूची-1 में भारत में पाये जानेवाले क्रस्टेशिया प्राणी प्लवकों के कुल वंश एवं अनुमानित जातियों को दिखलाया गया है।

ट्रायोप्स (एप्स) की जातियाँ जम्मू-काश्मीर, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और तामिल नाडु के स्वच्छ जलाशयों में पाई जाती हैं। यह उत्तरपूर्वी भारत में नहीं मिली हैं। इसका वितरण सीमित एवं छिटपुट है। भारत में क्रस्टेशियाई जैवविविधता का अध्ययन स्वच्छ जलीय जातियों पर ही केन्द्रित है। इनमें क्लेडोसिरा, एनोस्ट्रेका, कानकास्ट्रेका और नोटोस्ट्रेका आते हैं। दूसरे वर्ग जैसे कोपीपोडा, आस्ट्रेकोडा और एम्फीपोड्स पर शोध कार्य अभी भी अधूरा है।

मनुष्य ने वर्तमान काल में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रस्टेशियाई जन्तुओं के वितरण को प्रभावित किया है। भारत में दूसरे देशों से लाई गई जातियाँ बहुत कम हैं। भारत में खाद्यान्नों



चित्र: 1. ट्रायोप्स (नोटोस्ट्राका); 2. फेयर थ्रिप्स (एनोस्ट्राका); 3. क्लाम थ्रिप्स (कोन्कोस्ट्राका); 4. डैफनिया (क्लेडोसिरा); 5. सीड थ्रिप्स (ओस्ट्राकोडा); 6. साईक्लोप्स (कोपीपोडा)।

का आयात क्रस्टेशियाई प्राणिप्लवकों के देश में प्रवेश का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार कुछ जातियों का जैसे डैफनिया सिगलिस, एक या दो स्वच्छ जलीय आस्ट्रोकोडा तथा कुछ अन्य क्लैडोसिरन्स का भारत में प्रवेश हुआ है। प्रवासी चिड़ियों द्वारा भी दूसरे देशों से प्राणिप्लवकों की कुछ जातियाँ भारत में आई हैं।

बहुत से क्रस्टेशियाई प्राणिप्लवक प्रदूषण सूचक हैं। इनमें से एक सामान्य क्लैडोसिरन प्राणिप्लवक, मोड़ना माइकुरा की स्वच्छ जल में मौजूदगी प्रदूषण को दर्शाती है। दूसरी जाति डैफनिया, सूक्ष्म होने की वजह से आनुवंशिक अध्ययन के काम में आती है। इनका तरीर पारदर्शी होने से इनके विकास और विभिन्न अंगों की क्रियाओं तथा अंगों के जोड़-तोड़ का अध्ययन बिना चीर-फाड़ के सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा किया जा सकता है। इन प्राणिप्लवकों के अध्ययन से पता चला है कि ये भारत में उत्तक संवर्धन, आनुवंशिक इन्जीनियरिंग और कृषि के अध्ययन में बहुत उपयोगी हैं।

तालिका-1 : भारत तथा विश्व में स्वच्छ जलीय प्राणिप्लवकों की संख्या

प्राणी वर्ग	विश्व में			भारत में		
	कुल	वर्ग	जातियाँ	कुल	वर्ग	जातियाँ
उपश्रेणी ब्रान्कियोपोडा						
गण नोटोस्ट्राका	1	2	11	1	2	2
गण क्लैडोसिरा	11	52	450	9	40	96
गण एनोस्ट्राका	5	15	200	5	12	33
गण कान्डियोस्ट्राका	7	25	180	5	16	72
उपश्रेणी कोपेपोडा	22	96	310	15	25	60
उपश्रेणी आस्ट्रोकोडा	28	125	856	7	37	59
योग	74	315	2007	42	132	322

ब्रैन्कीयोपोड क्रस्टेशिया तथा दूसरे समूह के लार्वा जो मछलियों के भोजन के उपयोग में आते हैं स्वच्छ जल में सबसे बड़ा समूह बनाते हैं। क्लैडोसिरा एक ऐसा महत्वपूर्ण समूह है जो 75 प्रतिशत से भी ज्यादा संचित ऊर्जा को प्रजनन के उपयोग में लाते हैं और इसप्रकार इनका स्वच्छ जलीय स्थानों पर आधिपत्य है। ये सभी प्राणिप्लवक स्वच्छ जलीय वातावरण के

ट्राफिक डाइनामिक्स में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाते हैं। द्वितीय उत्पादक होने के नाते ये ऊर्जा को प्राथमिक उत्पादक से आगे की सतह तक पहुँचाते हैं। इन प्राणिप्लवकों की अनुपस्थिति में ऊर्जा का प्राथमिक उत्पादकों से आगे की सतह तक पहुँचना नामुमकिन है। बहुत से अकशेरुकियों और कशेरुकियों का भोजन श्रोत इन पर आधारित है।

मनुष्य बहुत वर्षों से इन सूक्ष्म जीवों के विभिन्न आवासों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग करता आया है। जलीय वासस्थानों से घरेलू तथा औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। साथ साथ याता-यात, पनबिजली, कूड़ेकरकट तथा गन्दे नालों का बहिष्कार का साधन, भोजन के लिए मछली पकड़ना और अन्य मनोरंजन तथा सौन्दर्यपरक स्थानों की तरह उपयोग होता है। अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के फलस्वरूप मनुष्य ने पूर्व विद्यमान स्वाभाविक आवासों में परिवर्तन कर लिया है जिससे हमने कुछ जलीय जीवों को नष्ट कर दिया है तथा कुछ की संख्या तथा विस्तार में कमी आ गई है। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार कुछ जैव जातियों को परोक्ष में तथा कुछ को अवैधानिक रूप में एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में ले जाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शनैः शनैः जलीय आवासों के नष्ट होने से अद्वितीय तथा उपयोगी जातियों का विनाश होता जा रहा है जो कुछ वर्षों में नगण्य हो जायेंगी।

पारिस्थितिकी विविधता

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

मिट्टी में प्राणी विविधता

आशीष कुमार हजारा

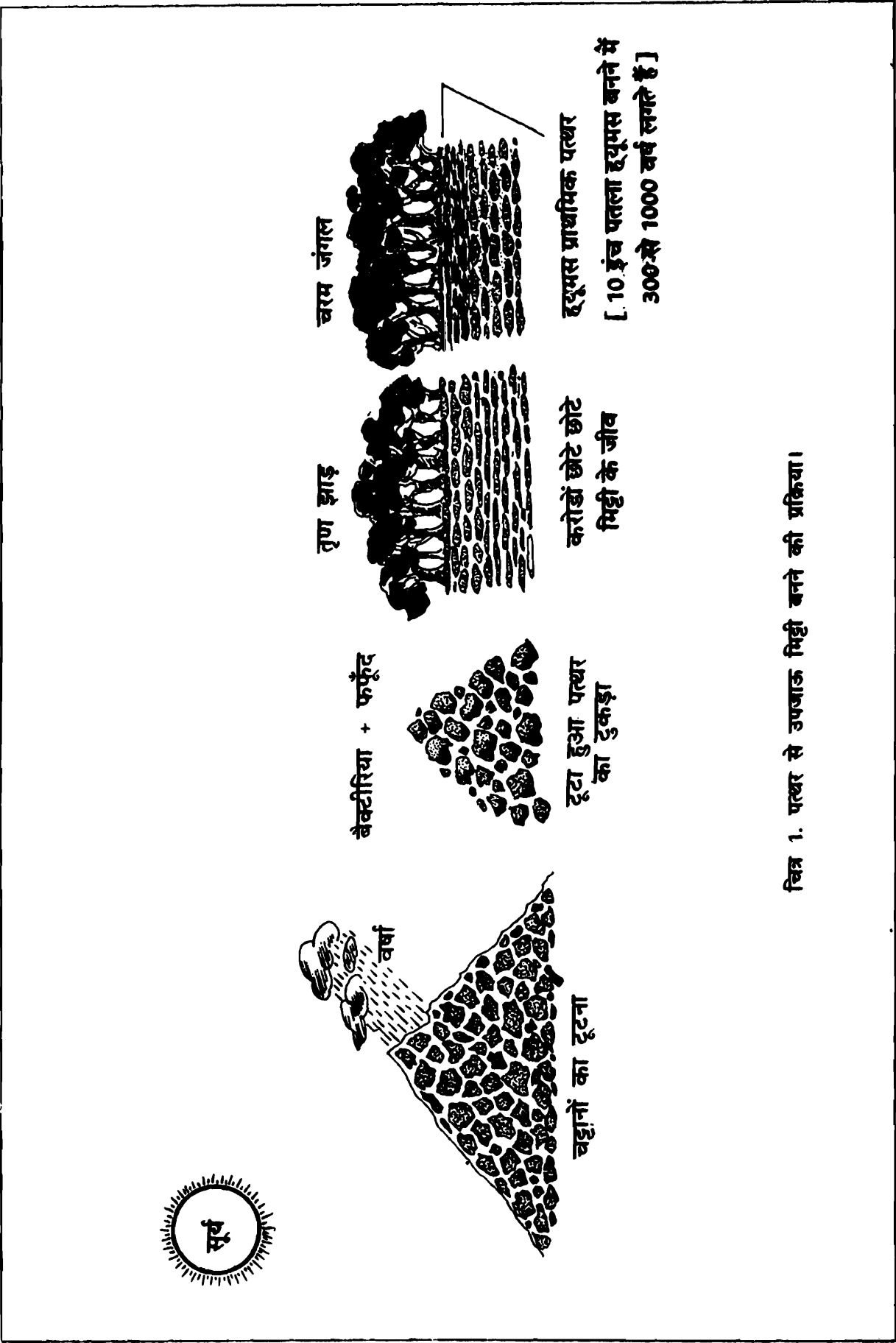
भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, कलकत्ता

भूमिका

मिट्टी, जल, वायु और सूर्य की किरणों, ये चार प्राथमिक सम्पदा भूमंडल में मौजूद हैं। ये चारों चिरस्थायी सम्पदा हैं। जन्तु और पेड़-पौधे भूमंडल पर बहुत प्राचीनकाल से पैदा होते रहे हैं और खत्म भी होते रहते हैं, इसलिये इनको पुनःस्थापन सम्पदा कहते हैं। स्थलीय पारितंत्र में मिट्टी सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है। मिट्टी के ऊपर ही सभी जैविक जन्तु और पेड़-पौधे फलते-फूलते हैं। इसके अलावा मिट्टी पेड़-पौधों के लिए भोजन और पानी संरक्षित रखती है। यह सर्वविदित है कि मिट्टी विभिन्न प्रकार के पत्थरों का सूक्ष्मरूप है। ये सूक्ष्मकण प्रकृति में वायु और जल द्वारा बहुत दूर तक बहा कर ले जाये जाते हैं। समयानुसार मिट्टी के साथ पेड़-पौधों के विभिन्न अंग (पत्तियाँ, शाखायें, फूल आदि) धीरे-धीरे मिलकर ह्यूमस (नमीयुक्त खाद मिट्टी) बनाते हैं। ह्यूमस मिट्टी के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि करीब दस इंच ह्यूमस तैयार होने में 300 से 1000 वर्ष तक का समय लगता है। मिट्टी के अंदर रहने वाले अरबों सूक्ष्मजीव मिट्टी बनने की प्रक्रिया में सहायक होते हैं। ह्यूमस मिट्टी की पारगम्यता को बढ़ाता है, मिट्टी के अंदर वायु जाने में सहायता करता है एवम मिट्टी के ताप को संतुलित करता है। इसलिये ह्यूमस को मिट्टी का “प्राण” कह सकते हैं। ह्यूमस बनने में मिट्टी के अंदर रहने वाले सूक्ष्म प्राणियों एवम सूक्ष्म वनस्पतियों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है (चित्र संख्या-1)।

मिट्टी की उत्पत्ति

प्राथमिक रूप से पत्थर तीन प्रकार के होते हैं : (1) अग्नेय पत्थर : अग्नेय पत्थर ज्वालामुखी से उत्पन्न लावा से बनते हैं; (2) आवसादी पत्थर : ये पत्थर लावा से टूटकर सूर्य की किरणों और वातावरण से क्रिया करके धीरे-धीरे पत्थर का रूप धारण कर लेते हैं; एवम् (3) रूपांतरित पत्थर : ये पत्थर अग्नेय पत्थरों और आवसादी पत्थरों में बहुत ज्यादा ताप और दबाव के कारण बनते हैं। मिट्टी बनने में इन तीनों प्रकार के पत्थरों के उपर वायु,



चित्र 1. पत्थर से उपजाऊ मिट्टी बनने की प्रक्रिया।

जल, बर्फ, ताप, गुरुत्व बल एवम् जैविक पदार्थों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। एक सामान्य सूत्र से हम मिट्टी बनने की प्रक्रिया को इस प्रकार दिखा सकते हैं :—

एस = एफ (सी, ओ, आर, टी, पी), जिसमें कि

- एस = सोइल (मिट्टी)
- एफ = फंक्शन (क्रिया)
- सी = क्लाइमेट (जलवायु)
- ओ = ओर्गानिज्म (जैविक पदार्थ)
- आर = रिलीफ (ऊँचाई)
- टी = टाइम (समय)
- पी = पेरेन्ट राक (प्राथमिक पत्थर)

इसमें जलवायु और जैविक पदार्थ गतिशील कारक हैं, परन्तु ऊँचाई, समय और प्राथमिक पत्थर निष्क्रिय कारक हैं।

मिट्टी का गठन

मिट्टी के गठन में बालू, चिकनी मिट्टी और पांशु का विशेष हिस्सा होता है। इस तरह से मिट्टी का गठन निम्न रूपों में होता है : (1) बालू (2) दोमटी बालू (3) दोमटी (4) चिकनी दोमटी (5) चिकनी दोमटी बालू (6) पांशु तथा (7) दोमटी पांशु (चित्र संख्या -2)।

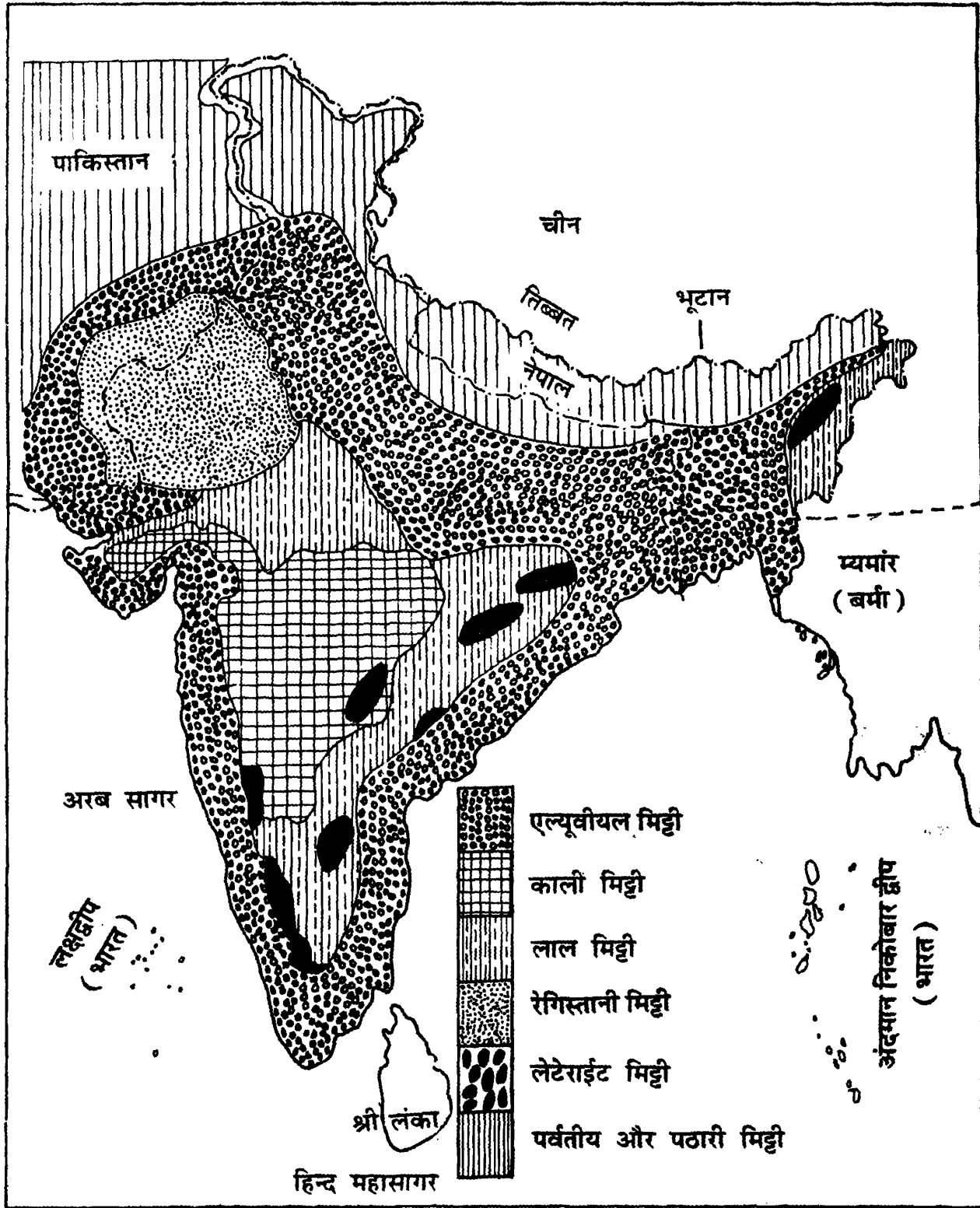
मिट्टी परिच्छेदिका

मिट्टी को खड़ा (उर्ध्व) काटने से जो विभिन्न प्रकार के स्तर पाये जाते हैं, उन्हें परिच्छेदिका कहते हैं (देखें चित्र-3)। सबसे उपरी सतह को A₀ स्तर कहते हैं, यहाँ पर मूलतः ताजा पेड़ की पत्तियाँ और घास पाये जाते हैं। A₀ के नीचे के स्तर को F स्तर कहते हैं, यहाँ पर ऊपरी स्तर में पाये जानेवालों पदार्थों का किण्वन (फर्मेंटेशन) होता है। इस के बाद के स्तर को H स्तर कहते हैं। इस स्तर में ह्यूमस बनता है। इस ह्यूमस स्तर में ही मिट्टी में पाये जाने वाले सभी जीव पाये जाते हैं। इसके अलावा भी मिट्टी के कुछ स्तर होते हैं, जिनके विषय में चर्चा इस निबंध में आवश्यक नहीं है (चित्र संख्या -3)।

मिट्टी में प्राणी विविधता

यदि हम मिट्टीको देखते हैं तो लगता है कि इसमें जीवन नहीं है, ये बेकार की चीज है, जो कि सत्य नहीं है। हम यदि एक मुट्ठी मिट्टी को लें और उसका परीक्षण करें तो हम पाते हैं कि इस एक मुट्ठी मिट्टी में ही सैकड़ों जीव हैं, जो एक दूसरे पर निर्भर हैं और अपना जीवन चक्र चला रहे हैं।

मिट्टी में रहने वाले जीवों को दो भागों में बाँटते हैं :



चित्र 2. भारत और उसके आस-पास के देशों की मिट्टी का गठन।

(1) वनस्पति जीव

(2) प्राणी जीव

प्राणी जीव को पुनः दो भागों में बाँटते हैं : (1) स्थूल प्राणी, (2) सूक्ष्मदर्शी प्राणी।

स्थूल प्राणी में मुख्यतः (i) चूहा, (ii) छुछुन्दर, (iii) बड़े-बड़े कीड़े, (iv) कनगोजर, (v) लकड़ी का जूँ, (vi) मकड़ी, (vii) शतपाद, (viii) घोंघा, (ix) केंचुआ इत्यादि पाये जाते हैं।

सूक्ष्म प्राणी में मुख्यतः : (i) एककोशिय प्राणी, (ii) कृमि, (iii) रोटीफर, (iv) कोलेम्बोला, (v) प्रोटुरा, (vi) डार्फ्लुरा, (vii) थाईसुनुरा, (viii) एकरीना (माइट) इत्यादि पाये जाते हैं। उपरोक्त मिट्टी के प्राणी यदि मिट्टी में समान मात्रा में हों तो वे मिट्टी को स्वस्थ और उर्वरक बनाते हैं। मुख्यतः केंचुआ और मिट्टी के सूक्ष्म प्राणियों का मिट्टी को उर्वरक बनाने में बहुत ज्यादा योगदान होता है। केवल केंचुआ ही हम देखते हैं कि मिट्टी के उर्वरक होने में अत्यधिक सहायक है। वैज्ञानिकों ने परीक्षण किया है कि उपजाऊ भूमि के एक एकड़ क्षेत्र में 13,000 से लेकर एक लाख तक केंचुआ पाये जाते हैं। परीक्षण में ये भी पाया गया है कि एक एकड़ जमीन में एक वर्ष में केंचुए 15 टन तक मिट्टी को पचा लेते हैं। ये भी देखा गया है कि एक वर्ष में एक एकड़ जमीन में केंचुआ अपना केंचुल (कास्ट) 16 हजार टन तक छोड़ता है, जो कि जैविक उर्वरक के रूप में मिट्टी के लिए अत्यधिक लाभकारी होता है (चित्र संख्या-4)।

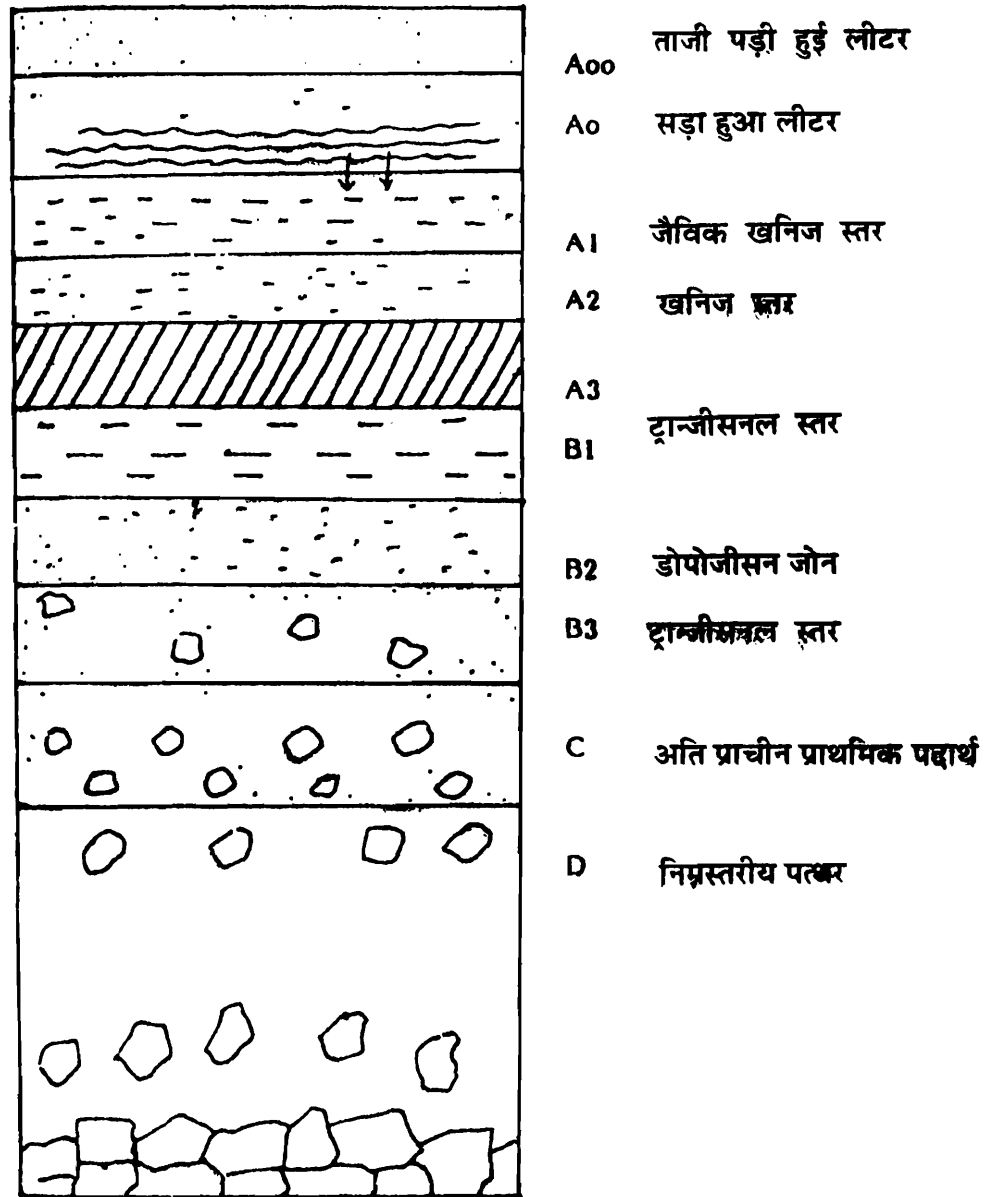
मिट्टी के प्राणियों का संख्यात्मक विश्लेषण

विभिन्न प्रकार के मिट्टी में पाये जाने वाले प्राणियों का संख्यात्मक विश्लेषण निम्न प्रकार से है:

सारणी 1. : मिट्टी में प्राणियों की संख्या

वर्ग	संख्या
बैक्टीरिया	1,000,000,000/ ग्राम
एक्टीनोमाइसीटीज	5,000,000/ ग्राम
प्रोटोजोआ (एक कोशिय जीव)	500,000/ ग्राम
एलगी (काई)	200,000/ ग्राम
नेमाटोडस (कृमि)	175,000-20,000,000/ एकड़
मोलस्क (घोंघे)	50,000/ एकड़
मिरियापोडा (शतपाद)	1,000,000/ एकड़
एनालीस (केंचुए)	1,000,000/ एकड़
आर्थ्रोपोडा (कीड़े आदि)	1,000,000/ एकड़

(साठवीक 1976 के आधार पर)



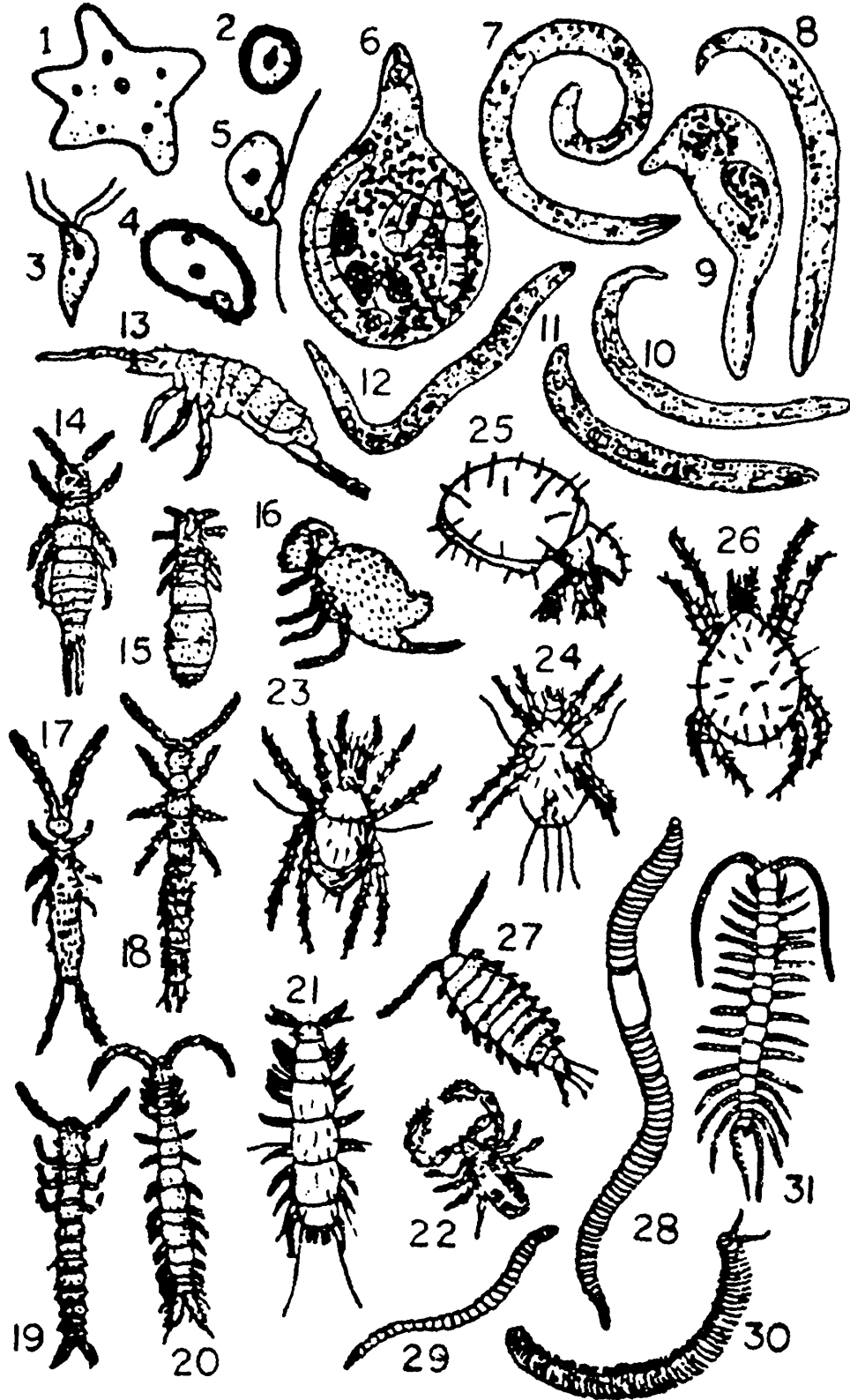
चित्र 3. मिट्टी का उर्ध्व परिच्छेद।

मिट्टी के प्राणियों में विविधता :

पहले ही कहा जा चुका है कि मिट्टी वनस्पति और प्राणियों (जैविक और मृत पदार्थों) से बनती है। इसमें असंख्य सूक्ष्म मिट्टी की प्राणी जातियाँ शामिल हैं। ये असंख्य मिट्टी के प्राणी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। कुछ मिट्टी के प्राणी शाकाहारी होते हैं और कुछ मांसाहारी, जो दूसरे प्राणियों को खाते हैं। निम्नलिखित सारणी दर्शाती है कि भारत और विश्व में मिट्टी के अंदर रहने वाले प्राणियों की कितनी विविधता है :—

सारणी- 2 : मिट्टी के अकशेरुकी प्राणियों की जातियाँ

वर्ग	जातियों की संख्या			टिप्पणी
	विश्व में	भारत में	% भारत में	
प्रोटोजोआ	31250	2577	8.24	मिट्टी के अतिरिक्त भी
नेमाटोडा	25000	2350	9.40	
मोलस्का	80000	5042	6.30	
ऐनीलीड (ओलीगोकीटा)	4000	585	14.82	
आर्थ्रोपोडा				15-20% जातियाँ केवल भारत में मिलती हैं।
क्रस्टेशिया (आइसोपोडा)	4000	200	5.00	
इनसेक्टा				
थाइसोनुरा	1250	23	1.84	
डार्फपुलुरा	16	23	4.50	
प्रोटुरा	260	20	7.69	
कोलेम्बोला	5000	200	4.00	
कोलीयोप्टेरा				
स्टाफाइलिनीडी	30000	154(?)	0.74	
स्काराबीडी	27500	160(?)	0.81	
डीपलोपोडा (मिलीपीड)	7500	162	2.16	
काइलोपोडा (सेन्टीपीड)	3000	100	3.33	
स्यूडोएसकार्पियोनीडा	2300	100	4.35	
एकरी				
मिट्टी की मेसोसटीगमाटा	4000	110	2.7	
क्रोपटोस्टीगमाटा	6000	320	5.3	



चित्र 4. मिट्टी के कुछ महत्वपूर्ण प्राणी ।

1-5 प्रोटोजोवा; 6-12 नेमाटोडस; 13-16 कोलेम्बोला; 17. केम्पोडिया; 18. जैपिक्स;
19. एनाजैपिक्स; 20. सीमफाईला; 21. प्रोपोडा 22; 22. स्यूडोस्कार्पियन; 23-26. माईटस;
27. वुड लाउस; 28. अर्थवर्म; 29. पाँटवर्म; 30. मिलीपीड; 31. सेंटीपीड।

उपरोक्त सारणी से पता चलता है कि मिट्टी के प्राणियों का विस्तार और संख्या पेड़-पौधों की पत्तियाँ, मिट्टी की आर्द्रता, मिट्टी का ताप और बहुत से रासायनिक पदार्थ जैसे : नाइट्रोजन, फास्फोरस, कार्बनिक यौगिक, पी. एच. इत्यादि पर निर्भर करता है। इसी वजह से यह देखा गया है कि इस तरह के प्राणी अधिकतर उष्णकटिबंधीय वनों में अधिक पाये जाते हैं। इस तरह के अधिकांश वन विकासशील देशों में ही अधिक संख्या में हैं; किन्तु दुःख की बात यह है कि इस तरह के वन विकास के नाम पर काटे जा रहे हैं। वैज्ञानिकों द्वारा परीक्षण में पाया गया है कि प्रति वर्ष करीब 50,000 मिट्टी की जातियों का विनाश इन वनों के काटने से हो रहा है। भारत में उष्णकटिबंधीय वन ज्यादातर उत्तर पूर्वी भारत, हिमालय के तराई क्षेत्र, पश्चिमी घाट, मध्य भारत और दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

उपसंहार

उपरोक्त आलोचना से यह स्पष्ट है कि मिट्टी के अंदर रहनेवाले जीव मिट्टी के जीवन और उसकी उर्वरता के लिये आवश्यक अंग हैं। किन्तु वर्तमान समय में मिट्टी को कीटनाशक दवायें, औद्योगिक वर्जित पदार्थ, तरह-तरह के प्लास्टिक की वस्तुयें आदि मिट्टी को प्रदूषित करते हैं। जिससे मिट्टी के अंदर रहने वाले प्राणियों का विनाश हो रहा है। मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है। इसी कारण से मिट्टी कुछ-कुछ दिनों के अंदर ही बंजर भूमि बन जाती है। मिट्टी के प्राणियों की विविधता को संतुलित रखने के लिए निम्नलिखित तरीकों को अपनाना पड़ेगा :—

- (1) अधिक से अधिक मात्रा में जैविक उर्वरकों का व्यवहार करना होगा।
- (2) वनों को संरक्षण देना होगा।
- (3) वर्जित पदार्थों को पुनः उपयोग योग्य बनाना होगा।
- (4) कीटनाशक दवाओं का कम उपयोग करना होगा।
- (5) पहाड़ी अंचल में झूमखेती को बंद करना होगा।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

हिमालय (उत्तर प्रदेश) की प्राणि-विविधता

अरुण कुमार

उत्तर प्रादेशिक केन्द्र
भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,
देहरादून 248195

भूमिका

हिमालय धरती माँ के पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र का एक अविकल अंग है। इसकी रचना अधिकतर समानान्तर पर्वत श्रृंखलाओं के परस्पर मिलकर विशाल रूप धारण करने से हुई है। हिमालय भारत के मैदानी भाग को उत्तरी तिब्बत तथा मध्य एशिया से विभक्त करता है। इसकी पर्वत मालाएँ पूरब में बर्मा के उत्तरी भाग तथा पश्चिम में लगभग अफगानिस्तान की सीमा तक फैली हुई हैं। हिमालय से तीन विशाल नदियाँ सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र निकलती हैं तथा कई ग्लेशियर तथा उष्ण कटिबंध झीलें मौजूद हैं। इस उच्च स्थान की जलवायु में आर्द्रता ठंड को दक्षिणी पश्चिमी मानसून, गर्म प्रदेशों से जुड़ी पर्वतमालाएँ, समीपवर्ती प्रदेशों सुखे स्थानों की घटियों की नदियाँ प्रभावित करती हैं। हिमालय अपनी भौतिक एवं जलवायु की दशा की विभिन्नताओं के कारण इन उप प्रायद्वीप में प्राणियों एवं वनस्पतियों से परिपूर्ण एक उत्कृष्ट पारिस्थितिकी तंत्र उपलब्ध कराता है, जो कि देश के समतल की जैविक संरचना से संबंधित विभाजन व्यवस्था की स्पष्ट रेखा प्रदर्शित करता है।

अतः भारत की जीव भौगोलिकता में हिमालय का पारिस्थिकी तंत्र पूरी तरह स्थापित है तथा इस क्षेत्र के जीव संसाधनों के बारे में किसी सूचना का महत्व धिरकाल तक बना रहेगा।

क्योंकि हिमालय के पारिस्थितिकी तंत्र में जीव विविधता बहुत विस्तीर्ण है, इस लिए इस क्षेत्र में भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण ने हिमालय की इस विविधता का पूर्णतया अध्ययन करने के लिए कई केन्द्रों की स्थापना की है। जैसे कि क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र सोलन (हि.प्र.) जिसका कार्य क्षेत्र उत्तरी पश्चिमी हिमालय (जम्मू काश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश) तक के प्राणि संघटकों

का' अध्ययन करना है। इसी प्रकार पश्चिमी हिमालय (गढ़वाल तथा कुमाऊँ पहाड़ियों) के प्राणि-अध्ययन हेतु उत्तरी प्रादेशिक केन्द्र, देहरादून; पूर्वी हिमालय के प्राणि-अध्ययन हेतु पूर्वी प्रादेशिक केन्द्र, शिलांग एवं अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रीय केन्द्र, ईटानगर की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त सिक्किम और उत्तरी बंगाल की प्राणि-विविधताओं का अध्ययन भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के मुख्यालय में किया जा रहा है।

प्राणि-संघटक एवं उनकी जैव विविधता

इन अध्ययनों के निष्कर्ष भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के अभिलेख हिमालय पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत लिपिबद्ध किए जाने हैं। इस दिशा में भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, उत्तरी प्रादेशिक केन्द्र, देहरादून, के वैज्ञानिकों ने प्रथम चरण में एक ठोस कदम उठाकर “पश्चिमी हिमालय (उ.प्र.) की जैव विविधता” (अरोड़ा एवं कुमार 1995) पुस्तक में आधारभूत आंकड़ों का संकलन किया है। लगभग दो दशकों के गहन सर्वेक्षणों के अध्ययन के आधार पर 2248 जातियों जिसमें 1400 अकशेरुकीय तथा 843 कशेरुकीय प्राणियों की टीकाकृत सूची जो कि गढ़वाल एवं कुमाऊँ के आठ प्रशासनिक जनपदों से सम्बन्धित है (तालिका-1) प्रस्तुत की गई है। अध्ययनरत क्षेत्र में उपस्थित प्राणि जातियों के वर्गों की तुलना में यद्यपि टीकाकृत सूची कुल का मात्र कुछ भाग ही हो सकता है, फिर भी इस प्रकार की यह प्रथम लिपिबद्ध समांकित सूचना होने के कारण गढ़वाल और कुमाऊँ के जैविक संसाधन तथा इनकी विविधता के अनुमान में अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

परिचित जैव विविधता

अरोड़ा और जुल्का (1993) ने कुछ समय पूर्व उत्तर पश्चिमी हिमालय के पारिस्थितिकी तंत्र के प्राणि संघटकों के कुछ उदाहरणों की विस्तृत चर्चा की है। वे क्षेत्र जो पहले अगम्य थे, वहां खेती हो रही है। अत्यधिक ऊँचाई पर भी फलों के वृक्ष और जंगलों का तेजी से विकास हो रहा है। यह खेती जंगलों, फल वृक्षों एवं फसलों जानकारी में आए विषाणुओं के प्रकारों एवं फसलों के रोगों को प्रभावित कर रही है।

बहुतायत से मिट्टी में पाए जाने वाले जन्तु केंचुए आदि नए क्षेत्रों में बस गए हैं और नैसर्गिक किस्मों की जनसंख्या के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। हिमालय के ठंडे पानीकी छोटी नदियों में पाई जाने वाली विजातीय विदेशी मछलियों ब्राउन ट्रास्ट (सेलमोंट्रटा फ्युनियो) तथा रैनबो (सेलमोगवूनरी गार्डनेरी) आदि का परिचय ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा शिकार के लिए किया गया था। भोजन के रूप में इन मछलियों की क्षमता को ध्यान में रखते हुए काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल और कुमाऊँ पहाड़ों के भागों में इनका उत्पादन बड़े पैमाने पर किया

तालिका-1 : पश्चिमी हिमालय (उ.प्र.) की प्राणि विविधता (जातियों की संख्या)

		जिला							
		1	2	3	4	5	6	7	8
I. इनवर्टिब्रेट्स									
ओलीगोचीटा	42	28	10	12	6	15	23	11	9
मोलस्का	56	35	12	2	—	3	24	5	2
क्रस्टेशिया	7	6	2	4	—	—	2	—	—
एरचनीडा	17	12	7	5	4	5	8	4	4
मिरियापोडा	20	9	2	8	3	6	12	6	6
(चिलोपोडा)									
इनसेक्टा									
ओडोनेटा	128	92	24	37	24	18	70	17	31
प्लेकोपटेरा	20	—	9	-	—	9	1	5	—
अर्थ्रोपटेरा	97	79	21	20	3	13	22	8	—
इमापटेरा	43	22	1	1	5	9	18	6	8
आईसोपटेरा	49	35	10	31	7	20	36	19	16
हेमीपटेरा	34	25	1	6	1	3	13	3	1
ट्राइचोपटेरा	60	6	17	26	—	—	—	5	11
लेपीडोपटेरा	223	92	94	27	33	44	50	108	31
हाइमेनोपटेरा	201	148	25	21	22	22	35	29	4
इघनेयूमोनीडी	303	165	67	14	11	125	32	—	
कोलियोपटेरा	105	103	—	2	—	—	7	10	—
योग	1405	854	308	269	122	178	450	268	123
II. वर्टिब्रेट्स									
पाइसेस	124	79	26	53	27	32	101	34	29
एम्फिबिया	19	16	8	6	8	8	7	9	7
रेप्टिलिया	70	48	11	50	18	13	52	24	15
एवीस	528	230	73	393	72	128	128	93	80
ममेलिया	102	64	36	39	35	36	8	84	80
योग	843	437	156	543	158	227	373	244	211
पूर्णयोग	2248	1291	464	812	280	405	825	512	334

[तालिका अरोड़ा एवं कुमार (1995) से]

जिला : 1. देहरादून, 2. टेहरी, 3. पीड़ी, 4. उत्तरकाशी, 5. चमोली, 6. नैनीताल, 7. अल्मोड़ा, 8. पिथौरागढ़।

जा रहा है। चूँकि यह मछलियाँ मांसाहारी हैं, अतः इनका उत्पादन जहाँ भी किया जा रहा है यह स्थानीय महासेर (टोर जातियों) की प्राकृतिक जनसंख्या को बुरी तरह प्रभावित कर रही हैं।

संकट ग्रस्त प्राणी

इस नाजुक पारिस्थिकी तंत्र में संकट ग्रस्त प्राणि-वर्गों का प्रतिशत तुलनात्मक अधिक है। इसका ब्योरा प्रस्तुत है। जंगली पशु 38%, पक्षी 21%, रेप्टाइल (रेंगने वाले जन्तु) 20%, तितलियाँ 13%, बीटलस (कीट) 2% । तालाबों, नदियों एवं सिंचित क्षेत्र कार्बनिक एवं रसायनिक प्रदूषण से ग्रस्त होने के कारण शुद्ध जल एवं मिट्टी के अन्दर रहने, पाए जाने वाले प्राणि-वर्ग अत्यधिक दबाव से जूझ रहे हैं। बागों और कृषि क्षेत्रों में बीमारियों/कीटों से बचाव हेतु जहरोले रसायनों के छिड़काव से स्थिति दिन-प्रति दिन तेजी से बदतर होती जा रही है। यद्यपि कुछ संकट ग्रस्त जातियाँ वन्य जीव अधिनियम के अन्तर्गत संरक्षित की गई हैं, फिर भी अभी स्थिति में कोई सुधार प्रतीत नहीं होता है।

महत्व

क्योंकि हिमालय एक भीमकाय मेहराब की तरह है, जो कि भारतीय मैदानों को उत्तरी तिब्बत तथा मध्य एशिया से विभक्त करता है। अतः हिमालय की किसी भी प्रकार की क्षति से भारतीय मैदानों और मध्य एशिया के पर्यावरण में गंभीर दबाव पड़ेगा। अतः तेजी से खराब होते नाजुक पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षण प्रदान किया जाना अति आवश्यक है। कई प्रकार की स्थानीय प्राणियों की जातियाँ यहाँ मौजूद हैं। विशेषकर बर्फीले क्षेत्र के प्राणियों ने अपने-आपको उष्ण कटिबंध क्षेत्रों में (3500 मी. की ऊँचाई पर) तथा हिमालय के मध्य क्षेत्र (2500 से 3000 मी. के बीच में) स्वाभाविक रूप से वहाँ के वातावरण के अनुकूल बना लिया है, इसके अतिरिक्त वहाँ पर काफी संख्या में पशु भी मौजूद हैं, जो कि वैज्ञानिक एवं सौन्दर्य पूरक दृष्टि से अत्यन्त महत्व पूर्ण हैं। इनमें भी बहुत से प्राणी अपने प्राकृतिक आवासों के बड़े पैमानों पर विनाश के संकट का सामना कर रहे हैं क्योंकि हिमालय पर्वतमाला के उत्तर पश्चिम में पहाड़ की निचली सतह में सांभर, बारकिंग डियर, गोरल, जंगली सुअर, काला रीछ और कालिज फीजेन्ट, बारह सिंहा, (सिराव), नीचे के क्षेत्रों में कस्तूरी हिरण, कोकला, मानेल और ट्रेगोपैन फीजेन्ट, कस्तूरी हिरण, सेराव, हिमालयन भालु, आइबेक्स, हिम प्रदेशीय चीता, बर्फीला मुर्गा, मूरा रीछ, आदि प्राणी हिमालय के मध्य क्षेत्र में (2000 से 3000 मी.) पाए जाते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र को प्राणियों की जीन पूल मानते हुए, यह समझा जा सकता है कि जीन प्रवाह के कारण हुई जीन क्षति एक महत्व पूर्ण क्षति है।

पिछले अर्धशतक से पहाड़ों में मनुष्य की बढ़ती हुई प्रतिक्रियाओं के कारण हिमालय के पारिस्थितिकी तंत्र पर बहुत अधिक जैविक दबाव पड़ रहा है। काफी संख्या में पालतू पशु, बकरी, भेड़ जो कि दूध और ऊन के लिए पाले गए हैं। उनके द्वारा वहाँ मौजूद सजीव भोजन (वनस्पतियाँ आदि) को प्रायः चरे जाने, पालतू पशुओं द्वारा बीजों और पौधों को गंदन, तथा पगदाण्डियों को पानी नालियों की तरह प्रयोग किए जाने से तथा चूनिन्दा पशु आहार हेतु निम्न स्तर को चारों के उत्पादन के कारण मृदा कटाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। स्थानीय लोगों एवं सरकार द्वारा वन्य जीव संरक्षण अधिनियमों के लागू किए जाने के बावजूद स्थानीय लोगों एवं शिकारियों द्वारा कामगार ग्वाल, बालों, मांस एवं कस्तूरी के लिए जंगली पशुओं एवं मछलियों का शिकार एक आम बात हो गई है। घासों और मशरूम की अच्छी खेती के लिए मनुष्य द्वारा प्रायः जंगलों को जलाने से मृदा कटाव के साथ ही साथ अमूल्य वृक्ष तथा वन्य जीव संपदा भी नष्ट हो रही है और उनकी पुनः उत्पत्ति भी नहीं हो पा रही है। मानव जन सांख्यिकीय दबाव के कारण जंगलों का ह्रास हो रहा है, जिससे वनीय जैव विविधता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कृषि और बागवानी क्षेत्र में मानव की बढ़ती प्रतिक्रियाओं के कारण विभिन्न विदेशी विजातीय पदपदार्थों का प्रवेश बढ़ रहा है। जलीय प्राणी वर्गों की जनसंख्या में ह्रास का कारण नगरों एवं कस्बों में कूड़े करकट का अनुचित ढंग से फेंका जाना भी है। इन क्षेत्रों के कचरे की एक बड़ी मात्रा झीलों और नदियों में फेंकी जाती है। जिसके कारण जलीय प्राणियों के जीवन के लिए आवश्यक आक्सीजन की मात्रा में कमी पड़ रही है।

आभार

मैं निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, का उनके द्वारा दी गयी सभी सुविधाओं का आभारी हूँ। मैं अपने आभार डा० आर. के. वाष्णेय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता को भी प्रकट करता हूँ कि उन्होंने मुझे यह लेख लिखने का अवसर प्रदान किया।

संदर्भ

अरोरा, जी. एस. एवं अरुण कुमार, 1995. बायलोजिकल रिसोर्सेस इन वेस्टर्न हिमालया (यू.पी. इन्डिया): फौना. यूनेस्को सेमिनार आन बायलोजिकल रिसोर्सेस इन हिमालया, चैपटर 12:1-29.

अरोरा, जी. एस. एवं अरुण कुमार, 1995. फौना आफ वेस्टर्न हिमालया (यू.पी.). हिमालया इकोसिस्टेम सिरीज भाग-1; जुलौजिकल सर्वे आफ इन्डिया : 1-228, xx सारणी.

अरोरा, जी. एस. एवं जुल्का, जे. एम., स्टेटस रिपोर्ट आन बायोडाइवर्सिटी कन्सर्वेशन: वेस्टर्न हिमालया इकोसिस्टेम। आई.आई. पी. ए., न्यू दिल्ली (प्रेस में)

कुमार, ए. एवं प्रसाद, एम., 1981. फील्ड इकोलोजी, जुजोगरफी एन्ड टैक्सोनोमी आफ द ओडोनाटा आफ वेस्टर्न हिमालया, इन्डिया। *रिकॉर्ड्स जुलौजिकल सर्वे आफ इन्डिया अकेजनल पेपर* 20 : 1—118.

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय थार मरुस्थल में प्राणी विविधता

क्यू. एच. बाकरी

एवं

पदमा बोहरा

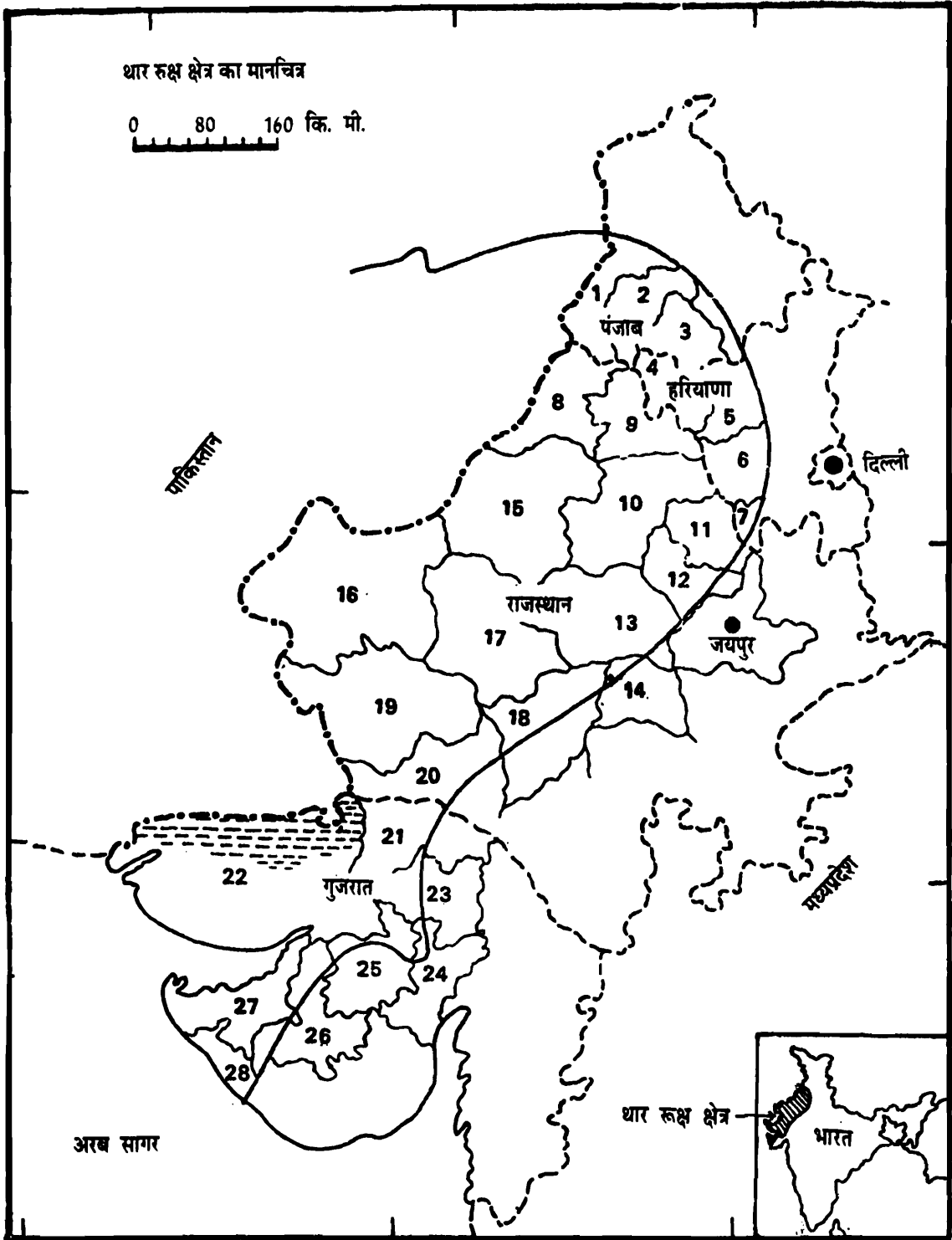
मरु प्रादेशिक शाखा,

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, जोधपुर

उत्तरी पश्चिमी भारतवर्ष में स्थित रेगिस्तान ग्रेट इन्डियन डेजर्ट या थार मरुस्थल के नाम से जाना जाता है। 'थार' शब्द थाली से बना है। वैज्ञानिकों के अनुसार थार का रेगिस्तान सहारा रेगिस्थान का ही विस्तार है, जो सऊदी अरब और ईरान से होता हुआ भारत की सीमाओं के अन्दर आ पहुँचा है। विश्व के मरुस्थलों में थार मरुस्थल अपनी भौगोलिक एवं पारिस्थितिक परिस्थितियों के कारण एक अलग स्थान रखता है। मरुस्थल या रेगिस्तान शब्द आते ही हमारे दिमाग में एक ऐसी तस्वीर आती है जहाँ मीलों तक सिर्फ रेत का समुद्र फैला हो। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। मरुस्थल में कहीं रेत के टीले हैं तो कहीं मीलों तक रेत के मैदान और कहीं कहीं गर्मी से पकी रेत चट्टानों के रूप में या नमकीन मिट्टी या दलदल देखने को मिलता है। तेज हवा चलने पर रेत के कुछ टीले एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। परन्तु कुछ टीले स्थायी होते हैं। थार मरुस्थल में छोटी बड़ी छह नदियाँ भी हैं, जिनमें बरसात के मौसम में पानी बहता है। मुख्य लूनी नदी है, जिस में आकर दूसरी नदियाँ मिलती हैं।

थार पूर्व में अरावली पहाड़ियों से घिरा हुआ है, और पश्चिम में पाकिस्तान की सिंध और नादा नदी की उपजाऊ भूमि से जुड़ा है। भारतीय क्षेत्र में दक्षिण में कच्छ के नमकीन दलदल से जुड़ा है तथा उत्तरी भाग में हरियाणा और पंजाब के मैदानी क्षेत्र हैं।

थार मरुस्थल भारत में हरियाणा, पंजाब, गुजरात व राजस्थान राज्यों के भागों में फैला हुआ है। राजस्थान राज्य में यह सबसे अधिक फैला हुआ है। थार का कुल क्षेत्रफल 278,330 कि. मी. है जिसका 61 प्रतिशत (196,150 कि. मी.) राजस्थान में, 20 प्रतिशत (62,180 कि. मी.) गुजरात, तथा 9 प्रतिशत (1100 कि. मी.) हरियाणा और पंजाब में (900 कि.मी.) पाया जाता है।



मान चित्र 1. थार मरूस्थल की भौगोलिक सीमा (जिले)

- (अ) पंजाब : 1. फिरोजपुर 2. फरीदकोट 3. भटिण्डा
- (ब) हरियाणा : 4. सिरसा 5. हिसार 6. भिवानी 7. महेन्द्रगढ़
- (स) राजस्थान : 8. श्रीगंगानगर 9. हनुमानगढ़ 10. चुरू 11. झुन्झुनू 12. सीकर 13. नागौर 14. अजमे
15. बीकानेर 16. जैसलमेर 17. जोधपुर 18. पाली 19. बाड़मेर 20. जालौर
- (द) गुजरात : 21. बनावसकांठा 22. कच्छ 23. मेहसाणा 24. अहमदाबाद 25. सुरेन्द्र नगर 26. राजकोट
27. जामनगर 28. जूनागढ़।

थार विश्व में सबसे अधिक आबादी वाला मरुस्थल है। यहाँ लगभग 84 मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर में रहते हैं, जबकि विश्व के दूसरे मरुस्थलों में 4 या 5 मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर ही रहते हैं। यहाँ के मनुष्यों ने बड़ी सहजता के साथ अपने को मरुस्थल की विकट परिस्थितियों के अनुरूप बना लिया है। मरुस्थल की विकट परिस्थितियों में सबसे पहले है तापमान, जो सर्दियों के मौसम में कहीं कहीं 0 डिग्री सेल्सियस पर होता है तो गर्मी में कभी कभी कुछ स्थानों पर 50 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। तापमान की तरह वर्षा भी बहुत कम तथा अनिश्चित होती है। सामान्यतः 100-300 मि. मी. वर्षा मानसून के मौसम में होती है।

वर्षा की कमी के कारण यहाँ की वनस्पति भी बड़ी संवेदनशील है जो वर्षा की पहली फुहार के साथ ही मरुस्थल को हरा भरा कर देती है। कुछ पौधे अपना जीवन चक्र वर्षा के दिनों में ही पूरा कर लेते हैं। वर्षा की न्यूनता व अधिकता के अनुरूप ही वनस्पति की प्रजातियाँ भिन्न भिन्न भागों में अलग अलग पायी जाती हैं। मुख्यतः खेजड़ी, डंडा, बोर, आकड़ा, देशी बबूल, अंग्रेजी बबूल, बैर, बोटी, कैर, धालू, फोग, फूली, बाड़, काचर, कुमटियाँ, पीलू, सत्यनाशी, आदि पेड़ पाये जाते हैं। जो पेड़ यहाँ पाये जाते हैं उनकी जड़ें काफी गहराई तक जमीन के अंदर होती हैं। कई प्रकार की घास भी पाई जाती हैं जिनमें मुख्य है सेवन घास।

मरुस्थल की विकट एवं विपरीत परिस्थितियों के पश्चात भी थार मरुस्थल में प्राणियों की कई महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ प्रजातियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पर रहने वाले पशु, पक्षी एवं सभी प्रकार के प्राणी अनेक विशेषताओं के साथ मरुस्थल में अपना जीवन निर्वाह करते हैं। लगभग सभी पशु-पक्षी कम या बिना पानी पिए, व उच्च तापमान से बचाव के लिये अनेक शारीरिक व आंतरिक परिवर्तन करके अपने आपको मरुस्थल की परिस्थितियों के व्यवहारानुकूल बना लेते हैं। अधिकतर स्तनधारी वन्य जीव केवल रात में ही बाहर निकलते हैं। और यदि कुछ प्राणी दिन में निकलते हैं भी तो वह अपना ज्यादातर समय बिलों एवं पेड़ों की छाया में बिताते हैं। इन प्राणियों के घूमने फिरने का समय प्रातः एवं संध्या काल में होता है। खाद्य सामग्री की न्यूनता के कारण मरुस्थल के जीव सब प्रकार के उपलब्ध भोजन पर निर्वाह कर लेते हैं। व्यवहार की इस विशेषता ने ही प्राणियों को मरुस्थल में रहने के सक्षम बनाया है।

कशेरुकी व अकशेरुकी दोनों ही वर्गों के प्राणी यहाँ पाये जाते हैं। दोनों ही वर्गों को मिलाकर लगभग 1800 जीव जन्तुओं तथा पशु-पक्षियों की जातियाँ यहाँ पायी जाती हैं। अकशेरुकी की लगभग 1200 जातियाँ खोजी जा चुकी हैं। जिनमें से कशेरुकी की लगभग 630 जातियाँ थार से ज्ञात हैं।

अकशेरुकी में सबसे अधिक 750 जातियाँ कीट पतंगों की हैं जिनमें बहुत सी आकर्षक तितलियों की जातियाँ हैं। तितलियों के अलावा विभिन्न घोंघों की भी 10 से अधिक जातियाँ यहाँ पाई जाती हैं। अकशेरुकी वर्ग के दूसरे सूक्ष्म जीवों की जातियाँ भी मिलती हैं जो कि आर्थिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं परन्तु आम आदमी का ध्यान आकर्षित नहीं करती।

कशेरुकी वर्ग की जातियों की संख्या कम होते हुए भी वह हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं विशेष रूप से विभिन्न प्रकार के वन्य जीव । गत 100 वर्षों से इस मरूस्थल में वन्य जीवों की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। बल्कि कुछ जातियाँ तो यहाँ से लुप्त हो गयी हैं और कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं।

कुल मिलाकर स्तनधारियों की लगभग 68 जातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:

गत शताब्दी के अंत तक बब्बर शेर पश्चिमी राजस्थान में आसानी से घूमते फिरते नजर आते थे। जोधपुर और सिरोही जिलों से लेकर अहमदाबाद तक काफी संख्या में मिलते थे, परन्तु अब इनकी संख्या बड़ी तेजी से कम होती जा रही है। वर्तमान में केवल गुजरात के गीर नामक जंगल में पाये जाते हैं, जहाँ इनकी संख्या करीब 300 के आसपास है। इतनी भी शायद इसलिये कि जूनागढ़ के नवाब ने इनका शिकार बंद कर दिया था। अगर इनकी संख्या इसी प्रकार कम होती रही तो शायद हमारी आने वाली पीढ़ी बब्बर शेर की सिर्फ कहानियाँ सुन सकेगी।

चीता सारे उत्तर भारत एवं जयपुर राज्य में बहुत मिलता था । परन्तु चीता न केवल थार से वरन पूरे भारत वर्ष से लुप्त हो गया है। दूसरे वन्य जीव गीदड़, भेड़िया, लोमड़ी, लकड़बग्धा, जंगली बिल्ली और केराकल आदि की संख्या भी कम होती जा रही है। जंगली सुअर अब से पचास साल पहले जोधपुर से लेकर जैसलमेर तक बहुत संख्या में मिलते थे परन्तु अब कहीं कहीं देखने को मिलता है।

अन्य स्तनधारियों में प्रमुख हैं: हिरण, काला मृग, नील गाय आदि। हिरणों को सबसे अधिक संरक्षण विश्वोई जाति के लोगों द्वारा मिला है, क्योंकि ये लोग इनको अपना पूर्वज मानते हैं और इनकी रक्षा करते हैं। इसलिए देश के अन्य भागों की तुलना में यहाँ हिरणों की संख्या बहुत ज्यादा है।

इसी प्रकार जंगली गदहा या घोड़खर भी यहाँ पाया जाता है। घोड़खर उत्तर पश्चिमी भारत, पाकिस्तान और दक्षिण ईरान में पाये जाते हैं। सन 1980 में बीकानेर व जैसलमेर में इनके 200 झुण्ड देखे गये थे। परन्तु धीरे-धीरे ये थार से लुप्त होते जा रहे हैं; अब कुछ घोड़खर गुजरात में कच्छ में दिखाई देते हैं। घोड़खर बहुत ही चौकन्ना, चतुर व तेज दौड़ने वाला जानवर है। इनका रंग चमकीला, बालू मिट्टी जैसा होता है और इनके कान छोटे होते हैं।

पशुओं की भाँति पक्षियों की भी लगभग 350 महत्वपूर्ण प्रजातियाँ थार में पाई जाती हैं इनमें प्रमुख हैं : गोडावण (ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड), इसकी ऊँचाई करीब 3 फुट होती है यह दिखने में शूतरमुर्ग, जैसी लगती है। गोडावण, जैसलमेर, बाड़मेर, जालोर, बीकानेर एवं अजमेर जिलों के कुछ भागों में मिलता है। गोडावण को राजस्थान का राज्य पक्षी घोषित किया हुआ है। परन्तु इसके प्राकृतिक आवास स्थलों के नष्ट होने से थार में इसके लुप्त होने का संकट बढ़ गया है।

मोर पक्षियों में शायद सबसे सुन्दर व आकर्षक पक्षी है। इसके सर पर ताज होने के कारण इसे पक्षियों का राजा भी कहा जाता है। बारिश के दिनों में जब आकाश पर घने बादल छाये रहते हैं तब अपने आकर्षक पंख फैलाकर नाचता है तो यह दृश्य देखने योग्य होता है। वैसे तो मोर खुले मैदानों तथा जंगलों में रहता है परन्तु मनुष्यों की आबादी वाले क्षेत्रों में भी घूमते फिरते देखा जा सकता है। यह हमारा राष्ट्रीय पक्षी है।

तीतर की दो उपजातियाँ काला तीतर व भूरा (धूसर) तीतर थार में पायी जाती हैं। दोनों प्रकार के तीतर दिन में अपना समय पेड़ों पर बिताते हैं। यह बहुत तेज आवाज से बोलते हैं। इन तीतरों की संख्या भी शिकार के कारण कम होती जा रही है। इसी प्रकार भटतीतर हैं जो दिखने में कबूतर जैसी होती है। यह ज्यादातर मैदानों, खेतों व परती भूमि पर रहना पसन्द करती है। बीकानेर व जैसलमेर में इनके झुण्डों में 10,000 तक पक्षी होते थे परन्तु अब यह संख्या बहुत कम हो गयी है।

स्थानीय पक्षियों के अलावा कुछ प्रवासी पक्षियों की जातियाँ भी थार में कुछ समय के लिए आती हैं। इनमें मुख्यतः तिलौर, कुर्जे, आदि हैं। तिलौर मध्य व उत्तर एशिया से यहाँ ठंडे मौसम में आती है। यह हल्के भूरे रंग की होती है। इसलिए इनको एकदम खेतों में देखना मुश्किल होता है। इनका मांस बड़े शौक से खाया जाता है। जिससे लोग इनका शिकार करते हैं। इनकी संख्या भी कम होती जा रही है। कुर्जे या डेमायजल क्रेन भी तालाबों के आसपास झुण्डों में देखे जाते हैं। यह देखने में सामान्य सारस जैसी चिड़िया होती है। इनका आना अच्छा शगुन माना जाता है। इनके स्वागत में यहाँ कई लोकगीत प्रचलित हैं। थार के उत्तर पूर्व में नागौर व जयपुर जिलों की सीमा पर स्थित सांभर झील व्यवसायिक स्तर पर नमक उत्पादन के लिये प्रसिद्ध है। मरु प्रादेशिक शाखा के वैज्ञानिकों के अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि पिछले कुछ वर्षों से "फ्लेमिंगो" पक्षी जिसे स्थानीय भाषा में राजहंस भी कहा जाता है, की दो प्रजातियाँ पूर्वी व पश्चिमी भूमध्यसागर के देशों तथा दक्षिण अफ्रीका से हजारों की संख्या में आती हैं तथा इस झील के किनारे एकत्रित होकर अण्डे देती हैं। इस प्रकार सांभर झील "फ्लेमिंगो" पक्षी का प्रजनन स्थल बन गयी है। पहले यह चिड़िया "कच्छ के रन" में एकत्रित होकर अण्ड देती थी। पर्यावरण की दृष्टि से सांभर झील का महत्व और पारिस्थितिकी अब और बढ़ जाती है।

रेंगने वाले जीव जैसे की साँप, छिपकलियाँ आदि की कई महत्वपूर्ण जातियाँ व उपजातियाँ थार मरुस्थल में पायी जाती हैं। छिपकलियों की लगभग 20 जातियाँ तथा साँपों की लगभग 25 जातियाँ यहाँ मिलती हैं। विषैले साँपों में मुख्यतः कोबरा (नाग), पड़ (वाईपर), क्रेट आदि पाये जाते हैं। जैसलमेर जिले में 'वाईपर' को पिवण्णा साँप कहा जाता है। लोगों का ऐसा मानना है कि यह साँप साँस द्वारा अपना जहर मनुष्य के शरीर के अन्दर पहुँचाता है। कोबरा या नाग की यहाँ देवता के रूप में पूजा की जाती है। कुल मिलाकर विषैले साँप यहाँ काफी मात्रा में हैं और बरसात के दिनों में बहुत से लोग साँप के काटने के शिकार होते हैं। कछुओं

की लगभग 3 जातियाँ थार में पायी जाती हैं। जमीन और पानी दोनों जगहों पर रहने वाले 'उभयचर' प्राणी जैसे कि मेढ़क, टोड इत्यादि की लगभग छः जातियाँ यहाँ मिलती हैं।

थार मरूस्थल के कई तालाबों व नदियों में मछलियों की लगभग 140 जातियाँ पाई जाती हैं। ऐसा नहीं है कि पानी में रहने वाली मछलियों से मरूस्थल वंचित है। इसी प्रकार थार का जो 'भाग गुजरात में आता है उसमें मछलियों की लगभग 29 जातियाँ पायी जाती हैं।

इन्दिरा गांधी नहर का प्रभाव

परिवर्तन संसार का नियम है। हर चीज में परिवर्तन आता है। देश के सर्वमुखी विकास के लिए कई योजनाएं व परियोजनाएं बनायी जाती हैं। उन्हीं परियोजनाओं में एक इंदिरा गांधी नहर परियोजना भी है। थार मरूस्थल में पेंयजल संकट व सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करने का यह एक सफल प्रयास है। मरूस्थलों में सिंचाई की परियोजनाओं में यह परियोजना सबसे कीमती है। जैसलमेर से पंजाब तक इसकी लम्बाई 649 कि. मी. है। इस नहर में रावी, व्यास व सतलज नदियों का पानी आता है। इसकी संभरक नहर को मिलाकर इसके सम्पूर्ण होने तक इसकी लम्बाई 800 कि. मी. हो जायेगी। इस नहर से 11 प्रतिशत राजस्थान के थार मरूस्थल में सिंचाई हो सकेगी। रेत के टीलों के स्थायीकरण के लिए बहुत से पेड़ नहर के किनारे लगाये गये हैं। यह सच है कि इंदिरा गांधी नहर परियोजना थार मरूस्थल में एक आशा की किरण है, क्योंकि इस परियोजना से सिंचाई हो सकेगी और मनुष्य अपने लिए अनाज उत्पन्न कर सकेगा। परन्तु यदि इसके दूसरे पक्ष पर विचार किया जाय तो हम देखेंगे कि सिंचाई की सुविधा मिलने से सेवनघास व अन्य घासों के मैदान अनाज के खेतों का स्थान ले लेंगे। जिससे बहुत से वन्य जीवों, पक्षियों आदि के प्राकृतिक आवास स्थल नष्ट हो जायेंगे। जिससे इन प्राणियों के थार मरूस्थल से लुप्त होने का संकट और बढ़ जायेगा। थार मरूस्थल की विशेषता धीरे-धीरे समाप्त होती जायेगी, क्योंकि पानी उपलब्ध होने पर बहुत से दूसरे जीवों की जातियाँ यहाँ आ जायेंगी। उदाहरण के लिये बेन्डीकूट चूहा पहले यहाँ नहीं मिलता था। अब आसानी से मिलने लगा है। इसके स्थान पर मेरियोनस, जरबिलिस इत्यादि जो कि शुष्क क्षेत्रों में रहते थे अब धीरे-धीरे कम हो रहे हैं। इसी प्रकार गोडावण व दूसरे स्थानीय पक्षी, गैजल, लोमड़ी, शश कर्ण आदि की संख्या भी निरन्तर कम हो रही है। सिंचाई की सुविधा मिलने से मनुष्यों का हस्तक्षेप भी बढ़ गया है, जिससे वन्य प्राणियों के लुप्त होने की आशंका और बढ़ गयी है। अनाज के खेत से बहुत से कीट जो कि संघातक नहीं थे अब खाद्य सामग्री की अधिकता के कारण संघातक हो रहे हैं और इनकी संख्या भी बहुत अधिक हो रही है।

थार मरूस्थल के स्थानीय प्राणियों के लुप्त होने के संकट के साथ-साथ थार की विशेषता धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। नहर का पानी जगह-जगह रिसने से जिस जगह पानी जमा होता है उससे मच्छों की संख्या बढ़ रही है और मलेरिया बहुत तेजी से फैल रहा है। मलेरिया के अलावा दूसरी बीमारियों के फैलने का डर भी बढ़ गया है।

थार मरुस्थल के जीवों की जातियों को लुप्त होने से बचाने के लिये प्रशासन पूर्ण रूप से सजग हैं। इस दिशा में सरकार ने कई कदम उठाये हैं। थार मरुस्थल में आने वाले राजस्थान के आठ जिलों में 22 से अधिक सुरक्षित क्षेत्र घोषित किये हैं, जिनमें हिरण, काला मृग, लोमड़ी, जंगली बिल्ली, गोडावण आदि प्राणियों को संरक्षण मिल सके। केन्द्र सरकार ने वन्य जीवों के संरक्षण को ध्यान में रखते हुए जैसलमेर एवं बाड़मेर जिलों के 3162 कि. मी. वर्ग क्षेत्र को 'राष्ट्रीय रक्ष उद्यान' की स्थापना की घोषणा की है। इसी उद्यान को 'रक्ष जीव मंडल' का स्थान देने के भी प्रयास किये जा रहे हैं।

चुरू जिले में 'ताल छप्पर' नामक अभयारण्य है जिसका क्षेत्रफल 7.9 किलोमीटर है। इसके अतिरिक्त अजमेर में 'टोढ़गढ़' अभयारण्य है जो 405 कि. मी. वर्ग क्षेत्र में फैला हुआ है। यद्यपि गुजरात राज्य में थार मरुस्थल का कम भाग है परन्तु वहाँ पर छः अभयारण्य हैं जिनमें वन्य जीवों को संरक्षण मिलता है। गुजरात में ही जूनागढ़ में गीर का जंगल है जहाँ बम्बार शेरों को काफी संरक्षण मिला है। कच्छ रक्ष क्षेत्र में 'कच्छ रक्ष सेन्चूरी' (अभयारण्य) है जो 7506 वर्ग कि. मी. क्षेत्र घेरे हुए है। इस अभयारण्य में जंगली गधा या 'घोड़खर' सहित बहुत से दूसरे वन्य जीवों को संरक्षण मिल रहा है। पंजाब में फिरोजपुर जिले में 'अबोहर अभयारण्य' है जिसका क्षेत्रफल लगभग 185 वर्ग कि. मी. है।

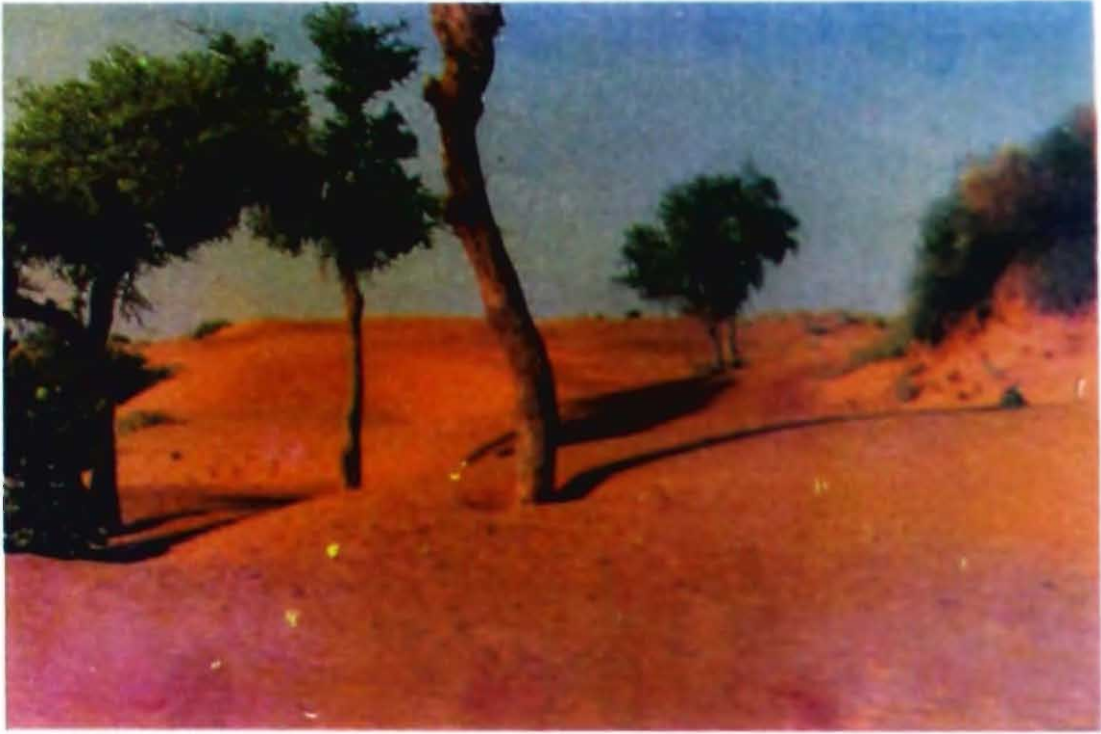
इतने सुरक्षित क्षेत्र, राष्ट्रीय उद्यान व अभयारण्य होने के पश्चात् भी क्या हम थार मरुस्थल के सुन्दर आकर्षक व दुर्लभ वन्य जीवों को लुप्त होने से बचाने में सक्षम हो पायेंगे? प्रशासन के साथ-साथ जन सहयोग भी बहुत आवश्यक है वन्य जीवों के संरक्षण के लिये।

आभार-ज्ञापन

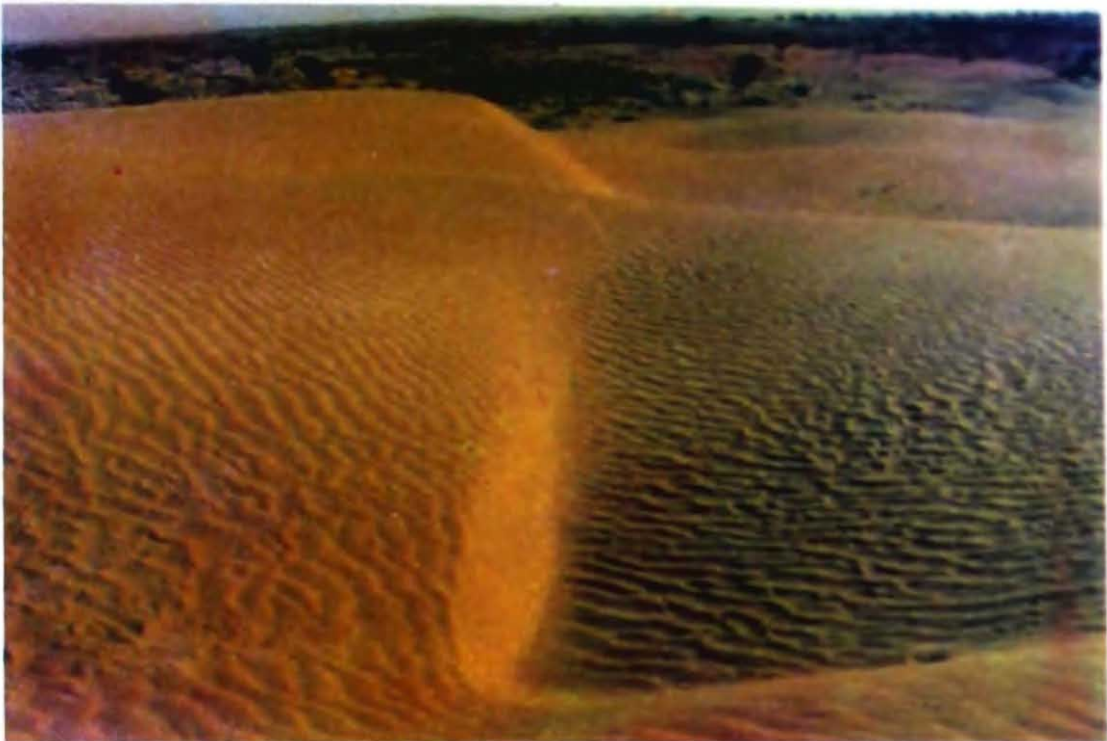
हम भारतीय प्राणी सर्वेक्षण विभाग के भूतपूर्व निदेशक डा० ए. के. बोस व अतिरिक्त निदेशक डा० आर. के. चार्ण्य का इस लेख को तैयार करने में परामर्श एवं सहयोग के लिये आभार व्यक्त करते हैं। लेख के साथ के चित्र श्री अब्दुल बासित, फोटोग्राफर भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, मरू प्रादेशिक शाखा, जोधपुर द्वारा लिये गये हैं, जिसके लिये लेखक आभारी हैं।

बाकरी एवं बोहरा : थार मरुस्थल के प्राणी

प्लेट -6



मरुस्थल



रेत के टीले

भारत की प्राणी विविधता

प्लेट -7



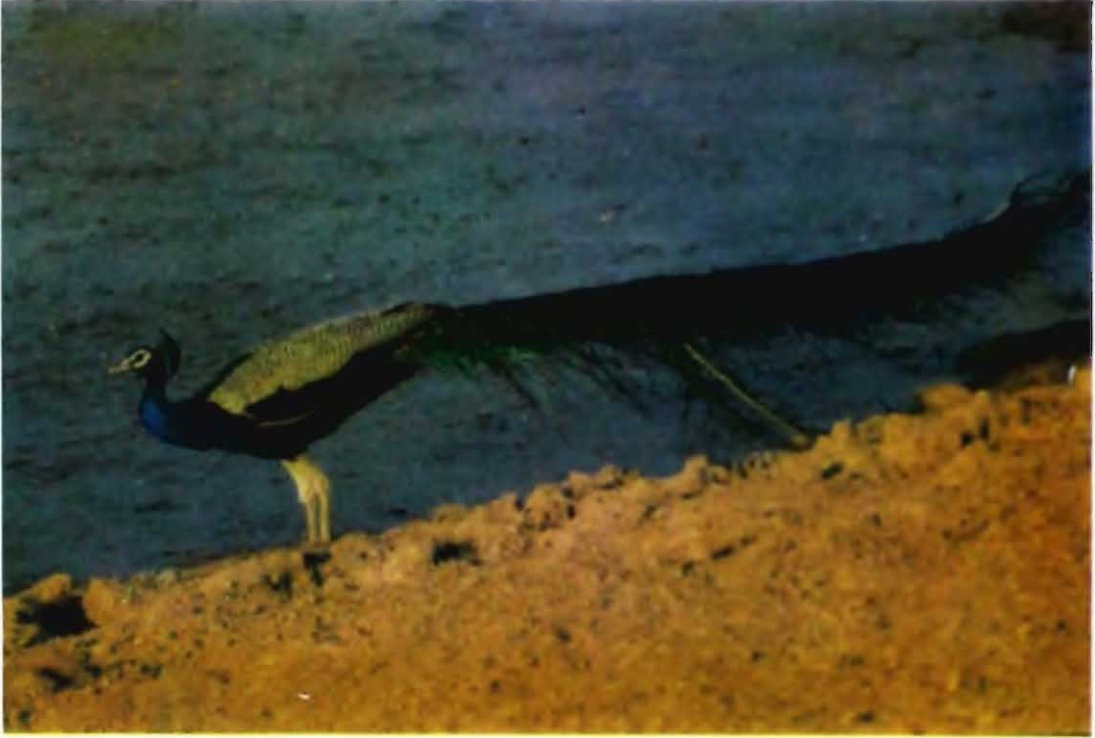
शेरनी



हिरण

बाकरी एवं बोहरा : थार मरुस्थल के प्राणी

प्लेट - 8



घोर



सांभर झील पर फ्लेमिंगो

भारत की प्राणी विविधता

प्लेट -9



कुर्ज तथा कृष्णमृग



नाग (कोब्रग)

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

ठण्डे मरुप्रदेश (लद्दाख) की प्राणी विविधता

जतिन्द्र मोहन जुल्का एवम् राहुल पालीवाल

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण विभाग

उच्च उच्छ्वाय प्राणिशास्त्र क्षेत्रीय केन्द्र

सोलन-173212 (हि० प्र०)

लद्दाख तिब्बती पठार की दक्षिण-पश्चिमी सीमा से सटा हुआ, लगभग 977,782 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला जम्मू व कश्मीर राज्य का पूर्वी जिला है। वृहत हिमालय पर्वत श्रृंखला के उत्तर में स्थित यह बर्फानी हवा वाला बंजर पहाड़ियों का ऐसा मरुप्रदेश है जहाँ भूवीय परिस्थितियों का समावेश है। काराकोरम, लद्दाख और जान्सकर की ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं ने इस मरुप्रदेश को श्योक, सिन्धु, रुपशू और जान्सकर की खुली घाटियों में विभाजित किया है। इन पर्वत श्रृंखलाओं की औसतन ऊँचाई 3,500 मीटर है। हिमनदों के पिघलने से उदगत सिन्धु व इसकी सहायक नदियाँ इस क्षेत्र में बहती हैं। यहां पर मुख्यतः चार खारे पानी की झीलें हैं: पेंगोंग सो, सो मोरारी, सो कर और मितीपाल सो। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य छोटी झीलें भी इस क्षेत्र में हैं ।

लद्दाख की जलवायु की मुख्य विशेषता यहां की शुष्कता है, जो दो प्रकार की है: पहली भौतिक शुष्कता जो गर्मी और पतझड़ के मौसम में वर्षा की अल्पता के कारण है और दूसरी दैहिक शुष्कता जिसमें तापमान शून्य बिन्दु से भी कम होने के कारण वनस्पतियों को पानी चूसने में बाधा आती है। सर्दियों में यह क्षेत्र भारी बर्फ से ढका रहता है तथा यहां की झीलों व नदियों का पानी जम जाता है। गर्मी का आगमन मई के अन्त में होता है जब ऊँची चोटियों को छोड़कर अधिकांश बर्फ पिघल जाती है। गर्मी सितम्बर के अन्त तक रहती है। इन दिनों वन्य जीवन का कार्यकलाप अपनी चरम सीमा पर होता है। सुरु और दरास की घाटियों में वर्षा अधिक होती है जो पूर्व की ओर कम हो जाती है। यहां अधिकतम तापमान 40°सेल्सियस तक हो जाता है जबकि न्यूनतम तापमान -50°सेल्सियस तक चला जाता है।

लद्दाख में वनस्पति बहुत कम हैं जो अधिकतर बर्फीली जलधाराओं के साथ वाली नम घाटियों में पायी जाती हैं। चौड़े व समतल दलदलों में मुख्यतः शाकीय वनस्पति की जातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें अधिकतर रेनकुलेसी, ब्रेसिकेसी व एस्टेरेसी परिवार की हैं। यहाँ पर नरकट परिवार (साइप्रेसी) की भी कुछ जातियाँ मिलती हैं। कैरागाना पिग्मा की बौनी झाड़ियाँ यहाँ ईंधन का मुख्य स्रोत हैं। नदी की घाटियों में भिंसा (विलो) व पहाड़ी पीपल (पोप्लर) के वृक्ष मिलते हैं।

लद्दाख के प्राणियों की उपस्थिति व वितरण के प्रतिरूप का पुनरीक्षण यहाँ की विशेष पक्षियों व स्तनपशुओं की स्थानिक व विदेशज जातियों की प्रधानता दर्शाता है, जो संभवतः प्रबल प्रतिद्वन्द्विता के कारण अपने मूल आवास से यहाँ आ पहुँची हैं। दलदल व आर्द्र-भूमिक्षेत्र पूरे पठार में जटिल जीव समुदायों को शरण देते हैं, जो ऊँचाई पर मिलने वाले नाजुक संतुलित जीवरूपों के अन्तिम केन्द्र हैं।

जलधाराओं में शीजोपाइगोप्सिस, टाइकोबारबस और नीमाकाइलस मछलियों का बाहुल्य है। इनमें जलधाराओं के तेज बहाव को सह सकने के लिये विकसित आकारिक रचनाएँ हैं। खारे पानी की बड़ी झीलें और दलदल अनेक प्रवासी पक्षियों के उत्तम जनन क्षेत्र हैं जैसे कि बार हैडेड गूज, ब्राह्मनी डक, ब्लैकनेक क्रेन, कौमन रैडशांक, ब्राउन हैडेड गल, कोमन टर्न, गूजैडर, लॉग बिल केलेन्ड्रा लार्क, हौर्न्ड लार्क आदि।

इस पठार के सूखे रेतीले ढलानों पर कियॉंग (ईक्वस कियांग) के झुण्डों को अपर्याप्त बौनी वनस्पतियों को चरते देखा जा सकता है। यहाँ के अन्य जानवरों की तुलना में कियॉंग के प्रति हमारी जिज्ञासा का कारण इसकी घोड़ा व जंगली गधा दोनों से समानता है। छोटे कान, पूँछ का बड़ा गुच्छा और चौड़े खुर होने के कारण यह घोड़ों का सजातीय है। जंगली गधे से इसकी समानता का आधार इसकी चोटी खड़ी अयाल और पीछे की ओर कंधरा से पूँछ तक पीठ की तरफ गहरे रंग की पट्टी है। इसका रंग गर्मियों में रक्ताभ तथा सर्दियों में गहरा बादामी हो जाता है।

मारमोट संभवतः यहाँ के सबसे अधिक चित्ताकर्षक प्राणी हैं। साफ मौसम के दिनों में मारमोट चट्टानों व बंजर भूमि में अपने बिलों से बाहर अशन करते देखे जा सकते हैं। विक्षुब्ध होने पर इनमें से एक या अधिक कूल्हों पर सीधे बैठकर चारों तरफ खोजपूर्ण निगाहों से देखने लगते हैं। खतरा महसूस करने पर ये ऊँची आवाज में सीटी जैसी चीख निकालते हैं जिसे सुनकर इनके साथी अपने-अपने बिलों में घुस जाते हैं। लद्दाख में मारमोट की दो जातियाँ हिमालयन मारमोट और कुछ छोटे आकार वाली लॉग टेल मारमोट मिलती हैं।

हिमालयन माउस हेयर (औकोटोना रोयलेई) खुली चट्टानों व कैरागाना की झाड़ियों की जड़ों में रहता है। यह छोटा व बिना पूँछ वाला प्राणी है जो बनावट में गिनी-पिग की तरह है। इसकी थूथन छोटी, छोटा गोलाकार सिर व गोलाईयुक्त कान होते हैं। वूली हेयर (लीप्स

औइओस्टोलस) भी चट्टानों वाले भूभाग में सामान्यतः मिलता है। चट्टानी छिपकली (अगामा हिमालयाना) प्रायः चट्टानों पर धूप सेकती दिखाई देती है। एक अन्य छिपकली-टोड छिपकली (फ्रिकनोकिफेलस थियोबाल्डी) सामान्यतः रेतीले स्थानों पर रहती है। ये छिपकलियाँ कमजोर अग्र-व पश्चपाद होते हुए भी काफी तेज गति से दौड़ सकती हैं और अपने शरीर की पार्श्व गति द्वारा काफी तीव्रता से ढीली रेत में छिप जाती हैं।

लाल लोमड़ी की उपजाति वल्पस वल्पस मोन्टाना खुली झाड़ियों वाले क्षेत्र में प्रायः देखने को मिलती है। यह शुष्क जलवायु पसन्द करती है। यह अपना शिकार अकेले ही करती है। कुतरने वाले प्राणी इसके मुख्य आहार हैं।

ऊँचाई पर स्थित घासयुक्त खड़ी ढलानें जंगली भेड़ों-शापू, नायन, भारल व साकिन के झुण्डों का आश्रय स्थल हैं। शापू (ओविस आरियंटेलिस) का आकार अन्य जंगली भेड़ों की तुलना में छोटा होता है। ये खुले भूभाग पर रहते हैं तथा खतरनाक खड़ी चट्टानों में नहीं जाते हैं जो जंगली बकरी का आवास हैं। नायन (ओविस अमोन होजसनी) सभी जंगली भेड़ों में सबसे बड़ी है। गर्मियों में यह 4,500 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती है तथा सर्दियों में निचली घाटियों में आ जाती है। भारल (स्यूडोइस नयोर) संरचना व आवास के आधार पर भेड़ व बकरी के बीच में माना जाता है। इसके गोल व चिकने सींग बकरी से समानता प्रदर्शित करते हैं लेकिन नर भारल की बकरे जैसी दाढ़ी नहीं होती। भारल गर्मियों में 5,000 मीटर की ऊँचाई से ऊपर व सर्दियों में 3,600 मीटर से नीचे नहीं मिलते हैं। यह मोटी घास, मांस व बीनी झाड़ियाँ खाते हैं। ये अच्छे आरोहक हैं और खतरनाक खड़ी चट्टानों पर चढ़ने से नहीं झिझकते। साकिन (कापरा इबेक्स) झुण्ड में रहने वाला प्राणी है। साधारणतः 6 से 12 साकिन ही साथ रहते हैं। लेकिन कभी-कभी ये 40 और 50 की टोली में भी मिलते हैं। साकिन अपेक्षाकृत सूखी पहाड़ियों पर रहता है और आमतौर पर निचली खुली घासयुक्त ढलानों पर चरने आता है। साकिन का समूर बड़ा व चमकदार होता है। शीत में समूर के नीचे बड़िया पशमीना पाया जाता है।

तिब्बत में मिलने वाला जंगली याक (बास यूनीयेस) कभी-कभी उत्तरी लद्दाख की निर्जन पहाड़ियों में पाया जाता है। यह प्राणिजगत में सर्वाधिक ऊँचाई (सर्दियों में 4,300 मीटर, गर्मियों में 6,100 मीटर) पर रहने वाला स्तनपोषी प्राणी है।

बर्फानी तेंदुआ (पेंथेरा उन्सिया) हिमाच्छादित पहाड़ों में रहने वाला सर्वाधिक राजसी प्राणी है। इसको बर्फ से ढके क्षेत्रों में रहने के कारण "बर्फीले क्षेत्र का बाघ" भी कहते हैं। जंगली भेड़ों और साकिन का तो यह बुरी तरह शिकार करता है। कुछ लोगों का मत है कि बर्फानी तेंदुआ अब भारत से लुप्त होने के कगार पर पहुँच गया है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

उत्तर पूर्वी भारत में प्राणी विविधता

स० ज० स० हट्टर

पूर्वीय प्रादेशिक केंद्र,

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, शिलांग

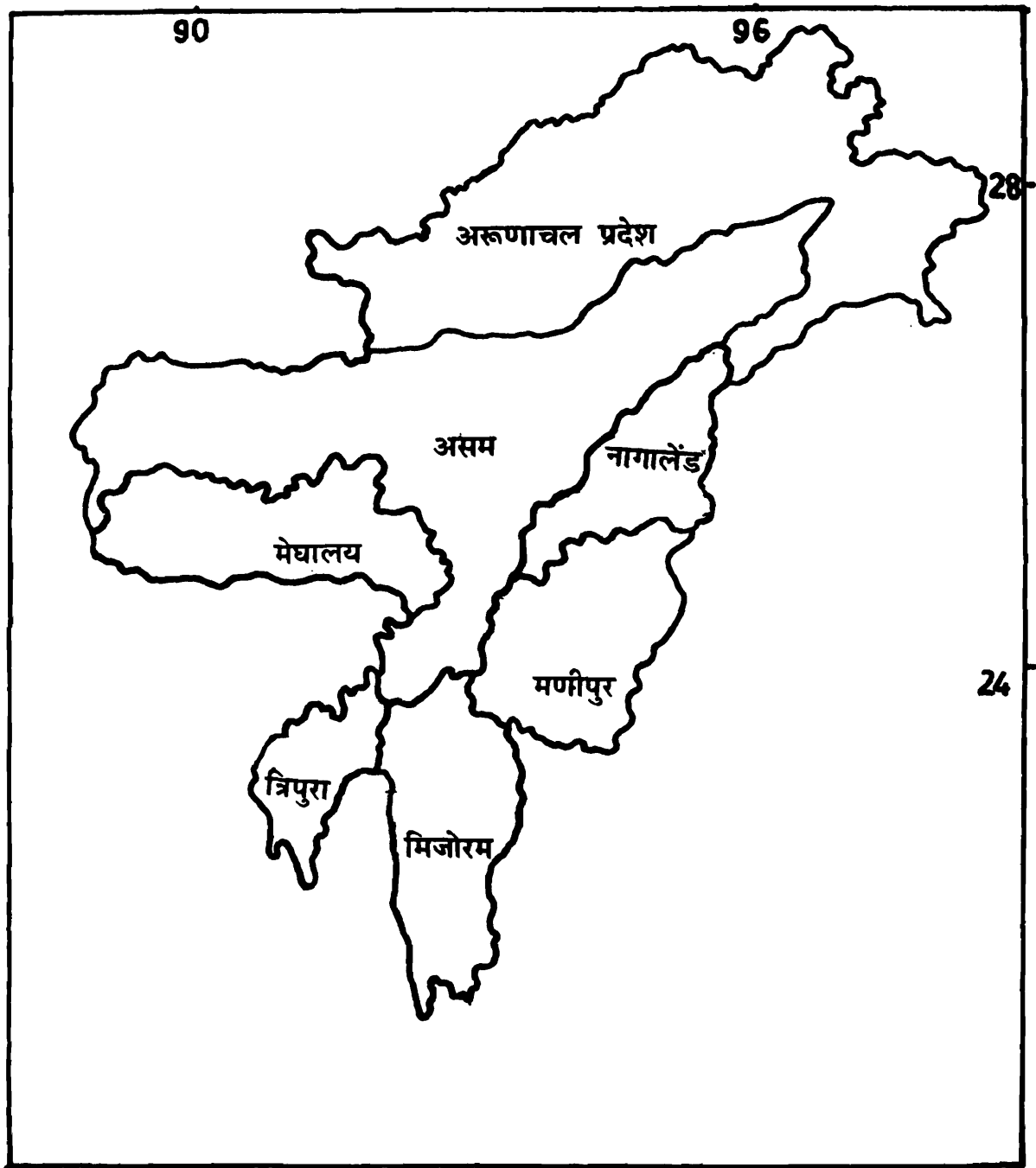
जीवित प्राणियों की जाति और परिवेश में विविधता, वैज्ञानिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, मनोरंजनात्मक और ज्ञानेंद्रिय बोधात्मक कारणों के लिए अमूल्य है। प्राकृतिक विकास और जीवन मंडल के रहन-सहन या जीवन को संतुलित बनाये रखने के लिए विविधता का होना बहुत जरूरी है। संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या को संरक्षण, पोषण हेतु जैविक विविधता का प्रयोग आहार, स्वास्थ्य और अन्य विभिन्न आवश्यकताओं के लिए अति महत्वपूर्ण है।

जैविक विविधता "पृथ्वी पर जीवन" का ही एक पर्याय नाम है। जैविक विविधता संसार की सबसे मूलभूत पूँजी अंकित की जाती है। संसार की जैविक विविधता का उतार-चढ़ाव का अंतर 5 मिलियन से 30 मिलियन या कभी 100 मिलियन जीवित जातियों तक है, जिनमें केवल 1.4-1.7 मिलियन को अभी तक अंकित किया गया है। परन्तु यह अविवादित है कि जीव विभिन्नता को खो देना, एक बहुत बड़ी चेतावनी है, खासकर प्रगतिशील देशों की आर्द्र सीमा रेखा, जहाँ भूवासी विविधता उच्चतर है। इस तेजी से हो रही कमी की प्रवृत्ति जैविक विविधता के लिए एक बड़ी चेतावनी है, जो कि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बन गई है।



चित्र-1. नागालैंड में पैंगोलिन

भारत संसार के 12 महा-विविधता के देशों में से एक है। यह देश जैविक विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र, जाति और आनुवंशिक विज्ञान विभिन्नता के पहलुओं में अकेला ही काफी



मानचित्र-1. उत्तर-पूर्वी भारत के राज्य।

समृद्ध है। इसके लगभग 329 मिलियन हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र के साथ, भारत अकेले ही विभिन्न परिवेश में लगातार बर्फीले पहाड़ों से गरम और ठंडे रेगिस्तान तक, सदाबहार वनों से तटीय दलदल तक, और संभवतः प्रत्येक पारितंत्र के बीच घिरा हुआ है। भारत वास्तव में तीन महान जीव भूगोल राज्यों जैसे इन्डोमलायन, यूरेशियन और अफ्रीकी उष्ण कटिबंध के मिलन का बीच का क्षेत्र है। इसलिए भारत के पास इन तीनों भूगोलिक राज्यों में से प्रत्येक के कई बहुमूल्य 'साधक अंग' हैं तथा साथ ही कई प्रकार की स्थानीय जातियां भी हैं।

प्राकृतिक वासस्थान की विविधता से भारत को 10 जीव भूगोलिक पृथक खण्डों में विभक्त किया जा सकता है: उस पार का हिमालयन, हिमालयन, भारतीय रेगिस्तान, अर्धबंजर, पश्चिमी प्रायद्वीप, गंगा के मैदान, उत्तर-पूर्व भारत, समुद्र तटीय भाग और द्वीप समूह। इन अंतःप्रकीर्ण्य जैविक वन खंडों की आर्द्रभूमि, रेगिस्तान, समुद्र तटीय और चार नदमुखीय प्रभागों में आज भारत के 422 वन्य पशुविहार, 75 राष्ट्रीय पार्क, 11 जीव मंडलीय वृत्त सुरक्षित हैं। इनमें 6 रामसर आर्द्र स्थल व 5 संसार वंशागत स्थल हैं।

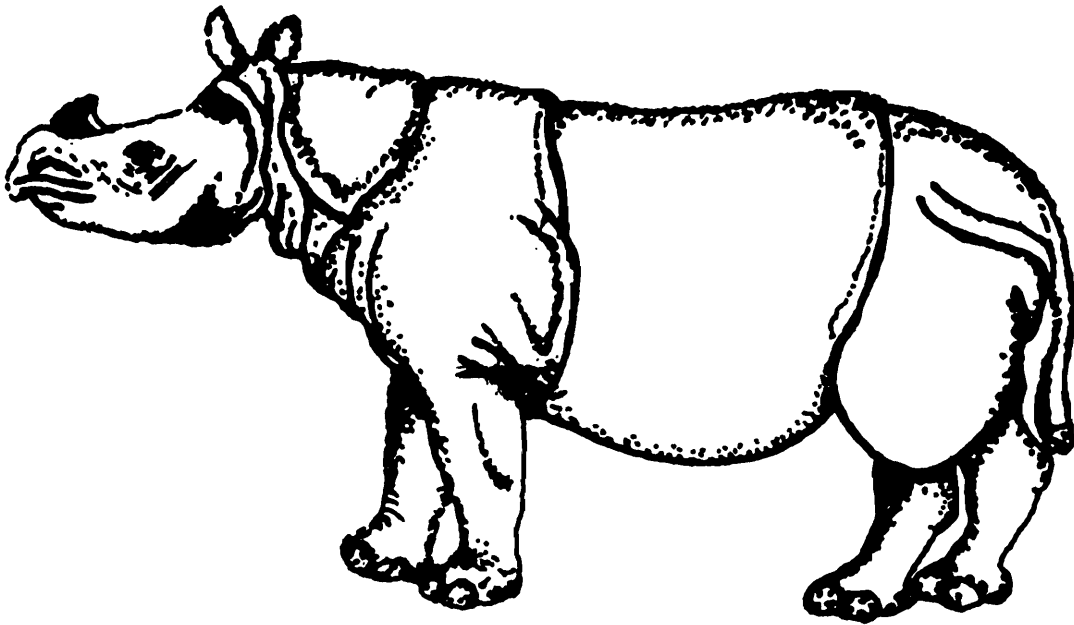
पूर्वोत्तर क्षेत्र भारत के विस्तृत और सबसे अधिक सम्पन्न वन संसाधनों में से एक है, जो कि फूलों की खेती के साथ-साथ सदाबहार, वाष्पशील, उष्ण कटिबंध, आर्द्र पतनशील, छोटे अनानास उष्णकटिबंध, आर्द्र परिमित स्तूप और अल्प पहाड़ी व पर्वतीय प्रकार के वनों का मिश्रण है। प्रदेश की भू-आकृति विभिन्नता, इसके परिवेश/आवास के प्रकार से इसकी परिवर्तित सांस्कृतिक विविधता से समान रूप से मिलती जुलती है। यह क्षेत्र अधिकतर परिवर्तित संस्कृति, जनजातीय समुदाय, उनके परंपरागत रीतिरिवाजों, विश्वास और ज्ञान से भरपूर बसा हुआ है। इसके पास जैविक विविधता की सम्पदा और वंश प्रारूप संसाधन के भंडार हैं जो कि हमारे राष्ट्र की पैनिक सम्पत्ति का एक भाग है। दक्षिण एशिया में भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र, देश की जैविक विविधता से सम्पन्न है, जिसमें उपमहाद्वीप की 50 प्रतिशत वनस्पतियां, 65 प्रतिशत पशु वर्ग हैं। देश की पहाड़ी जातियों में से लगभग 50 प्रतिशत देश के इस आठ हिस्सा भाग में ही पायी जाती है, जो कि अधिकतर इसी क्षेत्र की स्थानीय जातियां हैं। जैव विविधता की चेतावनी के संदर्भ में, संसार के 18 चुने हुए "गर्म स्थल" में से यह एक है। इस क्षेत्र में लगभग 650 जातियां पौधों की, 70 जातियां पशुओं की "जोखिम" या संकटापन्न सूची में सूचीबद्ध हैं।

भारत में भूगोलिक क्षेत्र के नक्शे के विवरण और उच्च अथः पतन के कारण लगभग 13 प्रतिशत भाग में पारिस्थितिक आदर्शभूत, भूतत्व सूचना, जो कि देश के अन्य क्षेत्रों से ज्यादा भंगुर व मृदु हैं, "सात बहिनें" फैली हुई हैं। ये हैं: असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर और त्रिपुरा। पूर्वोत्तर क्षेत्र ने पूरे देश के 1560 वर्ग कि.मी. की तुलना में 635 वर्ग कि.मी. के वन खोये हैं या नष्ट किए हैं। जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र की प्राणी विविधता पर गहरा असर पड़ा है। (देखें मानचित्र-1)।

पूर्वोत्तर भारत वन्य प्राणियों से सम्पन्न है, जिनमें 100 से अधिक जातियां स्तनधारी जन्तुओं की, 550 प्रकार पक्षी की और 150 के लगभग रंगने वाले जन्तुओं के अतिरिक्त अन्य बहुत से स्थलचर एवं जलचर प्रकार के जीव हैं। ये बलशाली हाथियों से लेकर छोटे प्राणियों तक हैं। प्राकृतिक जंगलीय स्थानों को सुरक्षित रखने के लिए तीन राष्ट्रीय पार्क, तीन सुरक्षित मंडल

व 26 पशुविहार स्थल बनाये गये हैं। स्तनीय जन्तुओं में कुछ पशु जैसे स्लो-लोरिस, सुनहरी लंगूर, फेयरिस लीफ बंदर, टोपी वाला लंगूर, हुलाक गिबबन, सुअर, पूँछ वाला अफ्रीकी लंगूर और बिना पूँछ वाला अफ्रीकी लंगूर, रीछ के सदृश सुअर, थायमिन मृग केवल पूर्वोत्तर भारत तक ही सीमित हैं। पक्षियों में ब्लिथ्स, ट्रेगोपान, स्कलेटर, मोनाल तीतर, एल्विस, कान वाला तीतर और हूम्स वार पीठ वाला तीतर है। इसके अतिरिक्त लेसर्ड छिपकली, कुछ जलीय व स्थलीय कछुए, 12 प्रकार के मेंढक, टोड मेंढक एवं अनेक प्रकार की मछलियां हैं। केवल देश के इस भाग की स्थानीय जातियों की सम्पन्नता पर प्रकाश डालने के लिए रीढ़ वाली अच्छी पहचान वाली जातियों की गिनती के लिए यह सूची पूरी है, इसमें और भी अधिक पशु वर्ग जातियां सम्मिलित होना चाहिये, जिन्हें संरक्षण देने वाले, या “जोखिम” वाले प्राणियों का प्रतिमान दिया गया है।

भारत का प्रसिद्ध एक सींग वाला गेंडा, जिसके लुप्त होने का डर है, असम में काजीरंगा राष्ट्रीय पार्क में गहन देखभाल में सुरक्षित है। एक मात्र सुनहरी लंगूर संसार में कहीं और नहीं पाया जाता है, इसे असम के मानस वन में पाया गया है, और पिगमी सुअर और हिसपिड

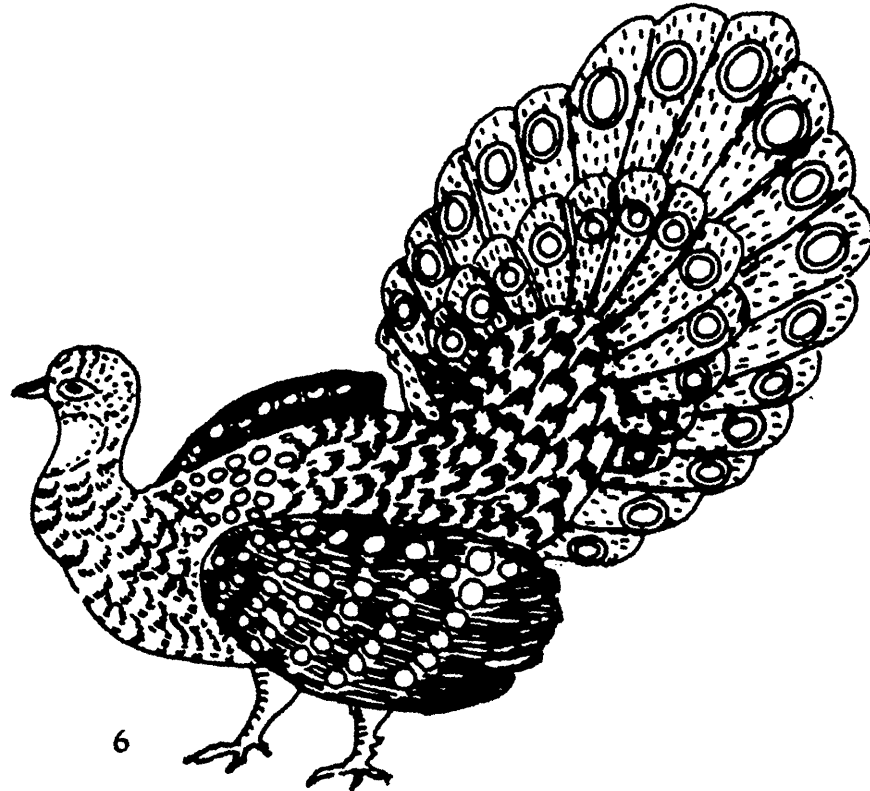


चित्र-2. असम में एक सींग वाला गेंडा

(दृढ़लोमी) खरगोश दोनों को ही मूल्यांकन के विचार से “लाल डाटा” पुस्तक में “जोखिम” के वर्ग में माना है। आज भी सुनहरी लंगूर भाग्य से ही दिख जाता है, क्योंकि उनके प्राकृतिक आवास को पहले राष्ट्रीय पार्क और अब जीव सुरक्षित मंडल का दर्जा दिया गया है। भारत में जीवित कपि (गिबन हूलक) केवल दक्षिणी ब्रह्मपुत्र में हैं। अरुणाचल प्रदेश शायद एक मात्र राज्य है जिसमें 4 मुख्य बिल्लियां, अर्थात् बाघ, चीता, धुंधला चीता और बर्फानी चीता, पाये जाते हैं। यह एक मात्र राज्य है जहां भारत के सभी तीन बारहसिंगा हिरण पायी जाती हैं,

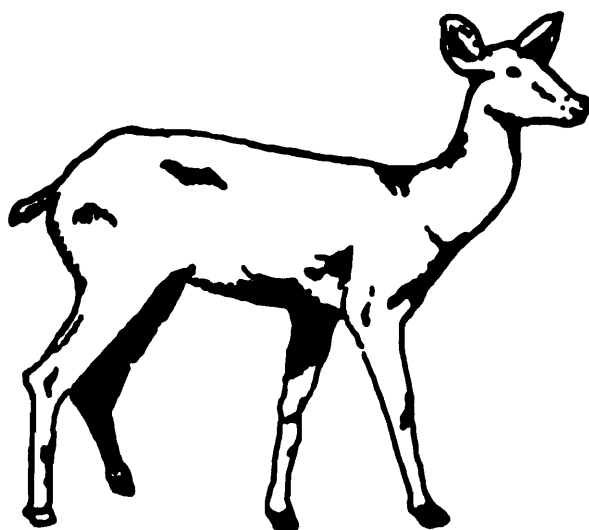


चित्र 3. त्रिपुरा में फेरिस लीफ बंदर; चित्र 4. मिजोरम में स्लो लोरिस



चित्र 5. अरुणाचल प्रदेश में धनेश; चित्र 6. मेघालय में मोर फीसेंट

जैसा कि सेराव (हिमालय में पाया जाने वाला "अज बारहसिंगा") गोरल (मृग) तथा टाकिन (संगाई, नाचने वाला हिरण या थामिन मृग)। टाकिन एक मात्र मणिपुर का स्थानिक है जिसकी आर्द्रभूमि पारितंत्र मणिपुर तक ही सीमित है, और संभवतः भारतीय उप महाद्वीप में केवल यही एक स्थान है जहां पर मलायन सूर्य रीछ उपलब्ध है। असली बिज्जू एशिया में नहीं पाये जाते हैं फिर भी शूकर जन्तु और नेवले की जाति का अर्द्ध पालतू पशु मणिपुर में विस्तृत रूप से आवंटित है। त्रिपुरा में दूसरी एक और अति "जोखिम" वाली जाति फायरे का लीफ बंदर पायी जाती है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में और भी दूसरी "जोखिम" पशु जातियां पायी जाती हैं। उदाहरणतः बिन्दुरोंग, उइंडयन गिलहरी, भारतीय रीछ, जंगली कुत्ता, सांभर, सिवेट बिल्लियां, जंगली मिथुन, जंगली सांड, लाल पांडा, जंगली भैंस, दलदली मृग, बोधिया सुआर, भोंकने वाला मृग, कस्तूरी मृग, चित्रा लिन्संग, मंद मृग, सुनहरी बिल्ली इत्यादि।



चित्र-7. मणिपुर में थामिन हिरण

नागालैंड में कुछ दुर्लभ रंगीन पक्षियों की जातियां जैसे कि विश्व विख्यात बिल्लीय ट्रेगोपान, टफटिड गुनियां मुर्गियां पाई जाती हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र में एक और अति "जोखिम" वाली जाति 'श्वेत पंखी वुड बत्तख' पाई जाती है। अन्य पक्षियों में बंगाल फ्लोरिकन, महान भारतीय धनुष, खलीज तीतर, हरा कबूतर, खलिहान उल्लू इत्यादि उल्लेखनीय हैं। अन्य रंगन वाले जन्तुओं में अजगर, शेष नाग, घड़ियाल तथा गिरगिट आदि हैं।

उत्तर पूर्व क्षेत्र में हाल के वर्षों में प्राणी विविधता के संरक्षण ने, न केवल पारिस्थितिक रचना के संतुलित रख-रखाव के लिए, अपितु जैविक संसाधनों के प्रयोग के द्वारा, वन्य प्राणियों के रहन-सहन एवं कल्याण के लिए भी विशाल महत्व ग्रहण कर लिया है। उत्तर पूर्व भारत प्राणी विविधता के संरक्षण में उचित रूचि लेने के वृहद प्रयत्नों की दहलीज पर है। यद्यपि पर्यावरणात्मक एवं विकासात्मक सम्बंधी लक्ष्यों के बीच संघर्ष उभरता दिखाई देता है, निरुत्साहित करने वाला है, फिर भी बहुत से सार्थक कारणों से उत्साहवर्धक है जो कि लोगों का अपनी जैविक विविधता, वृहत्तर सार्वजनिक और पर्यावरणात्मक विषय में समाचार माध्यमों से पर्यावरणात्मक जागरूकता फैलाने का आन्दोलन है। उत्तर पूर्व भारत के राज्यों और नागरिकों को उनकी बची हुई समृद्ध जैविक विविधता को लम्बी अवधि तक पोषणीय संरक्षण के लिए उन्हें अपने परम्परागत, पत्रिक और पोषणीय लोकनीति को पुनः जागृत करना होगा।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

गंगा समभूमि क्षेत्र (बिहार) के जीवों की विविधता

यदुनाथ प्रसाद सिन्हा

एवं

रामाधीन कुमार

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण

हैन्डलूम भवन, राजेन्द्र नगर

पटना

जीव-जन्तु हमारे मानव जीवन के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। यह हमें भोजन, वस्त्र, दवा इत्यादि देते हैं, परन्तु कुछ जीवों से रोग, फसल की बर्बादी तथा जनसंख्या पर बुरा असर पड़ता है। आज इन सारी बातों को बहुत नजदीक से अनुसंधान करने की आवश्यकता है। यहाँ हम इसी विषय में खोज की तथा उन जीवों की जो मनुष्य एवं पर्यावरण के साथ अहम भूमिका रखते हैं, की चर्चा करना चाहेंगे।

मानव सभ्यता सर्वप्रथम भारत में गंगा के दोआब क्षेत्रों में बड़ी तेजी से बढ़ी। क्योंकि यहाँ मनुष्य के जीने के लिए आवश्यकता की हर चीजें उपलब्ध थी, जैसे :— फसल के लिए उपजाऊ जमीन, जिससे भोजन मिलना, गंगा तथा अन्य नदियों से पानी मिलना, तथा समतल भूमि पर आवास बनाना आसान था। जिसे देखने के लिए या यों कहें कि लोग बिहार करने के लिए यहाँ अधिक आते थे, सम्भवतः इसीलिये इस जगह का नाम बिहार से बिहार पड़ा।

यहाँ जीव प्रायः हर जगह मिलते हैं, चाहे बाग-बगीचे, खेत-खलीहान, नदी-नहर, गढ़े-तालाब, खेत-टील, झाल-नाली आदि। कुछ जीव-जीवाणु या विषाणु लोगों के मकान इत्यादि के नजदीक रहते हैं, जहाँ जल जमाव होने के कारण तथा अन्य वजह से रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें मुख्यतः काला ज्वर, इनसेफलाइटिस, जौनडिस, तथा मलेरिया प्रमुख रोग हैं।

काला ज्वर (कालाजार) से उत्तरी बिहार के जिलों के काफी लोग हर साल रोग ग्रसित होते हैं। यह रोग प्रोटोजोआ फाइलम के लेसमिनिया डोनोवानी के द्वारा होता है जो सैंडफ्लाइज (फ्लीबोटोमस) जाति पर परजीवी के रूप में रहते हैं। इनसेफलाइटिस (दिमागी

बुखार) के विषाणु, एक मच्छर (क्यूलेक्स पिपियेन्स) के द्वारा फैलता है। इसी तरह जौनडिस (पीलिया) लेप्टोस्पाइरा द्वारा तथा मलेरिया प्लाजमोडियम की जातियों द्वारा फैलते हैं।

इसी तरह कुछ ट्रेमाटोडा जैसे सरकेरिया इनडोप्लानाबीसी, डिप्लोडिस्कस मेहराई, फासियोला हेपाटिका इत्यादि तथा कुछ सेस्टोडा जैसे फाइलोबोप्रियमलाटम, इकाइनोकोकस ग्रानुलोसस, टैनिया सोलियम इत्यादि मनुष्य, पालतू जानवर तथा अन्य जानवरों में जब पाये जाते हैं तब वे बीमार रहते हैं, कभी-कभी तो उनकी मृत्यु तक हो जाती है।

जल-जमाव वाले क्षेत्रों जैसे- मोकामा टाल, काबर झील, आदि क्षेत्रों में सुडोनोमस बैक्टीरिया पाये जाते हैं जो मिट्टी की उर्वरा शक्ति को खींचकर वातावरण को नष्ट करते रहते हैं जिससे वहाँ की मिट्टी अनुपजाऊ हो जाती है।

यहाँ करीब 26 तरह के नेमाटोड जानवरों में और 26 तरह के नेमाटोड पेड़-पौधों के जड़ों में तथा मिट्टी में रहते हैं। इससे इस राज्य की अर्थव्यवस्था पर काफी अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि इन परजीवियों की वजह से न तो यहाँ अच्छे फसल और नहीं अच्छे जीव-जन्तु उत्पन्न हो पाते हैं। अगर इन परजीवियों के बारे में अधिक-से अधिक अनुसंधान हों तो इसके रोकथाम में मदद मिल सकती है।

अब कुछ लाभकारी परजीवी की भी चर्चा करेंगे, जिससे हम मानव समाज को काफी लाभ है: (1) हेटोटापीक बैक्टीरिया —यह जीवाणु दूसरे पौधों पर आश्रित होता है। यह दलहनी फसल की जड़ में रहता है तथा उससे अपना भोजन ग्रहण करता है एवं वातावरण से नाइट्रोजन खींचकर पौधे को देता रहता है। जिस जगह की दलहन फसल अच्छी नहीं होती वहाँ इसका छिड़काव किया जाता है। यह बाजार में राइजोबियम कल्चर के नाम से बिकता है। उनमें प्रमुख हैं राइजोबियम फासेली, राइजोबियम जापोनिकम, राइजोबियम लेंगुनीसेरम इत्यादि। इसके अलावे कार्बनिक युक्त मिट्टी में असहजीवी बैक्टीरिया मिलते हैं जो हवा की अनुपस्थिति में या हवा की उपस्थिति में भी जीवित रहते हैं तथा मिट्टी को नाइट्रोजन देते रहते हैं। (2) औटोट्राफिक बैक्टीरिया- जैसे सल्फर, आयरन बैक्टीरिया। ये अमोनिया को नाइट्रेट में बदलते रहते हैं जो पौधे के लिए लाभदायक होता है। (3) एनटीनोमाइसेस्ट बैक्टीरिया —इससे अनेक दवायें बनती हैं, जैसे- पेन्सिलिन, स्ट्राप्टोमाइसीन, नियोमाइसीन इत्यादि। (4) निमोटोड-जैसे—मोनोकीडा निमोटोड यह हानिकारक बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ, माइक्रो आर्थोपोड्स आदि का शिकार करता है जिससे फसल बीमारी से बच जाते हैं (5) कुछ बैक्टीरिया मृत जन्तु, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ इत्यादि को सड़ाता-गलाता रहता है जिससे ह्यूमस बनता है। यह ह्यूमस मिट्टी के उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है।

एनेलिडा फाइलम के डाइडिया नेपालेनसिस, यूटिफियम विशामबारी, फेरिटिमा फोस्ट्यूमा नामक केंचुआ तथा हिरुडिनिया ग्रानुलोसा, हिरूडो मेडिसिनलिस इत्यादि लीच (जोंक) मुख्य हैं। केंचुआ खेती के लिये काफी उपयोगी होता है। यह कार्बनिक पदार्थों को मिट्टी में मिलाकर तथा मिट्टी को चूर्ण कर उसे काफी उपजाऊ बनाता है। इस तरह यह फसल के

वृद्धि में काफी सहायक होती है। लीच को हिरुडिन नामक रसायन के इकट्ठा करने के लिये उत्पन्न (कल्चर) किया जाता है। हिरुडिन का उपयोग औषधि के रूप में भी किया जाता है।

मोलस्का फाइलम के करीब पचास जाति बिहार में सामान्य रूप से पाये जाते हैं जिसमें प्रमुख हैं— एकाटिना फूलिका, एकोस्टोमा वारियविलिस, इन्डोप्लेनोरविज इन्जुस्टस, लामेल्लीडाना मारजिनलिस, लिम्नीया बूटबोला, पारसिसिया अननडेलाई, पाइला ग्लोबोसा और विविपेरा बेनगालेनसिस। ये मोलस्का साधारणतः नम, जलीय स्थानों तथा तालाब इत्यादि में पाये जाते हैं। इनमें से एकाटिना फूलिका काफी खतरनाक और पौधों को नष्ट करने वाला जन्तु है। पाइला ग्लोबोसा जो साधारणतः धान इत्यादि के खेतों के पानी में मिलते हैं, खाने के काम में आते हैं। देहात में मोलस्का के कवच (खोली) को जलाकर खाने वाला चूना इत्यादि बनाया जाता है तथा सीप से बटन बनता है।

आर्थोपोडा फाइलम के बहुत से प्राणी इस क्षेत्र में पाये जाते हैं जिसके बहुत से जाति लोगों के लिये लाभदायक हैं। डिप्लोपोडा वर्ग के जूलस, अइरोपाइगस और जेनोबोलेस मुख्यतः तीन जेनेरा हैं। यहाँ वर्षा ऋतु में बगीचों में ये मिलते हैं। ये मिलीपीड्स सड़े-गले पेड़ पौधों और जानवरों के अंग को खाकर जीवित रहते हैं। काइलोपोडा वर्ग के सेन्टिपेड जिसमें एस्कोलोपेन्डा और स्कूटिजेरेला यहाँ मिलते हैं। ये कीड़े-मकोड़े इत्यादि को खाते हैं और पत्थरों, लकड़ी इत्यादि के बीच रहते हैं।

क्रस्टेसिया वर्ग के जन्तु तालाब-झील इत्यादि के पानी में या उनके समीप मिलते हैं। इसमें केंकड़ा और झिगा मछली प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे चाव से खाते हैं। केंकड़ा का झोल शक्तिशाली और स्वादिष्ट होता है।

अरकनिडा वर्ग के बिच्छू, मकड़ा और माइटस घर के अन्दर या बाहर, पत्थर इत्यादि के नीचे, और पेड़ों पर रहते हैं। मकड़ा जाल बनाकर पेड़ों पर या मकानों में रहते हैं। टिक्स बाह्य परजीवी के रूप में रीढ़धारी जानवरों पर होते हैं। माइटस सभी तरह के प्राकृतिक वास स्थानों जैसे बागों तथा अनाज से भरे बोड़ों में होते हैं। बिच्छू विषैले होते हैं और उसके डंक काफी पीड़ादायक होता है।

कीट वर्ग प्राणी जगत का सबसे बड़ा वर्ग है। ये समस्त प्राणी जनसंख्या के तीन चौथाई हैं। इस वर्ग को 29 आर्डरों में बाँटे गये हैं। ये स्थल, जल एवं वायु में निवास करते हैं। सभी कीटों तथा उनके आर्डर का उल्लेख करना बहुत कठिन है परन्तु कुछ का वर्णन करेंगे। जैसे आर्थोपटेरा में—टिड्डी, झींगुर इत्यादि; कोलियोप्टेरा में वीरबहूटी, वीविल (पीधा खाने वाला झींगुर), डंग बीटल (गोबरैला), सूँड़ी इत्यादि; लेपिडोप्टेरा में तितली, पतंग, शलभ, रेशम का कीड़ा इत्यादि; हेमिप्टेरा में खटमल, जलबिच्छू, पौधों पर पाये जाने वाले खटमल इत्यादि; हाइमेनोप्टेरा में चींटी, मधुमक्खी इत्यादि; डिप्टेरा में घरेलू मक्खी, मच्छड़ इत्यादि; डरमाप्टेरा में फोरफिकूला इत्यादि; आइसोप्टेरा में दीमक इत्यादि; और ओडोनाटा में डागनफलाई इत्यादि आते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ दूसरे भी आर्डर महत्वपूर्ण हैं जैसे थाइसान्यूरा में पुस्तक के कीड़े

(सिल्वर फिश); कोलेम्बोला में स्प्रिंग टेल्स, इफेमेओप्टेरा में मे फ्लाई; प्लेकोप्टेरा में स्टोन फ्लाई; फैस्मिडा में स्टीक और लीफ इन्सेक्ट; डिक्टियोप्टेरा में काकरोच; मेन्टोआइडिया में मेन्टिडस; सोकोप्टेरा में बुक लाइस; मैलोफैगा में लाइस; थाइसनोपेप्टेरा में थ्रीप्स इत्यादि आते हैं।

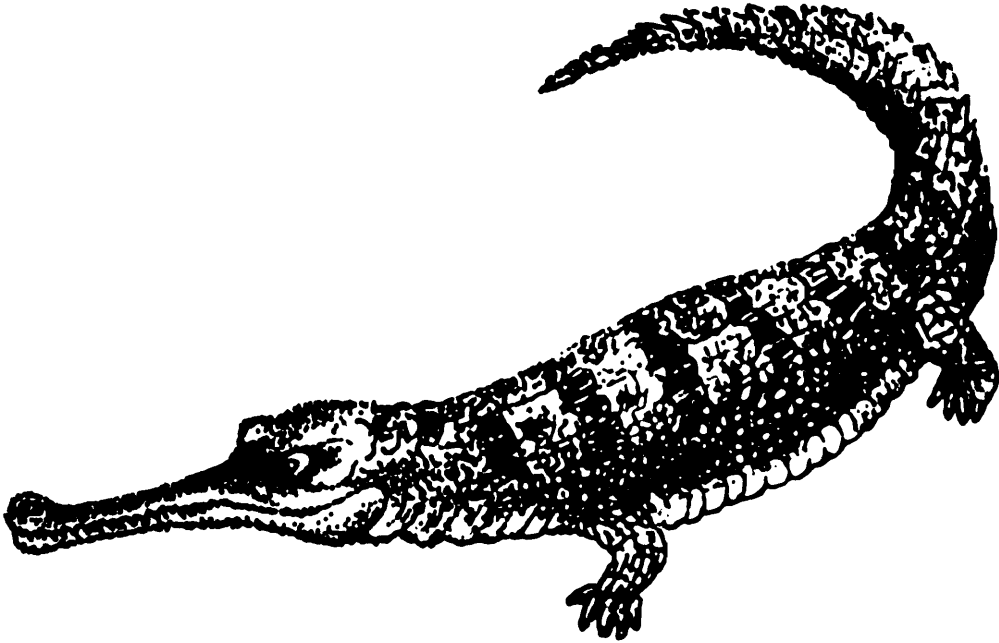
इनमें से कुछ कीट फसल और फल के बगीचे को नष्ट करने वाले होते हैं जैसे-टिड्डी सारे के सारे खेत के फसल को बहुत कम समय में नष्ट कर देते हैं। बहुत से कीड़े पौधों में बीमारी उत्पन्न करते हैं। इसके अलावे कुछ लाभदायक कीट हैं। जैसे- मधुमक्खी (एपिस), रेशम की कीड़े (बम्बीक्स मोरी) तथा लाह की कीड़े (कैरिया लैक्का) जिनसे क्रमशः मधु रेशम और लाह प्राप्त होते हैं, जो मानव के लिये उपयोगी हैं। बिहार के तालाब, पोखार, चौड़, ताल इत्यादि में करीब 200 तरह के जाति के मछलियों का लेख-प्रमाण मिलते हैं। इनमें से बहुत से मछलियाँ खाने के उपयोग में नहीं आते, परन्तु निम्न जेनस के जातियाँ खाने के लिये उपयोगी हैं और यहाँ के बाजारों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं: एनाक्रस, बंगेरियस, बारबस, बरिलियस, बोटिया, कतला, चन्ना, क्लैरियस, क्लूपिसोमा, कोसोचईलस, डैनियो, इसोमस, हेटेरोगेनेयूसटेस, पडसिया, लेवियो, मैस्टोसेम्बलस, माइष्टस, नन्दस, पूनटियस, पामा, रिता, टेट्राडान, रोहती, वालागो, जेनेनटोडौन इत्यादि। गंगा के समतल मैदान वाले इलाके में आज की तुलना में 30 वर्ष पहले करीब 4000 एकड़ जल क्षेत्र में मछली पायी जाती थी जो अब घट गयी है। जिससे करीब 48,122 टन प्रति वर्ष मछली उत्पादित किया जाता था। आज बिहार में मछली उत्पादन का क्षेत्र बढ़ाने की आवश्यकता है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में बहुत से तालाब की स्थिति अच्छी नहीं है जिसपर मत्स्य विभाग को ध्यान देने की आवश्यकता है।

मण्डूक श्रेणी (आमफिबिया वर्ग) के जन्तु प्राचीन काल से ही मनुष्य के आस पास रहते हैं। बिहार में ये करीब नौ प्रकार के हैं। जिसमें घर के आसपास और जल के नजदीक ब्यूफो मेलानास्टिकटस और राना टाइग्रिना की संख्या अधिक है। ये प्राणी कीटभक्षी होते हैं। ब्यूफो बड़े चाव से केंचुआ को खाते हैं जिससे केंचुआ की जनसंख्या कम हो जाती है। खेती के लिए मेंढक काफी लाभदायक होते हैं क्योंकि ये नुकसानदेह कीड़ों को खाते हैं। परन्तु दूसरी ओर इनका उपयोग मनुष्य भोजन के रूप में करते हैं। जिससे मेंढक की संख्या कम हो रही है।

रेप्टाइल्स (रेंगनेवाला जन्तु) श्रेणी के जन्तुओं में छोटे आकार के छिपकली, गिरगिट से लेकर बड़ा आकार के सर्प, कछुआ इत्यादि यहाँ के मैदानी इलाकों एवं पानी से भरे धान खेतों एवं गंगा और फल्गु नदी के किनारे पर पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त घड़ियाल (अलिगेटर) एवं मगर (क्राकोडाइल) गंगा एवं गंडक में पाये जाते हैं। मुख्यतः बिहार में इन रेंगने वाले जन्तुओं की 35 जातियाँ मिलती हैं।

कुछ सर्प विषैले होते हैं जो चूहे एवं अन्य छोटे जानवरों को खाते हैं और उनके जनसंख्या को कम करते हैं। विष का उपयोग आजकल कई प्रकार के बीमारियों जैसे न्यूराइटिस,

आर्थराइटिस, अस्थमा तथा इनके प्रतिविष के रूप में व्यवहार किया जाता है। कछुये का मांस खाने के काम में लाया जाता है तथा इसके खोली का उपयोग कंघी और बाजार के सुन्दर वस्तुओं को बनाने में किया जाता है। मगर एवं घड़ियाल के चमड़े का उपयोग कई प्रकार के वस्तुएँ जैसे बेल्ट इत्यादि के बनाने के काम में आता है जिसका बाजार में काफी मूल्य है। ये जीव दिन प्रति दिन कम हो रहे हैं। इसलिये सरकार ने इनको मारने पर प्रतिबन्ध लगाया है।



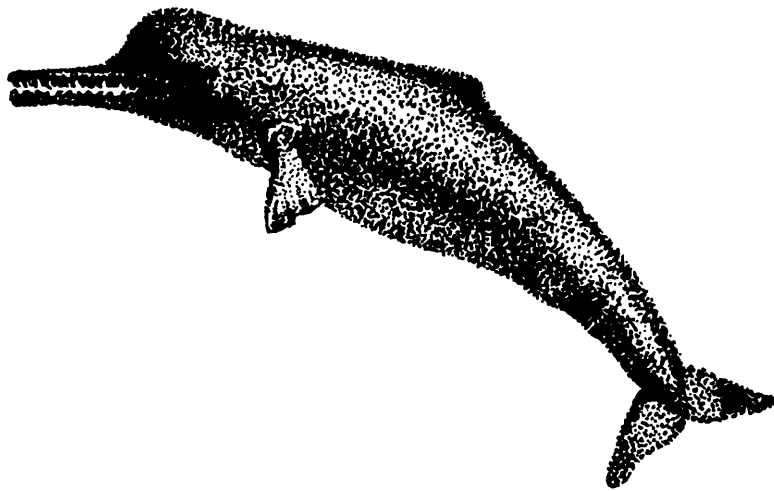
चित्र-1. घड़ियाल

यहाँ पक्षी के 350 से अधिक जाति-प्रजाति हैं। इन पक्षियों में कुछ तो शाकाहारी या फलभक्षी कुछ कीटभक्षी या मांसाहारी हैं। शाकाहारी या फलभक्षी में कबूतर, तोता, सुग्गा, पेंडुकी, अबाबील, बया पक्षी इत्यादि आते हैं। ये पक्षी फसल और बाग के फल को काफी मात्रा में नष्ट करते हैं। कुछ कीटभक्षी पक्षी जैसे—उल्लू, कठफोड़वा, गौरैया, तीतर, मैना इत्यादि फसल को नुकसान पहुँचाने वाले 'कीड़ों' को खाते हैं। यहाँ के लोग बत्तख, लालसर इत्यादि पक्षियों का आनन्द के लिये शिकार करते हैं। गिद्ध, चील, गरुड़, कौआ इत्यादि उपयोगी पक्षी हैं जो सड़े-गले या मरे जीव-जन्तुओं को खाकर वातावरण को साफ सुथरा रखने में मदद करते हैं। बाज ऐसा पक्षी है जो छोटे जानवरों तथा पक्षी को खाते हैं। यहा संधाल जाति के लोग कबूतर, बत्तख और मोर के पंखों को घर तथा वस्त्र सजाने के अतिरिक्त आभूषण के रूप में भी प्रयोग करते हैं। कुछ पक्षी जैसे-सनबर्ड परागण की क्रिया में मदद करते हैं।

यहाँ स्तनपायी जानवर के करीब 100 प्रजाति हैं। इसमें चूहे और चमगादड़ मानव से संबंधित हैं। चूहे के करीब 20 और चमगादड़ के 25 जाति-प्रजाति हैं। अधिकांश चूहे मनुष्य के घर, खेत और खलिहान में रहते हैं तथा चमगादड़ घरों, पुराने मंदिरों, मस्जिदों, गोदामों एवं गुम्बदों में तथा फलों के बगीचों में रहते हैं। चूहे और फलभक्षी चमगादड़ अन्न तथा फलों

को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। चूहे खेत-खलिहान और गुदाम में 3-4% अन्न नष्ट करते हैं। यहाँ के बगीचों में दो तरह के बन्दर और लंगूर हैं। ये बन्दर फलों और फसलों को अधिक नष्ट करते हैं। इनके नियंत्रण के लिये कम उपाय किये गये हैं। सरकार को इन समस्याओं को गहराई से समझने और इनके नियंत्रण के उपायों को दूढ़ने के लिये योग्य लोगों को नियुक्त करना चाहिये। बिहार में दो तरह के इन्सेक्टिवोरा आर्डर के प्राणी पाये जाते हैं। एक घर के आसपास और दूसरा बगीचा में पाये जाते हैं जो कीड़ों की जनसंख्या को संतुलित करते हैं।

यहाँ मध्यम एवं बड़े जानवर फसल पकने के समय आते हैं। जैसे-नीलगाय, सियार, खरगोश, मृग, गिलहरी, जंगली सुअर, नेवला, सांवर, साही, भालू इत्यादि। कुछ जंगली जानवर जैसे-भेड़िया, लोमड़ी, लकड़बग्घा, यहाँ तक कि तेंदुआ इत्यादि पशुशाला (बाड़ा) के आस-पास कभी कभी आ जाते हैं और पालतू जानवरों को नुकसान पहुँचाते हैं। आज इन जानवरों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम रही है। गंगा नदी तथा उसके पास की अन्य नदियों में सोंस (गेनेटिक डाल्फिन) पाई जाती हैं, जो अब संकट ग्रस्त श्रेणी की जन्तु है। अतः इनको संरक्षण की आवश्यकता है।



चित्र-2. सोंस (गंगा की डाल्फिन)

इन जीव जन्तुओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि अगर जीव-जन्तुओं पर ध्यान नहीं दिया गया तो इनकी संख्या कम हो जाएगी क्योंकि खेतों में आजकल बिना जाँच कराये नये-से-नये रसायन, उर्वरक-दवाईयाँ इत्यादि दिए जाते हैं जैसे-एल्ड्रिन, इत्यादि। जिससे हानिकारक कीड़ों के साथ-साथ लाभकारी जीव-जन्तु भी मारे जाते हैं। शहर, कल-कारखानों से निष्काशित द्रव्य पदार्थ से जल-प्रदूषण बढ़ रहा है। आज जीव संरक्षण कानून को लाभकारी बनाने की आवश्यकता है ताकि कोई जीव-जन्तु का विनाश न करें। सरकार के अलावे आम जनता का भी कर्तव्य होना चाहिए कि जीवों का संरक्षण करें तभी सभी जीवों का कल्याण संभव हो सकेगा अन्यथा एक जीव के लापता होने पर अन्य जीवों के जीवनयापन पर भी प्रभाव पड़ेगा एवं अन्य जीवों के जीवन समाप्त होने का भी डर बढ़ेगा।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

नदी किनारे की कीट विविधता

सतीश चन्द्र नाहर

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण विभाग,

गंगा प्रादेशिक केन्द्र, पटना-800 016

प्रकृति ने भारत वर्ष को काफी समृद्ध जैविक विविधता प्रदान की है। यहाँ करीब 40,000 वनस्पति की जातियाँ तथा 75,000 प्राणियों की जातियाँ मिलती हैं। प्राणियों में मुख्यतः करीब 60,000 कीट जातियाँ, 1693 मछलियों की, 300 से अधिक पक्षियों की तथा 372 स्तनपायी जीवों की जातियाँ हैं। इनके अतिरिक्त समृद्ध समुद्री जीव हैं जो लगभग 45 मिलियन हेक्टर उपतट कटिबंध में विद्यमान हैं।

सजीव जहाँ पाये जाते हैं, उनकी पारिस्थितिक जटिलताओं से उत्पन्न विविधता एवं परिवर्तनशीलता को ही जैविक विविधता (बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी) कहते हैं।

कीट समूह स्थलीय आधोपोडा के विकासीय परिवर्धन की पराकाष्ठा का प्रतीक है और इन्होंने विभिन्न पर्यावरण में अपने को अनुकूलित किया है। जलीय जीवन-यापन विधि से स्थलीय जीवन यापन विधि में संक्रमण होना उच्चतर मेटाजोआ के विकास का निर्णायक कदम था। इस परिवर्तन में सबसे मुख्य कठिनाई थी एक खास तंत्र का विकास जिससे चयापचय क्रिया के लिए गैसों का ठीक से आदान-प्रदान हो और साथ ही जीवों को सूखने के खतरा से बचाया जा सके।

स्थलीय कीट में श्वास-नली का विकास एक महत्वपूर्ण तथा विचित्र सफलता है। वयस्क हेमिपटेरा तथा कोलियोपटेरा वर्ग में यह आकृति सुरक्षित है। ये कीट प्रायः जल से बाहर आते हैं और स्वच्छ एवं ताजे वायु का सेवन करते हैं तथा उसे एयर-बबल या भौतिक गलफड़े में संग्रहित करते हैं। कीड़ों के बहुत से वर्गों में लावों का श्वसन ट्रैकियल गलफड़े के द्वारा होता है। लावों का क्यूटिकल पतला होने के कारण शरीर का पूरा भाग श्वसनिक रहता है।

अधिकतर जलीय-कीट में उनके मुख-भाग (माउथ-पार्ट्स) भोजन वेधक तथा चूषक होते हैं। ओडोनेटा वर्ग के नैयडस में निचले ओठ का रूपांतरित रूप मुखच्छद (मास्क) होता है जो शिकार पकड़ने के लिए उपयुक्त होता है। शरीर को हल्का बनाने के लिए कीट में एयर-

बब्बल का विकास हुआ है तथा गति के लिए पैर का रूपांतरण पैडल्स के रूप में हुआ है जो जलीय हैमिपटेरा और कोलियोपटेरा में विद्यमान हैं।

कीड़ों की कई जातियाँ पानी के बाहर पर्याप्त अवधि तक रह सकती हैं। अतः इससे स्पष्ट है कि वे वस्तुतः उभयचर जिन्दगी यापन करने के अभ्यस्त हैं। हैमिपटेरा, न्यूरोपटेरा, लेपिडोपटेरा कोलियोपटेरा, डिपटेरा, मेगैलिपटेरा तथा ट्राइकोपटेरा आदि वर्ग के सिर्फ निम्न ही जलीय जिंदगी यापन करने के लिए अनुकूलित हैं।

कीड़ों के 13 वर्ग हैं जो जलीय जिंदगी यापन करते हैं। इनमें से 8 वर्ग पूर्ण रूपेण जलीय तथा 5 वर्ग जल के किनारों में जीवन-यापन करते हैं। नदी किनारे तथा जलीय स्थानों पर पाये जाने वाले कीड़ों का वर्णन इस लेख में दिया गया है।

कोलेम्बोला (स्प्रींग-टेल्स)

ये अत्यंत सूक्ष्म, मुलायम शरीर वाले पंख-रहित कीट हैं। सतह-तनाव के कारण ये कीट प्रायः जल सतह की परत पर रहते या तैरते हैं। ये मृत-भक्षी या पादप-भक्षी हैं और ये सड़े-गले पौधे, डायटम, शैवाल, पराग, कवक (फंजाई), लाइकेन और अत्यंत कोमल पौधों का भक्षण करते हैं।

आथोपटेरा (सेमी-अक्वैटिक ग्रासहोपर्स)

इसका एक छोटा समूह ही केवल स्वच्छ जल में वास करने वाला है। स्केलिमिया हारपैगो नदी, नहर, तथा पोखर आदि जलाशयों के किनारे पाये जाते हैं। यह जाति शीघ्र पानी में चली जाती है और रूपांतरित मजबूत टाँग (टिबिया) की मदद से जल में तैरने में कामयाब होती है। यह कीट माँसीय संवर्धन पर जीवन-निर्वाह करता है और संभवतः जलीय आवासों के सन्निकट अंडे देता है।

प्लेकोपटेरा (स्टोन-फ्लाइज)

प्लेकोपटेरा के निम्न स्वच्छ एवं तेज धारा से बहने वाली नदियों एवं सोते में पाये जाते हैं और ये पत्थरों एवं सड़े पौधों के नीचे छिपे रहते हैं। इनके वयस्कों की पहचान इनके शरीर के पिछले छोर पर स्थित दो लम्बे एनल सरसाई से होती है। इनके एन्टीना लम्बे एवं पतले होते हैं। अधिकांश जातियों में इनके पंख काफी विकसित होते हैं लेकिन कुछ, खासकर नर, जाति में इनके पंख अधिक विकसित नहीं होते हैं, अतः ये अच्छे उड़नशील नहीं हैं और जलाशयों के किनारे बैठे हुए पाये जाते हैं।

इफीमेरोपटेरा (मे-फ्लाइज)

इस वर्ग के नाजुक कीट नदी, तालाबों, नहरों तथा सरोवरों के समीप में पाये जाते हैं।

वयस्क में 2 या 3 लम्बे सरसाई तथा छोटी एन्टीना होती हैं। भोजन नली वायु संग्रहित करती है जिससे कीड़ों के उड़ान में मदद पहुँचाती है। सम्भोग करने वाला नर जलाशयों के निकट मादा को आकर्षित करने के लिए नाचते हुए दिखाई पड़ते हैं।

ओडीनेटा (ड्रैगन तथा डैमसेल फ्लाइज)

इस वर्ग में ड्रैगन फ्लाइज (एनाइसोपटेरा) तथा डैमसेल फ्लाइज (जाइगोपटेरा) आते हैं। वयस्क एनाइसोपटेरा में पिछले पंख थोड़े से बड़े होते हैं तथा दोनों जोड़े पंख क्षैतिज स्थित होते हैं। जाइगोपटेरा में दोनों जोड़े पंख लगभग समान होते हैं वे उर्ध्वाधर रूप में स्थित होते हैं। ड्रैगन फ्लाइज की अपेक्षा डैमसेल फ्लाइज काफी नाजुक एवं अधिक उड़नशील नहीं होते। ये मन लुभावने कीड़े प्रायः वर्षा-ऋतु के पश्चात पोखरों, नदियों, सरिताओं एवं अन्य जलाशयों के निकट नाचते, झूमते मदमस्त दिखाई देते हैं।

लेपिडोपटेरा (बटर-फ्लाइज तथा मौथ्स)

तितलियाँ आकर्षक रंगों में पोखरों, तालाबों, नदियों एवं सरिताओं के समीप घूमती दिखती हैं और उन्हें देखकर मनुष्य कुछ समय के लिए सम्मोहित हो जाते हैं। मौथ्स का एक परिवार पाइरालाइडी है जिसके लार्वा पूर्ण रूपेण जलीय हैं। उनकी सभी प्रारूपिक आकृतियाँ स्थलीय केटरपिल्लर के समान हैं।

हेमिपटेरा (अक्वेटिक बग्स)

इन कीड़ों ने अपने को जलीय तथा अर्द्ध-जलीय जीवन यापन करने के लिए अनुकूलित किया है। उनके अग्र-पंख जोड़े हेमि-इलीट्रन हैं तथा दूसरे जोड़े पंख पूर्णतः झिल्लीमय हैं। नदी किनारे पाये जाने वाले कीट निम्नलिखित परिवारों के सदस्य हैं:

सालडीडी (शोर-बग्स)

ये खटमल-सा कीट वस्तुतः पूर्ण रूपेण जलीय नहीं हैं, परन्तु ये जलाशयों के समीप नदी किनारे पाये जाते हैं। यदा-कदा ये जल में भोजन हेतु एवं अण्डे देने के लिए प्रवेश करते हैं। ये गोलाकार होते हैं, इनकी आँखें सुस्पष्ट होती हैं तथा एन्टीना लम्बी होती हैं। ये जल सतह पर प्रजनन करते हैं और शायद डिपटेरा लार्वा खाकर जीवन निर्वाह करते हैं। इनके सारे लक्षण नदी किनारे पर पाये जाने वाले कीट के समान हैं। उदाहरण सालडा लिटोरिलिस।

नोटोनेक्टीडी (बैक-स्वीमर्स)

इस परिवार में वे कीट आते हैं जो शांत एवं क्षीण गति से बहने वाली नदियों, पोखरों आदि में पाये जाते हैं।

नेपिडी (वाटर-स्कोरपियन्स) :

ये कीट बिच्छू से मिलते जुलते हैं इसीलिए इन्हें जल-बिच्छू कहते हैं। ये जलीय पौधों से चिपके रहते हैं या उनके इर्द-गिर्द रेंगते दिखते हैं। पंख होते हुए भी ये विरले उड़ते हैं। ये कीड़े, क्रस्टैसियन्स खासकर डैफनिड्स आदि छोटे आर्थ्रोपोड्स का शिकार कर जीवन निर्वाह करते हैं। इनकी मुख्य जातियाँ हैं-रनात्रा, लैकोट्रीप्स रूबर, लैकोट्रीप्स ग्राइसियम। लेखक ने लैकोट्रीप्स ग्राइसियम जाति को "दया नदी" (महानदी इस्चुरी के मुख) के बालू-तट से एकत्रित किया है।

बेलोस्टोमैटिडी (जायंट-वाटर-बग्स)

हेटेरोपटेरा के सबसे बड़े कीट इस कुल के सदस्य हैं जो जलाशयों खासकर पोखरों, तालाबों, नदियों एवं नहरों के सामीप्य में रहना पसंद करते हैं। इनके अग्र-पैर पर-भक्षी (रैप्टोरियल) तथा अन्य दो जोड़े पैर तैरने में मदद के लिए चिपटे, लम्बे तथा रोयेंदार होते हैं। ये कीड़े प्रायः रात्रि में उड़ते हैं। ये कीट भुक्खड़ हैं और छोटी मछलियाँ, अपरिपक्व उभयचर तथा छोटे-छोटे कीड़ों का शिकार करते हैं। ये पक्षियों पर भी आक्रमण करते पाये गये हैं। उदाहरण-लिथोसिरस इण्डीकम।

कोलियोपटेरा (अक्वेटिक बीटल्स)

इस वर्ग के कीट सरिताओं, नदियों, तालाबों, झीलों आदि जलाशयों में छिछले जल में जहाँ जलीय संवर्धन तथा मलबों की प्रचुरता होती है, पाये जाते हैं। कोलियोपटेरा वर्ग के कीड़ों की मुख्य पहचान उनके रूपांतरित प्रथम जोड़े, कड़े, चमकीले पंख जिसे इलिट्रा कहते हैं, से होती है। यह लक्षण प्रायः कोलियोपटेरा के सभी वंशों में पाये जाते हैं। नदी, नालों, के किनारे रहने वाले कीट निम्नलिखित कुलों में पाये जाते हैं :

गाइरिनीडी (भरलिंग बीटल्स)

ये यूथचर भृंग जल के ऊपरी सतह पर एक वृत्त में धीमी गति से चलते नजर आते हैं। ये प्रायः सरिता एवं नदियों के स्वच्छ जल में पाये जाते हैं। इलीट्रा वयस्क कीट के उदर को पूर्णतः नहीं ढँकते हैं। इनके एन्टीना छोटे एवं मजबूत होते हैं। मध्य एवं पश्च जोड़े पैर तैरने के लिए चिपटे होते हैं और प्रथम जोड़े टाँगों (टार्सी) में नर-कीट में स्पंजी बाल होती हैं।

वयस्क एवं लार्वा दोनों अपमार्जक हैं और उनके मुख-भाग छेदक तथा चूषक हैं। पानी में बहते हुए संवर्धन में अंडे दिये जाते हैं और इनके प्युपल आवरण जलीय पौधों में या जल से बाहर मुलायम मिट्टी में बनते हैं।

इस कुल के मुख्य वंश गाइरीनस, ओरेक्टोचाइलस आदि हैं। लेखक के द्वारा ओरेक्टोचाइलस दया नदी के बालू-तट से एकत्रित किया गया है और इसे प्रथम बार महानदी इस्चुरी से अंकित किया गया है।

हाइड्रोफिलाइडी (वाटर स्कैवेंजर बीटल्स)

ये अपमार्जक कीट पोखर, तालाबों तथा नदियों के किनारे पाये जाते हैं। इनके एन्टीना क्लब आकृति के तथा सिर के नीचे ढँके होते हैं। उदाहरणार्थ हाइड्रोफिलस ।

सिसिन्डेलाइडी

सिसिन्डेला बाइरेमोसा जाति को महानदी इस्वुअरी तथा गोदावरी इस्वुअरी से लेखक ने बालू-तट से एकत्रित किया है और उसे बालू-तट पर विचरण करते हुए अवलोकन किया है। इस जाति के कीट चमकीले, चिकने एवं गहरे काँस्य-हरित रंग के होते हैं तथा उनके सिर एवं प्रोनोटम पर ताम्र-प्रतिबिम्ब दिखते हैं। इलीट्रा चमकीला एवं संधिरेखा पर अपर्याप्त रूप से अनियमित पंक्ति में छिद्र तक्षित होते हैं।

कुरकुलियोनिडी (वीभिल्स)

इस वर्ग के समुदाय नदियों के किनारे बालू-तट पर या जलीय पौधों के आस-पास पाये जाते हैं। इनकी पहचान एक लम्बी नुकीली क्लाउट से होती है। ये शाकाहारी होते हैं।

डिपटेरा

डिपटेरा वर्ग के इफीड्राइडी (शोर फ्लाइज) परिवार की वयस्क जातियाँ नमी वाली जगहों में जलाशयों के ईर्द-गिर्द तट पर रहती एवं प्रजनन करती हैं। इस परिवार की कुछ जाति गहरे सागर में भी पायी गयी हैं।

कृतज्ञता ज्ञापन

मैं डा० ए० के० घोष, भूतपूर्व निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता एवं डा० आर० के० वाष्णेय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण कलकत्ता, द्वारा उत्साह वर्द्धन एवं समुचित विभागीय सुविधाओं के लिए आभारी हूँ।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

सहयाद्री पर्वतमाला की प्राणी विविधता

राधेश्याम शर्मा एवं गुलाम मुहम्मद यजदानी

भारतीय प्राणी-सर्वेक्षण, पश्चिमी प्रादेशिक केंद्र,

पुणे-5. (महाराष्ट्र)

भूमिका

समस्त भारत देश की भौगोलिक एवं प्राकृतिक रचना पर नजर डालेंगे तो सहज ही इसकी अनोखी विभिन्नता और विविधता का आपको दर्शन होगा। प्रकृति प्रदत्त इन विरासतों की विभिन्नता और विविधताओं से बनती हैं अलग अलग पारिस्थितिकी प्रणालियां, जिसमें अनगिनत प्राणी एवं वनस्पति जातियां अनादिकाल से वास करती आ रही हैं।

पिछले कई शतकों से विश्व में मनुष्य जानि की संख्या में अनियंत्रित वृद्धि होती रही है। मानव ने प्रकृति पर अपना स्वामित्व जताने के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से विविध प्राकृतिक संसाधनों का शोषण कर तथाकथित "विकास" कर लिया। किन्तु अत्यधिक तेजी से हुए इस अविवेकी विकास के कारण सारे परिवेश में बदलाव आ गया। नतीजन हमने अपने भौतिक सुख सुविधाओं के लिए आवश्यक वस्तुओं का बड़ी मात्रा में निर्माण तो कर लिया, परंतु साथ ही जनसंख्या विस्फोट, प्रदूषण, सूखा एवं अकाल, बाढ़, विभिन्न प्रकार के रोगों का संक्रमण जैसी कई समस्याओं को जन्म दिया। प्राकृतिक असंतुलन के विनाशकारी परिणाम अब हम खूब अच्छी तरह से महसूस कर रहे हैं। इन परिणामों की गति को धीमी करने के लिए पर्यावरणीय समस्याओं को सुलझाने के लिए विश्व स्तर पर अथक प्रयास किए जा रहे हैं। भारत भी इस दिशा में विभिन्न योजनाओं को तेजी से कार्यान्वित कर रहा है।

तथाकथित मानव विकास के गंभीर परिणामों का असर देश की समूची जीव संपदा पर हुआ है। फिर भी हमारे लिए गौरव की बात है कि अभी भी हमारे विशाल देश के विभिन्न क्षेत्र अनोखी जैविक विविधता को पनाह दिए हुए हैं। इसीलिए विश्व के चुनौदा "जैविक विविधता समृद्ध" राष्ट्रों में भारत की गिनती होती है।

भारत सरकार का पर्यावरण एवं वन मंत्रालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों द्वारा देशभर में सर्वेक्षण करके विशिष्ट पारिस्थितिकी प्रणालियों के आधार पर जैविक वैविध्यतापूर्ण स्थलियों का पता लगाकर उनमें वास करनेवाली जीव संपदा की सूची बनाने का कार्य करता है। जिससे इन संरक्षित क्षेत्रों के यथोचित विकास में सहायता होती है।

सहयाद्री पर्वतमाला ऐसी ही एक जैविक विविधता से समृद्ध सौंदर्यस्थली है जिसका संरक्षण करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस लेख में, सहयाद्री पर्वतमाला की स्थलाकृति, विशिष्टताएँ और प्राणि संपदा का ब्योरा संक्षिप्त में प्रस्तुत किया गया है।

स्थलाकृति

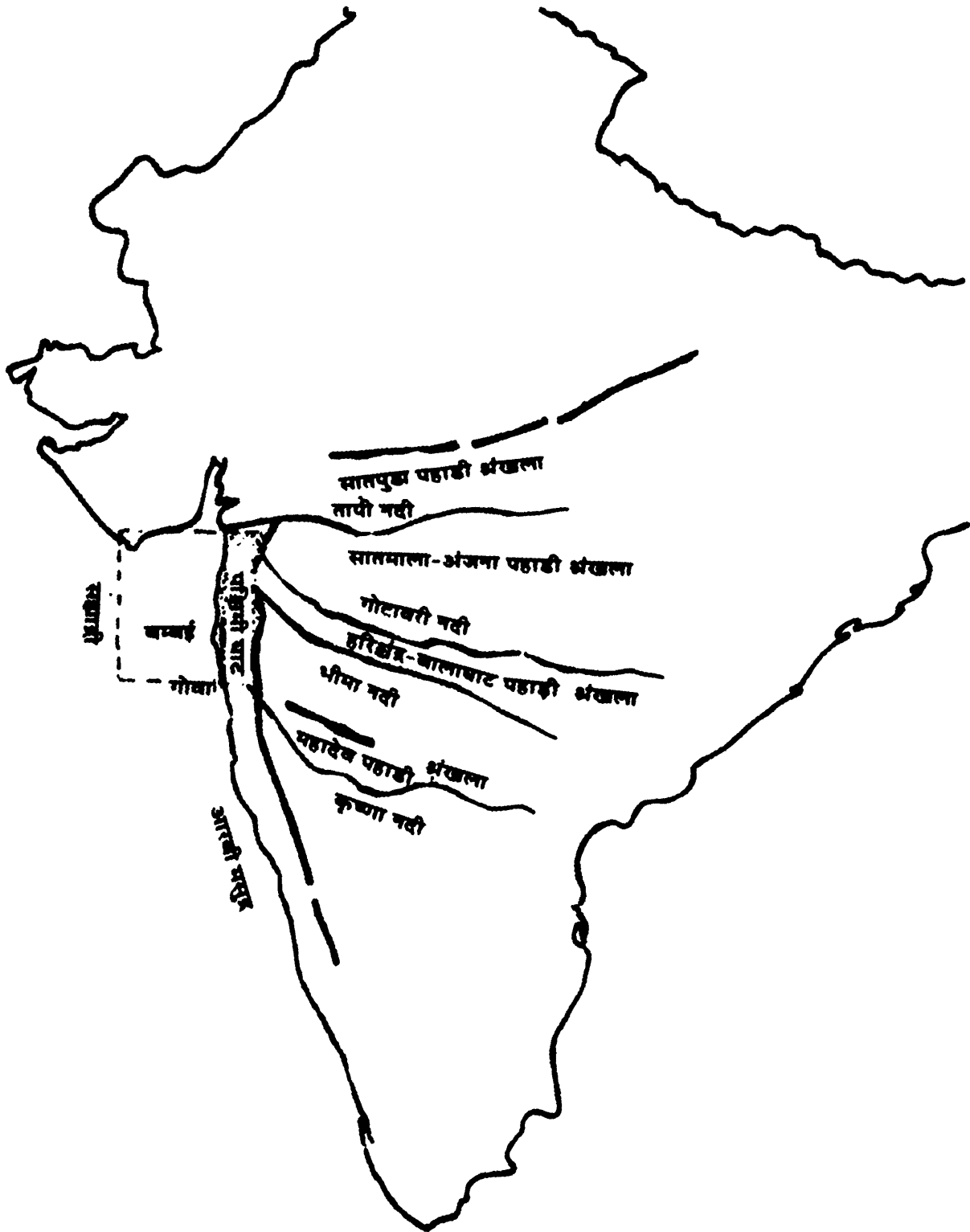
पश्चिम भारत के दक्षिणी पठार भूमि से दक्षिणोत्तर दिशा में सटी हुई 1600 कि. मी. लम्बी प्राचीनतम एवं प्रमुख विशालमय पर्वत श्रृंखला को आम तौर पर “पश्चिमी घाट” कहा जाता है। यह पर्वतमाला पश्चिमी समुद्री तट को लगभग समानान्तर होकर 45 से 100 कि. मी. भीतर की ओर स्थित है और इस महाद्वीप के दक्षिणी छोरपर महाराष्ट्र में नवापुर से लेकर तमिलनाडु के कन्याकुमारी तक फैली हुई है। इस पर्वतमाला के विभिन्न हिस्सों को अलग अलग नामों से जाना जाता है। जैसे इसके उत्तरी भाग के आधे हिस्से को “सहयाद्री” तो दक्षिणी भाग के आधे हिस्से को “अन्नामलाई” आदि।

मुख्य रूप से सहयाद्री पर्वतमाला समतल शीर्ष शिखरों की श्रृंखला है जो अक्षांश $20^{\circ} 30'$ उत्तर और देशांश 76° पूर्व के मध्य में स्थित है। इसका फैलाव दमण गंगा पर बने पारनेर किले से लेकर सावंतवाड़ी, गोवा और कर्नाटक में बाबा बुधीन पहाड़ी तक है। इसकी औसतन ऊँचाई 1300 मीटर है और इसके उच्चतम शिखर ‘कल्सुबाई’ (जो महाराष्ट्र में पड़ता है) की ऊँचाई 1646 मीटर है। इस पर्वतमाला में दो महत्वपूर्ण दरें हैं जो थाल और बोर घाट के नाम से जाने जाते हैं।

प्रमुख सहयाद्री पर्वतमाला के समकोण में पूर्व-पश्चिम दिशा में इसकी उपशाखाओं के रूप में तीन पहाड़ी श्रृंखलाएं फैली हुई हैं (कृपया मानचित्र-1 देखें)।

- (1) सातमाला —अजंता पहाड़ी श्रृंखला—जो तापी नदी बेसिन के दक्षिण एवं गोदावरी बेसिन के उत्तर में स्थित है।
- (2) हरिश्चंद्र—बालाघाट पहाड़ी श्रृंखला—यह ऊपरी गोदावरी बेसिन के दक्षिण और भीमा नदी बेसिन के उत्तर की ओर स्थित है।
- (3) महादेव पहाड़ी श्रृंखला—यह श्रृंखला भीमा नदी बेसिन को कृष्णा नदी बेसिन से अलग करती है।

सहयाद्री पर्वतमाला और उसकी उपशाखाओं से कई प्रमुख नदियों का उद्गम होता है। यह



मानचित्र-1. सह्याद्री पर्वतमाला और उपशाखाएँ

नदियां और उनके बेसिन प्रायद्वीप के जलसंभर हैं। इनपर जगह जगह बने बांधों से दक्षिण में अर्धमरू-स्थलीय क्षेत्रों के लिए सिंचाई की सुविधाओं का निर्माण हो सका है। सहयाद्री पर्वतमाला अब खंडित रूप में उष्णकटिबंधीय वनों से आच्छादित है। वर्षाकाल में इन पर्वतमाला क्षेत्र में औसतन 600 से. मी. वर्षा होती है। सहयाद्री पर्वतमाला विशेष रूप से बासाल्ट चट्टानों की बनी है। किन्तु पहाड़ी शीर्ष लैटेराइट के बने होने से इन शिखरों पर विशिष्ट प्रकार के पेड़ पौधे पाए जाते हैं।

सहयाद्री पर्वतमाला की विशिष्टताएं

(क) किले, दुर्ग एवं पर्वतनगर

सहयाद्री पर्वतमाला आदिकाल से ही अपने अनूठे भौगोलिक रचना एवं प्राकृतिक सुषमा के कारण मानवोपयोगी सिद्ध हुई है। प्राचीन काल में तत्कालीन सम्राटों ने सहयाद्री के ऊंचे शिखरों पर सिंहगढ़, प्रतापगढ़, राजगढ़, लोहगढ़, तोरणा, शिवनेरी, वासोटा, अजिंक्यतारा, पुरंदर जैसे अनेक दुर्ग, किले अथवा गढ़ बनवाये। अब भले ही ये किले खंडहर बनकर रह गए हों लेकिन इन ऐतिहासिक एवं पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण जगहों में वास कर रही वन-जीव संपदा को भुलाया नहीं जा सकता। राज्य सरकारें अब इन किलों के आसपास के परिसर को पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित कर निसर्गरम्य बनाने का प्रयास कर रही हैं।

सहयाद्री पर्वतमाला में स्थित लोणावाला, खंडाला, माथेरान, महाबलेश्वर, पन्हाला जैसे हिलस्टेशन ब्रिटिश राज से लेकर आजतक बसुंधरा की सौंदर्यता एवं लुभावने दृश्यों के लिए विख्यात हैं। हिलस्टेशन प्राणि एवं वनस्पतिविज्ञों के लिए अति महत्वपूर्ण स्थान रहे हैं क्योंकि इन जगहों से अनेक नयी प्राणी जातियों की खोज हुई है जिन्हें वैज्ञानिक भाषा में “टाइप लोकलीटीज” कहा जाता है।

(ख) पौराणिक मंदिर एवं पवित्र वाटिकाएं

मानव ने जब से सभ्यता और संस्कृति के विकास की ओर कदम रखा है तब से आजतक उसकी धार्मिक मान्यता एवं धारणा यही रही है कि ऊंचे पर्वत एवं पहाड़ियों में भगवान वास करते हैं। सच भी है, आप देखेंगे कि जितने भी पौराणिक एवं पूजनीय तीर्थ स्थल हैं वे मुख्यतः ऊंची जगहों पर ही स्थित हैं। इसी प्रकार सहयाद्री पर्वतमाला में भी अगणित पौराणिक मंदिर तथा धार्मिक स्थल हैं जिनका संदर्भ पुराणों में मिलता है। जैसे भीमाशंकर, त्रंबकेश्वर, जेजुरी, पांडेश्वर आदि उल्लेखनीय हैं। भीमाशंकर और त्रंबकेश्वर में स्थित पौराणिक शिवमंदिर भारत के पूजनीय बारह ज्योतिर्लिंगों में से हैं। यहां से क्रमशः भीमा और गोदावरी जैसी महत्वपूर्ण नदियों का उद्गम होता है।

पवित्र स्थल के साथ साथ इन पर्वतमाला में लगभग 350 ऐसी पवित्र वाटिकाएं अथवा तपोवन पाए जाते हैं जिन्हें हम 'जीवसंपदा के दिव्य संरक्षक' कह सकते हैं। इन वाटिकाओं के वनों से धार्मिक श्रद्धाएं जुड़ी होने के कारण इन पर कुल्हाड़ी चलाने का मतलब है शपथ होना या फिर दैवी कोप से ग्रसित होने का भय। यह उष्णकटिबंधीय सदाहरित वाटिकाएं सहयाद्री पर्वतमाला के पादप-विविधता की उत्कृष्ट मिसालें हैं। इसी पर्वतमाला में 3000 एकड़ भूमि पर फैली हुई एशिया में सबसे बड़ी वाटिका 'उदगिरी' स्थित है।

(ग) राष्ट्रीय उद्यान, पशुविहार एवं वन उद्यान

सारे भारत वर्ष में विभिन्न विकास योजनाओं की असंतुलित गतिविधियों, बिगड़ते पर्यावरण, प्रकृति में अनावश्यक मानवीय हस्तक्षेप और अविवेकी अतिक्रमण के कारण हमारी प्रकृति प्रदत्त विरासतें आए दिन कम होती जा रही हैं। इस स्थिति में सुधार लाने के सफल प्रयास अब केवल विभिन्न राज्यों में कानूनी तौर पर स्थापित राष्ट्रीय उद्यानों एवं पशुविहारों में ही हो रहे हैं। इसी तरह सहयाद्री पर्वतमाला की जैविक विविधता को बचाये रखने में इन पर्वतमाला में स्थित अनेक संरक्षित क्षेत्रों का योगदान सराहनीय है।

महाराष्ट्र राज्य में स्थित पांच राष्ट्रीय उद्यानों में से एक राष्ट्रीय उद्यान, तथा महाराष्ट्र और गोवा राज्य में स्थित पच्चीस पशुविहारों में से ग्यारह पशुविहार, सहयाद्री पर्वतमाला के क्षेत्र में स्थित हैं। इनमें से विशेषकर भीमाशंकर पशुविहार यहां पायी जानेवाली भारतीय विस्तार गिलहरी की प्रतिबंधित उपजाति के लिए विख्यात है। इसके अलावा राज्य के बत्तीस वन उद्यानों में से लगभग चौदह वन उद्यान सहयाद्री में स्थित हैं।

प्राणी विविधता

सहयाद्री पर्वतमाला का विस्तृत क्षेत्र निरंतर हो रहे वनोन्मूलन और विभिन्न विकास योजनाओं के कारण पहले जैसा जंगलों से आच्छादित तो नहीं रहा, किन्तु इनमें स्थापित अनेक संरक्षित वन क्षेत्र, पहाड़ों से निकले असंख्य झरनों, प्रमुख नदियों, तालाबों, जलाशयों एवं अन्य प्राकृतिक वासस्थानों के अध्ययन से यह निश्चित कहा जा सकता है कि अब भी यहां का प्राणिजगत समृद्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इनकी प्रचुरता में अवश्य कमी हुयी है। यहां के विविध प्राणि-समुदाय का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया गया है।

कशेरुकी प्राणी

मछलियां

सहयाद्री पर्वतमाला की प्रमुख नदियों पर बने कई बांधों, जलविद्युत प्रकल्पों तथा विभिन्न भागों से हो रहे निरंतर जलप्रदूषण के बावजूद भी यहां मछलियों के 20 विभिन्न कुलों में

बिखरी करीब 130 जातियां पायी जाती हैं। इनमें सिप्रीनीडी कुल प्रमुख है। यहां के पर्वतीय झरनों में गारा, पैराप्सायलोरीकस, नेमोकायलस, लेपीओसिफैलीकथीस वंश की जातियां मुख्य रूप से पायी जाती हैं। सहयाद्री के प्रतिबंधित एवं विशेष क्षेत्री (एन्डेमिक) जातियों में पैराप्सायलोरीकस वंश की कुछ जातियां तथा पुंटीयस वंश की सहयाद्रीएनसीस, डकनेनसीस और फेसीएटस जातियों का समावेश होता है। यह जातियाँ महाराष्ट्र और गोवा राज्य में पायी जाती हैं। ऑस्टीयोब्रामा भीमेन्सीस केवल महाराष्ट्र में भीमा नदी, तो सायलूरस गोवाई केवल गवा के जल में पायी जाती है। सहयाद्री में यत्र-तत्र पायी जानेवाली मत्स्यसंपदा में वालेगो, ओंपाक, बगेरस, नोटोप्टेरस, अंग्यूला, बेरिलीयस, सोन्हीनस, रासबोरा, ऑस्टोवेलीयस, लेबीयो, सायझोमेटारीकस, चान्ना आदि वंश की जातियां सम्मिलित हैं। सहयाद्री के कुछ हिस्सों में पायी जानेवाली सांप की भांती दिखनेवाली मोनोप्टेरस वंश की मछली अब विरल हो गयी है। ऐंगलर्स डिलाईट कहलानेवाली डेक्कन महासोर-टॉर वंश की दो जातियां आम तौर पर सहयाद्री की नदियों तथा तालाबों में कम-ज्यादा परिमाण में पायी जाती हैं।

उभयचर

(संदर्भ के लिए डेनीयल 1963 और शेखर 1992 देखें)

भारत वर्ष में पश्चिमी घाट और पूर्वी हिमालय उभयचर प्राणियों की समृद्ध स्थलियां मानी जाती हैं। सहयाद्री पर्वत माला में 5 कुलों में बिखरी 12 विभिन्न वंशों की 24 जातियां पायी जाती हैं। इनमें रेनीडी कुल और राना वंश प्रमुख है। सहयाद्री के विशेष क्षेत्री जातियों में राना सहयाद्रीन्सीस और नैक्टीबैट्रीकस हुमायूनी का समावेश होता है। साथ ही ब्यूफो मायक्रोहायला, ऐम्लेला युपेरोडॉन टोमोप्टरना, फिलाऊटस, पॉलीपेडेटस, रेक्वोफोरस वंश की जातियों का वितरण भी इस पर्वतमाला के क्षेत्रों में विस्तृत रूप से मिलता है।

विकासात्मक प्रक्रम में आदिम, अपाद उभयचर (सिसीलियन) सामान्य रूप से सांप की तरह दिखते हैं। इक्थीयोफीस ओर इंडोटीफलस वंश की जातियां सहयाद्री पर्वतों के सघन जंगलों में बहते झरनों के आसपास पायी जाती हैं। इनमें से इंडोटीफलस बालटेरीसबाय यह जाति सहयाद्री में स्थित लोनावाला-खंडाला हिलस्टेशन क्षेत्र में ही प्रतिबंधित है।

सरीसृप

(संदर्भ के लिए डेनीयल 1983, शर्मा 1976 और मूर्ति 1985 देखें)

सरीसृपियों में छिपकली, कूर्म, कच्छप, मगर एवं सर्पों का समावेश होता है। सहयाद्री पर्वतमाला में इन प्राणिजात की संख्या ध्यानाकर्षी हैं।

(1) छिपकली—समस्त पश्चिमी घाट क्षेत्र में पाये जानेवाले लगभग 64 जातियों में से कम से कम 26 जातियां सहयाद्री में विस्तृत रूप से वितरित हैं। जिनमें से कुछ तो इन्हीं पर्वतमाला क्षेत्र के विशेष क्षेत्री प्राणियों में से हैं। जैसे :

फैट टेल्ड लीझर्ड (ड्रेको ज्युसीमेरी); डेकन रॉक जेको (सीरटोडैक्टायलस डेक्कनेनसीस); कलेमासपीस गोवनेनसीस; फॉरिस्ट ब्लड सकर (केलोटीस साउव्सी); रायोपा गोवनेनसीस; युमेसेस पुनेनसीस; ऑफीसॉप्स बेडोमीए: ऑफीसॉप्स जेरडोनी आदि । अन्य वंश की जातियों में व्हेरेनस, कैमेलीयॉन, रिस्टेला, मैब्युआ, सीटाना, ड्रेको (फ्लाईंग लीजर्ड); हेमीडैक्टायलस की कई जातियां; इविडोजैको आदि पाये जाते हैं।

(2) मगर, कच्छप एवं कूर्म— मगर की एक जाति क्रोकोडीलस पालुसट्रीस (मार्स क्रोकोडाईल), कच्छप की दो जातियां मिल्नोचीलीस ब्रायजुगा (इंडियन पॉन्ड टेरापीन), कछुगा टेन्टोरिया (डेकन सॉ-बक टेरापीन), मीठे जल में पायी जाती है तो एक जाति जीओचेलेन एलीगन्स (स्टार टॉरटाइज) जमीन पर रहती है। कूर्म जाति में लीसेमीस पंक्टेटा ग्रनोजा (पेनीनसुलन मड टरटल या क्लूप शैल) नामक जाति पायी जाती है। कूर्म जाति के प्राणियों को मंदिरों के आसपास के तालाबों, जलाशयों में धार्मिक भावना से रखा जाता है जिन्हें भाविक लोग भोजन भी देते हैं।

(3) सर्प— सारे भारत वर्ष में सर्पों की 240 जातियां पायी जाती हैं। उनमें से करीब 50 जाति के सर्प सामान्यतः सब जगह मिलते हैं। सहयाद्री पर्वतमाला क्षेत्र में लगभग 22 जातियां मिलने के प्रमाण उपलब्ध हैं। यहां के विशेष क्षेत्री जातियों में रसेल्स अर्ब बोवा (इरीक्स कोनीकस) ; गोल्डन ट्री या फ्लाईंग स्नेक (क्लायसोपेलीया ऑरनेटा); रसेल्स या व्हीरीगेटेड कुकरी स्नेक (ऑलीगोडॉन टेनियोलेटस) ; ग्रेज रैट स्नेक या ग्लोसी बेलीड रेसर (अरजीरोजेन्स व्हेन्टोमक्युलेटा) उल्लेखनीय हैं। अन्य वंश जातियों में अजगर, धामण, अफाई, दोमूहा, ट्रीकैट स्नेक, ऑसीयोलेट शिल्ड-टेल, ट्रीस्नेक, नाग-राज, सकरा आदि सामान्य रूप से इस क्षेत्र में पाये जाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सरीसृपों की संख्या उनके वासस्थानों पर हो रहे मानवी अतिक्रमण तथा उनकी त्वचा के लिए की जा रही निर्मम हत्या के कारण निरंतर कम हो रही है । उसके लिए सहयाद्री क्षेत्र कोई अपवाद नहीं है।

पक्षी

(संदर्भ के लिए हेगडे और डैनियल्स 1986 तथा टिकादार 1984 देखें)

पक्षियों के आवास, खाद्य, तथा उनके व्यवहार एवं स्वभाव में पायी जानेवाली भिन्नता और विविधता के आधार पर किसी भी क्षेत्र के पर्यावरण स्थिति का अनुमान वहां के पक्षी जगत की प्रचुरता से लगाया जा सकता है। समस्त पश्चिमी घाट का क्षेत्र पक्षियों के लिए समृद्ध स्थान माना जाता है। हेगडे एवं डैनियल्स (1986) के अनुसार पश्चिमी घाट में पक्षियों की 580 जातियां तथा उपजातियां पायी जाती हैं।

किसी भी संरक्षी आकलन द्वारा यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रवासी, अप्रवासी, विपथगामी तथा जलीय पक्षियों को मिलाकर सहयाद्री पर्वतमाला में लगभग 250 और 300 के बीच पक्षी जाति एवं उपजातियां पायी जाती हैं।

पक्षिविज्ञों ने अबतक 14 जातियों के नाम पश्चिमी घाट के विशेष क्षेत्री एवं प्रतिबंधित पक्षियों के रूप में दर्ज किए हैं। जैसे मलाबार व्हीसलींग थ्रश (मायीओफोनस व्हार्सपिण्डी); मलाबार क्रेसटेड लार्क (गलेरीडा मलबारीका); ग्रेट इंडियन हार्नबील (ब्युसेरॉस बायकॉरनीस) सहयाद्री यलो ब्रौड बुलबुल (हप्सीपेटस इंडिकस) आदि उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी घाट में पाये जाने वाले कुछ पक्षी अब संकटग्रस्त जाति के रूप में जाने जाते हैं।

स्तनपायी

(संदर्भ के लिए स्टेट फौना गैज़ेटीयर 1974 तथा टीकादर 1984 देखें)

सहयाद्री पर्वतमाला क्षेत्र के स्तनपायी जंतुओं की 46 वंश की लगभग 65 जातियां/उपजातियां आठ विभिन्न गणों में बंटी हुयी हैं; जो इस प्रकार हैं:

- (1) किटाशगण—इस में छछुंदर की दो जातियां इस क्षेत्र में पायी जाती हैं, एक है पेड़ छछुंदर और दूसरी घरेलू छछुंदर।
- (2) चमगादड़ गण—चमगादड़ों की 19 जातियां इस क्षेत्र में मिलती हैं जिनमें पेशवाबैट नामक (मायोटीस पेशवा) जाति विशेष क्षेत्री एवं प्रतिबंधित हैं।
- (3) नर-वानरगण—इसमें बॉनेट बंदर (मेकाका रेडीयेटा) और सामान्य लंगूर (प्रेसबायटीस एनटेल्स) सम्मिलित हैं।
- (4) वज्रशल्कगण—भारतीय पेंगोलीन (मैनीस क्रैसीकावुडेटा) यहां पाया जाता है।
- (5) मांसाहारीगण—इसमें कुत्ते, बिल्ली, भालू और सिवेट बिल्लियों का समावेश होता है। इस गण के 14 प्राणी यहां पाए जाते हैं। जिनमें बाघ, तेंदुआ, लक्कड़बग्घा, भालू, नेवला, सियार, लोमड़ी, तथा बिल्लियों में रस्ती स्पॉटिड केट उल्लेखनीय है।
- (6) समखुरीगण—सूअर, हिरण, बारहसिंगा आदि का समावेश इस गण में किया जाता है। जंगली सूअर, माऊसडीयर, चीतल, सांभर, चौसींगा, नीलगाय, मोर आदि यहां काफी संख्या में पाए जाते हैं।
- (7) खरगोशगण—खरगोशगण की केवल एक ही जाति लेपस निग्रीकोलीस यहां पायी जाती है।
- (8) कृन्तकगण—गिलहरी, साही और चूहों का यह गण इस क्षेत्र में विस्तृतरूप से पाया जाता है। साही की उपजाति हिस्ट्रीक्स इंडीका इंडीका यहां पायी जाती है। भारतीय विशाल गिलहरी में कमसे कम तीन भिन्न उपजातियां इस क्षेत्र में वितरित हैं जिनमें राटुफा इंडिका एलफिन्सटोनी उल्लेखनीय हैं। यह प्रजाति भीमाशंकर पशुविहार के क्षेत्र में विशेष क्षेत्री कहलाती हैं। गिलहरी की अन्य जातियों में तीन और पांच पट्टेवाली गिलहरीयां सामान्य रूप से मिलती हैं। चूहों की 12 जातियां यहां पायी जाती हैं जिनमें

टटेस, बॅन्डीकोटा, मस, गोलुंडा, व्हॅन्डेलूरीया, मिलरडीया और रेटस जातियों का समावेश होता है।

अकशेरुकी प्राणी

(संदर्भ के लिए फौना गैडोटीयर 1974, टीकादर एवं बस्तावडे 1983, वीटर-ब्लीथ 1957, फ्रेजर 1933, कोरबी 1914 तथा वजीरानी 1967 देखें)

अकशेरुकी प्राणियों की संख्या समस्त प्राणिजगत के लगभग 96% प्रतिशत होती है। सहयाद्री पर्वतमाला क्षेत्र के अकशेरुकी प्राणिजात का सही अनुमान लगाना वैसे कठिन है फिर भी जिन जंतुओं का ब्यौरा सहज उपलब्ध हो सका है उसको संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अकशेरुकीयों में सबसे महत्वपूर्ण विशाल और जैविक विविधता दिखानेवाला संघ संधिपाद प्राणियों का है जिसमें परष कवची, अयुतपाद, लूताभ और कीटों को समाविष्ट किया गया है।

परष कवची वर्ग—(केंकड़े, झिंगे आदि) ये मीठे जल तथा जमीन पर रहनेवाले प्राणी हैं। इनकी कई जातियां इस क्षेत्र में पायी जाती हैं।

अयुतपाद वर्ग—(शतपाद एवं सहस्रपाद) भारत में इनकी 75 से अधिक जातियां पायी जाती हैं। सहयाद्री में लगभग 30 जातियों के मिलने का अनुमान है।

लूताभवर्ग—(मकड़ी, वृश्चिक, कूट वृश्चिक, चिंचड़ी और कुटकी आदि)

हर स्थान पर पाये जाने वाले ये जंतु सहयाद्री में भी बहुतायत में पाए जाते हैं। मकड़ियोंकी 14 कुलों में बिखरी 45 गण की 90 से अधिक जातियां यहां पायी जाती हैं। वृश्चिकों (बिच्छुओं) की तीन कुलों में बिखरी 8 की 24 जातियों का सहयाद्री पर्वतमाला क्षेत्र में पाये जाने का लिखित विवरण उपलब्ध है, जिनमें मेजोबुधस टेम्बूलस कोकनेनसीस नामक उपजाति उल्लेखनीय है जिसका डंक घातक भी हो सकता है।

कीटवर्ग—षटपादों को प्राणिजगत के स्वामी एवं सर्वव्यापी प्राणी कहा जाता है। सहयाद्री पर्वतमाला क्षेत्र भी इस वर्ग के विभिन्न गणों से समृद्ध है। उनमें से उल्लेखनीय गणों की जानकारी नीचे दी गयी है।

व्याधपतंगों (ओडोनेटा) की लगभग 63 जातियां इन पहाड़ी श्रृंखला क्षेत्र में पायी जाती हैं। उनमें से कुछ विशेष क्षेत्री हैं, जैसे : कैकोन्युरा चरटीकेलीस अननडेली (महाबलेश्वर में पायी जाती है) ; मक्रोगोम्फस लांगीस्टीमा लांगीस्टीमा मायक्रोगोम्फस टॉरक्रेटस; सायब्लोगोम्फस हेटेरोस्टायलस (पूना : कात्रज में मिलती है); हायड्रोबैसीलीयस कॉरसस (खंडाला में पायी जाती है) आदि। छोटे स्पर्शतंतुवाले ऋजुपंखीय (आर्थोप्टेरा) की लगभग 26 जातियां यहां

पायी जाती हैं। उनमें से बहुतेरी पहलीबार इस क्षेत्र से ही मिलने के प्रमाण उपलब्ध हैं। जैसे टेरेटोडस माँन्टीकोलीस, केटेनटोप्स ह्यूमीलिस, स्फीग्रो नोटस, बालटीयायस, क्रोटोमोनस पेलीडस आदि।

यह क्षेत्र शल्क-पंखियों (लेपीडोप्टेरा) के लिए समृद्ध स्थान है। यहां पतंगों की 400 से अधिक तो तितलियों की कमसे कम 150 जातियां पायी जाती हैं। तितलियों के आवास स्थानों पर निरंतर हो रहे अतिक्रमण के कारण एक समय में अधिकांश जगह पाये जाने वाली तितलियों की कई जातियां अब खंडीत रूप से पाये जाने वाले वन क्षेत्रों में प्रतिबंधित होकर रह गयी हैं। फलस्वरूप लगभग 16 जातियों के नाम उनके दुर्लभ संकटग्रस्त हो जाने के कारण वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 के तहत बने अनुसूचित हो चुके हैं।

जलचर भृंगों (कोलीयोप्टेरा) की लगभग 47 जातियां सहयाद्री पर्वतमाला के जलस्रोतों में पायी जाती हैं। इनमें दो नयी जातियों का इस क्षेत्र से आविष्कार उल्लेखनीय है। वे हैं :— मायक्रोडायटस सबीते और क्लीपीयडायटस हेमानी।

अन्य कीट गणों की अगणित जातियां इस क्षेत्र की प्राणी विविधता में अपना स्थान रखती हैं।

निष्कर्ष

आज के बदलते परिवेश में जनसंख्या विस्फोट, निवर्नीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और प्रदूषण जैसी स्थायी समस्याओं का सीधा प्रभाव पर्यावरण और प्रकृति में वास कर रही जीवसंपदा पर पड़ता है। फलस्वरूप हर क्षेत्र से जीवसंपदा में सतत एवं तेजीसे कमी हो रही है। केवल कानूनी तौर पर प्रशासनिक पाबंधियां लगाकर इस स्थिति को रोका नहीं जा सकता। जरूरत है हम सब मिलकर इन लुप्त हो रही विरासतों को बचाने के लिए जन् जागृति करें। इसके लिए प्रत्येक नागरिक का वैयक्तिक योगदान एवं संघटनात्मक प्रयास अनिवार्य है।

आभार ज्ञापन

लेखकगण, निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता के इस कार्य को पूरा करने की अनुमति के लिए आभारी हैं। हम पश्चिमी प्रादेशिक केंद्र पुणे के उन सभी अधिकारियों तथा प्रा० संजीव नतावडे, पुणे के आभारी हैं, जिन्होंने इस लेख के लिए उपयुक्त जानकारी उपलब्ध करायी।

संदर्भ

- किरबी, डब्ल्यू. एफ. 1914. *फौना ऑफ ब्रिटिश इंडिया, आर्थोपेटेरा*, खंड 1.
 गैज़ेटीयर ऑफ इंडिया, 1974. *महाराष्ट्र स्टेट गैज़ेटीयर जनरल सिरीज* : फौना.
 निदेशक, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, स्टेशनरी एन्ड पब्लिकेशनस, महाराष्ट्र राज्य,
 बाम्बे द्वारा प्रकाशित।
- वजीरानी, टी. जी. 1967. कॉन्ट्रीब्यूशन टू द स्टडी ऑफ इक्वाटीक बीटल्स
 (कोलीयोपेटेरा). *ओरीयन्टल इन्सेक्टस्* खंड 1 (1-2) : 99-112.
- फ्रेजर, एफ. सी. 1933-36. *फौना ऑफ ब्रिटिश इंडिया, ओडोनेटा*, खंड 1,2,3.
- मूर्ति टी. एस. एन. 1985. एफील्ड गाईड टू द लीजर्डस् ऑफ वेस्टर्न चाट्स. *रिकार्ड
 जूलोजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, अकेजनाल पेपर* 72 : 1-51.
- विंटर-ब्लिथ, एम. ए. 1957. *बटरफ्लाईज ऑफ द इंडियन रिजन*. दि बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री
 सोसायटी, बम्बई से प्रकाशित।
- शेखर, ए. जी. 1992. की टू द अम्फीबीयन फौना ऑफ गोवा, *हरपेटान* 4: 14-15.
- शर्मा, आर. सी. 1976. रेकार्डस आफ रेप्टाइल्स ऑफ गोवा. *रेकार्डस जूलॉ. सर्वे. इंडिया*,
 71 (1-2): 149-167.
- डेनीअल जे. सी. 1963. फील्ड गाइड टू द अम्फीबीयन्स ऑफ वेस्टर्न इंडिया. *ज. बाम्बे
 नेच्यु. हिस्ट्री. सोसा.*, 60 (2) : 415-438.
- डेनीअल, जे. सी. 1983. द बुक ऑफ इंडियन रेप्टाइल्स। बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी
 बम्बई से प्रकाशित ।
- हेगड़े मालती एवं डेनीयल्स रणजीत, आर. जे. 1986. *एन इन्फरमेशन सिस्टम फॉर द वर्ड्स
 ऑफ वेस्टर्नचाटस्*. इंडियन इन्स्टिट्यूट ऑफ सायन्स, सेंटर फॉर
 इकॉलॉजीकल सायन्सेस का रिपोर्ट.
- टीकादार, बी. के. 1983. *थ्रेटन्ड एनीमल्स ऑफ इंडिया*। भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता
 से प्रकाशित।
- टीकादार, बी. के. एवं बस्तावडे, डी. बी. 1983. *फौना ऑफ इंडिया, स्कार्पीयोनस* खंड
 3. भारतीय प्राणि सर्वेक्षण कलकत्ता से प्रकाशित।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

भारतीय झीलों की प्राणी विविधता

काजा वी० रामाराव

एवं

एस० जेड० सिद्दीकी

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

भारतवर्ष में झीलों के बारे में पुरानी जानकारी है। देवी-देवताओं की झीलों से जुड़ी अनेक कथा कहानियाँ प्रचलित हैं। हिन्दू और मुगल राजाओं की भी अनेक कथाओं में झीलों का वर्णन पाया जाता है। किन्तु झीलों के साथ पाये जाने वाले अनेक प्राणियों के सुंदर वर्णन भी वाचनीय हैं। अंगरेजी राज्य में कुछ वैज्ञानिकों ने झीलों के शास्त्रीय परीक्षण तथा अध्ययन किये, उदाहरणार्थ उड़ीसा की चिल्का झील। भारत में कई झीलें तो जगप्रसिद्ध हैं जैसे काश्मीर में डल, उड़ीसा में चिल्का, मणिपुर में लोकतक, अरुणाचल में मिआओ, आन्धा में कोल्लेरु और पुलिकट, गुजरात में नलसरोवर तथा केरल में अष्टमुडी आदि। भारत में ऐसी झीलें समुद्री तट से 1600-1800 मीटर की ऊँचाई तक स्थित हैं। ऊँचाई पर पाई जाने वाली झीलें मीठे पानी की हैं तथा समुद्री तट से लगी होने वाली झील नुनखरे (ब्रेकिश) पानी की हैं। राजस्थान में सांभर झील नमकीन पानी की है जिसके बारे में माना जाता है कि अरब सागर से आने वाली हवा से यहाँ का पानी नमकीन रहता है। सर्वसाधारण तौर पर झीलें नैसर्गिक उथलपुथल से बनी होती हैं। लेकिन कुछ झीलें मानव निर्मित हैं उदाहरणार्थ राजस्थान की भरतपुर झील जो वहाँ के राजाओं ने करीबन 250 साल पूर्व बनायी है। आज कल मानव निर्मित झीलों की संख्या दिनबदिन बढ़ रही है, जो पर्यावरण का अनैसर्गिक विस्तारण है।

झीलों में पाये जाने वाले जीवजंतुओं के बारे में भी भारी मात्रा में विविधता मिलती है। ऐसी जीव विविधता का अध्ययन भारत में हाल के सालों में ही हुआ है। भारतीय प्राणि सर्वेक्षण ने, जो भारतवर्ष की प्राणी विविधता का अध्ययन करता है, झीलों की प्राणी विविधता का अध्ययन और सर्वेक्षण करने के लिए आन्ध्र प्रदेश में हैदराबाद स्थित "मीठे पानी का जीव केन्द्र" नामक कार्यालय 1979 में खोला है, जो पर्यावरण और वन मंत्रालय, दिल्ली के अन्तर्गत कार्यरत है।

भारत की झीलों का शास्त्रीय अध्ययन होना तो आवश्यक बात है। लेकिन उस में आनेवाली अनेक प्रकार की कठिनाइयों से ये मुमकिन नहीं हो पा रहा। हर झील की प्राकृतिक रचना अलग होती है। इन के पानी के प्राकृतिक और रासायनिक घटक अलग-अलग किस्म के होते हैं। हर झील एक जैविकचक्र धारण कर लेती है जो उस में पैदा होने वाली जैविक या प्राकृतिक शक्ति की बढ़त कायम कर लेती है। झीले नीचेवाले स्तर में रहने वाले सूक्ष्मजीव, नष्ट होने वाले जैविक अंगों आदि का उपयोग कर पोषकों का निर्माण करते हैं जिसे वहाँ पैदा होनेवाले बाकी जीव उपयोग कर लेते हैं। झील में पाई जानेवाली वनस्पतियाँ वहाँ के जीव समूह को आधार देती हैं। इन सबका शास्त्रीय अध्ययन कम समय में होना नामुमकिन है। आज तक जो अध्ययन, अभ्यास तथा सर्वेक्षण किया गया है, उस से झीलों की प्राणी विविधता पर कुछ प्रकाश जरूर पड़ा है।

नैसर्गिक झील एक मर्यादित पारिस्थितिक प्रणाली होती है जिस में मुख्य रूपसे तीन प्रकार के प्राणियों का वासस्थान होने की संभावना हो सकती है। एक प्राणिसमूह जो जल के उपरी स्तर में पाये जाते हैं। इन में कुछ वनस्पति होती हैं जो अपना भोजन स्वयम् बना सकती हैं जिन को 'प्लवक' (प्लेन्कटन) कहते हैं। इन में वनस्पति प्लवक (फाइटोप्लेन्कटन) और प्राणिप्लवक (जूप्लेन्कटन) ऐसे दो प्रकार होते हैं। वनस्पति प्लवक प्राणिप्लवक और इतर प्राणीजाति के भोजन होते हैं। प्राणिप्लवक अनेक वर्ग तथा समूह के हैं और इनकी जाति विविधता भी बड़े पैमाने पर होती है। इन प्लवकों पर निर्भर करने वाले प्राणियों का अलग समूह होता है, जो झीलों के मध्य और निचले स्तर में रहना पसंद करते हैं। इनमें मछली समूह सबसे बड़ा है। अन्य प्राणियों का समूह झील में पाये जाने वाली वनस्पति के सहारे जीवित रहता है। पानी के अंदर और पृष्ठभाग पर पाई जाने वाली वनस्पतियाँ दिन में जलविलीन प्राणवायु की मात्रा बढ़ाती हैं। ऐसी झीलें आर्थिक उत्पादन का अच्छा साधन साबित होती हैं, क्योंकि उस में पैदा होने वाली अपृष्ठवंशी प्राणी मछली पैदा करने के लिये अच्छा भोज्य प्रदान करती हैं और जलवनस्पतियाँ बढ़ती मछलियों को परभक्षी से छुपने का सहारा देती हैं। यह स्तर मृदुकवचीय और केंचुओं की अनेक जातियों से भरा हुआ रहता है जो झील के जमीन स्तर की पोषक क्षमता बढ़ाती है और झील का जल पर्यावरण सुरक्षित रखने में भारी मात्रा में मदद करती है।

मछलि की विविधता

भारत की झीलों में देखी जाने वाली मछली-विविधता अनेक प्रकार की और बड़ी मात्रा में मौजूद है। जिन झीलों में वनस्पतियाँ अच्छी तरह मौजूद हैं उनमें मछली विविधता ज्यादा दिखाई देती है। वैसे भारत में मीठे और नूनखरे पानी में 742 जाति की मछलियाँ पायी जाती हैं जिनका वर्गीकरण 16 वर्गों, 64 कुटुंबों और 233 वंशों के भीतर किया जाता है। भारत में ज्यादातर सिप्रीनिड और सिल्युराएड कुलों की मछलियाँ पायी जाती हैं और यहाँ गॅनॉड, डिर्नेड तथा सिस्लोस्टोम्स नहीं पाए जाते। अलग अलग झीलों में अलग-अलग जाति की

मछलियाँ पाई जाती हैं, उदाहरणार्थ चिल्का में 152, काबर में 50, कोल्हेरु में 62 हैं। मछली की विविधता पर नैसर्गिक और मानव निर्मित परिवर्तनों से बड़ा असर पड़ता है। अनुत्पादशील समय में झीलों से मछली निकालना, उसके लिए नाज़ायज पद्धतियों का उपयोग करना, झील से ज्यादा पैमाने पर पानी बाहर छोड़ देना, झील में औद्योगिक तथा घरेलू गंदगी (इफ्लुएन्ट) छोड़ देना, झील की वनस्पतियाँ नष्ट करना आदि। इन सबसे झील के पानी का संतुलन नष्ट होता है और मछलियों के बड़े पैमाने पर एक साथ नष्ट हो जाने की संभावना होती है। यह क्रिया बार-बार होने से उस झील की मछली संख्या घट जाती है जिसका असर इतर प्राणी विविधता पर भी बुरी तरह से होता है। उदाहरण के तौर पर हैदराबाद के हुसैन सागर में 1978-79 में 27-30 जातियों की मछलियाँ मिला करती थीं, लेकिन अब 15 साल के बाद, यहाँ केवल 12 जाति की मछलियाँ ही मिलती हैं। यह झील मानव उत्पादित गंदगी से प्राणी विविधता नष्ट होने का एक नमूना है।

अपृष्टवंशी प्राणी विविधता

झीलों के पानी में बड़ी संख्या में पाये जाने वाले ये प्राणी आकार में अतिसूक्ष्म से लेकर कभी-कभी छोटे मछलियों के आकार तक दिखाई देते हैं। अपृष्टवंशी प्राणी बड़े पैमाने पर झील के ऊपरी स्तर में पाये जाते हैं, जिस में शीपकोषी (आस्ट्राकोइडा) जातियाँ, आवरणपादप (कोपीपोडा) 60 जातियाँ, दशपादी (डेकापोडा) 55 जातियाँ हैं। कुछ अपृष्टवंशी जो निचले तल के स्तर के साथ रहना पसंद करते हैं, उन में बहुशूकि (पोलीकीटा) 35 जातियाँ, जठरपादी (गेस्ट्रोपोडा) 40 जातियाँ, पटलवलीमी (लेमलीब्रैंकियाटा) 60 जातियाँ, समपादी (आइसोपोडा) 20 जातियाँ और अनेक जाति के केंचुओं का समावेश होता है। इनके सिवाय अनेक प्रकार के गुहांगी (सीलेन्टेरा), रॉटीफर और छिद्रत (पोरीफेरा) की जातियाँ पायी जाती हैं। मोठेपानी का और एक जीव समूह बहुत बड़ा होता है कीटक वर्ग का, जिसमें चर्मपंखी (कोलियोप्टेरा) अर्धपंखी (हेमीप्टेरा) और शिरोवक्षीय (एरेकनीडा) वर्ग का जलबख्शी (वाटर माइट) बड़े पैमाने पर होते हैं। ये तीनों समूह साफ पानी में रहने वालों में हैं। जैसे जैसे पानी गन्दा (पोल्यूटेड) होने लगता है, सबसे पहले जलबख्शी नष्ट होने लगते हैं, उसके बाद अर्धपंखी। गंदेपानी में चर्मपंखी कुछ समय तक ही रह पाते हैं।

अपृष्टवंशीय प्राणियों के कुछ समूह झील के पानी-संतुलन के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। पानी के नैसर्गिक घटक संतुलन में थोड़े भी परिवर्तन से कुछ जातियाँ तुरंत नष्ट होने लगती हैं। इसी का उपयोग कर के विशेषज्ञ बता सकते हैं कि झील कैसी अच्छी या दुरावस्था में पहुँच गयी है।

झील से जुड़ी पक्षी जातियाँ और उनकी विविधता

पानी झील का हो या अन्य, पानी के साथ अनेक पक्षी जातियों की सांठगांठ तो जरूर होती है। यह क्यों? इसका कारण शायद अभी तक तो पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं हो पाया है। इन

पक्षी समूहों के प्रमुखता से तीन प्रकार हैं। एक जो दिन का ज्यादातर समय पानी में डूबे रहना पसंद करता है, इसमें पानडुबी (डबचिक), हवासील (ग्रे पेलिकन), बँबे (डार्टर), पनकौवा (कोरमोरेंट), सफेदबाज या मुंडा (व्हाइट आइबिस) कालाबाज या करंकुल (ब्लैक आइबिस) दाबिल या चमचाबाज (स्पून बिल), हंस (बार हैडेड गूज), काज (ग्रेलैग), गर्मपायी, गुम्राल या लॅडीम (स्पाट बिल डक), शिलही या शिलकाही (हिसलिंग टील), तथा गिराय या सोनिया (काटन टील) होते हैं। दूसरा पक्षी समूह जो अपना खाद्यान्न ढूँढने के लिए या भक्ष्य पकड़ने के लिए कुछ समय तक पानी में पाँव डूबे रखता है और पेट भरने के बाद, या तो पानी के पास पेड़ों पर विश्राम करता है, या समीप की जमीन पर अपना अपना समूह बनाये रखता है। इनमें अनजान (ग्रे हैरन), गाय बगुले (कैटिल ईग्रेट), कलिंग्या बगुले (छोटे तथा बड़े ईग्रेट), अंध बगुले (पोंड हैरन), ढोक कंकारी (पेन्टेड स्टोर्क), घुगील या गुंगले (ओपन बिल स्टोर्क), टेक, गारुरे या हारगीले (एडजूटेंट स्टोर्क), तथा रोहील या छराज बँगो (फ्लेमिंगो) होते हैं। तीसरा पक्षियों का समूह दिन में अत्यल्प समय ही पानी से संबंध रखना पसंद करता है और बाकी का समय पानी के इर्दगिर्द व्यतीत करता है। इन पक्षियों में किलकीला (किंगफिशर), तितरी (लेपविंग) और सुग्रणी या बया (वीवर वर्ड), जैसे पक्षी होते हैं। किलकीला जिसका मछली मुख्य भोजन है, पाने के लिये ही पानी के पास आता है और अपना खाद्य पाते ही पानी से दूर चला जाता है। तीतरी हमेशा पानी के आसपास रहना पसंद करती है। सुग्रणी अपना घर बनाने के लिये लगने वाली अच्छी घास झील के आसपास से चुनती है और अपने घोंसले ऐसे पेड़ों पर तैयार करती है जो ज्यादा से ज्यादा पानी के नजदीक हों, ताकि उसका और उसके परिवार का भक्षकों से संरक्षण हो। पहले और दूसरे समूहों के भी बहुत सारे पंछी अपना रात का समय बिताने के लिये ऐसा वृक्ष चुनते हैं कि जिनके करीब पानी हो, ताकि रात के भक्षकों से बच सकें।

झील के पानी से सम्बन्धित पाये जाने वाला एक और प्राणियों का समूह होता है, जो ज्यादा बड़ा नहीं होता लेकिन झीलविज्ञान में खुद का एक अलग महत्व रखता है, वो है मेंढक, पानी के साँप, मगरमच्छ और कछुआ। इन में जाति-विविधता तो ज्यादा नहीं होती, लेकिन मेंढक में जाति-विविधता बाकी औरों से ज्यादा है। मेंढक की 204 जातियाँ भारत में देखी जाती हैं। पानी से जुड़े अनेक जातियों के साँप हैं, और मगरमच्छ की 2 जातियाँ भारत में मिलती हैं। करीबन 8-10 जातियों के कछुये भारत में देखे पहचाने जाते हैं। पानी में पाये जाने वाली मछलियाँ ही जिस का भक्ष है, और अपना मछली पकड़ने का कार्य रात के समय करता है, ऐसे स्तनधारी प्राणी की दो जातियाँ भारत में मिलती हैं, वो हैं—उदविलाव (आटर) ।

ऊपर बताए गये झील से जुड़े प्राणिजाति की विविधता से यह पता चलता है कि झील बहुसंख्यक प्राणी जातियों के जीवन का आधार हैं। झील का पर्यावरण जितना ही स्वच्छ एवं संतुलित हो, उतनीही उस झील में रहने वाले प्राणियों की विविधता ज्यादा और सुरक्षित होती है। इसीलिये झीलों की रक्षा करके उन में पायी जानेवाली प्राणि-विविधता को बचाये रखना ही अपना कर्तव्य बनता है।

धन्यवाद ज्ञापन

हम डा० ए० के० घोष, भूतपूर्व निदेशक, डॉ० जे० आर० बी० अल्फ्रेड, और डा० आर० के० वाष्णीय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि, सर्वेक्षण, कलकत्ता के प्रति यह लंछ लिखने की सुविधा और प्रेरणा देने लिए अत्यन्त आभारी और कृतज्ञ हैं। डा० डी० यी० यत्सबड़े, सहायक प्राणितज्ञ का इसका लेखांकन करने के लिए, तथा इसके टंकलेखन के लिए कुमारी टी० आर० श्यामला, कनिष्ठ लिपिक, के प्रति भी आभारी हैं।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

समुद्री किनारे की प्राणी विविधता

रामकृष्ण

समुद्री मत्स्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,

दीपा-721428(प.बंगाल)

भारतवर्ष में 7516 कि. मी. लम्बी तटीय सीमा के साथ दो महत्वपूर्ण प्रायद्वीप समूह (i) अन्डमान निकोबार एवं (ii) लक्षद्वीप भिनिकाय निहित हैं। इसके अतिरिक्त भारत के लगभग 2.02 मिलियन वर्ग कि. मी. क्षेत्रफल का भाग अनन्य आर्थिक क्षेत्र (एक्सक्लूसिव इकोनामिक जोन या ई. ई. जेड) उपलब्ध है। यह तटीय रेखा 9 प्रान्तीय राज्यों से जुड़ी हुई है। इसके द्वारा अद्वितीय ढंग से प्राकृतिक तेल, अनल, जल, तल, खाद्य सामग्री की उपलब्धि होती है तथा राष्ट्रीय स्तर पर यातायात की सुविधा भी प्रदान होती है। इसके द्वारा आर्थिक स्तर बढ़ाने में औद्योगिक प्रक्रिया, पर्यटन, वाणिज्य आदि को योगदान मिलता है। किन्तु यह ध्यान रखना है कि तटीय क्षेत्र अत्यन्त गम्भीर समस्या ग्रस्त एवं नाबुलक होते हैं, जिनपर प्राकृतिक विपदाओं का प्रभाव शीघ्र और आसानी से पड़ सकता है।

समुद्र व पृथ्वी के संयुक्त स्थान पर पूर्वी एवं पश्चिमी तटों पर दो आर्किपेलागो सहित जो एक एक बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर में निहित हैं, में असीम अनन्य जैवस्रोत एवं धरोहर है। पूर्वी तटीय क्षेत्र में 5 बड़े बड़े ज्वारनदमुख (एस्चुरी) हैं जो छः प्रमुख नदियों का संगम करती हैं। यह नदियाँ शक्तिशाली हिमालय की चोटी व पूर्व एवं पश्चिमी ढालों से अन्वोदित होती हैं, भारत को अमूल्य योगदान देती हैं। यह ज्वारनदमुख क्षेत्र विश्व की महानतम प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वातावरणीय मैन्ग्रोव अरण्य की सहायता सहयोग प्रदान करते हैं।

समुद्र तट पर निहित जीव जगत को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम को समुद्री सीमा का ज्ञान हो। भारतवर्ष की तटीय रेखा पाँच भागों में विभाजित है:

1. उत्तर-पश्चिम तट, 2. दक्षिण-पश्चिम तट, 3. दक्षिण-पूर्व तट, 4. उत्तर-पूर्व तट एवं 5. प्रायद्वीप समूह। अनुमान है कि लगभग 60-75% तक समुद्री मछली का उत्पादन पश्चिम तट से तथा 30-40% तक पूर्व तट से होता है।

उत्तर-पश्चिम तटीय क्षेत्र के अन्तर्गत गुजरात, एवं महाराष्ट्र का भाग जिसमें लगभग 8-9 लाख टन (40%) समुद्री मछली का उत्पादन किया जाता है। मुम्बई डक (हार्पडान), सिएनीइस, पामफ्रेट्स, शार्क, रेस, शिंगटिय (कैट फिश), पर्चस, फीतामीन (रिबन फिश) आदि प्रमुख जातियाँ अधिक मात्राओं में पायी जाती हैं। मछली के अलावा पेनीआईड प्रान्स (झींगा) की भी अधिक पैदावार होती है।

दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र के अन्तर्गत गोवा, कर्नाटक एवं केरल राज्य के क्षेत्र आते हैं, जिसमें लगभग 8 लाख टन तारली (आईल सारडीन) एवं बांगडा (मेकेरेल) जातियों की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। इस क्षेत्र में मिलनेवाली अन्य उपजातियाँ, जैसे फीता, मीन, केरंजिड्स, मुल्लन (सिलवर बेल्लीस) इत्यादि। क्रस्टेशिया सम्पदाओं में नान पेनिआईड झींगा, महाचिंगड़े (लोबस्टर, स्क्विडस एवं कटल फिश (मोलस्का) आदि बड़ी मात्राओं में पायी जाती हैं।

दक्षिण-पूर्व तटीय क्षेत्र के अन्तर्गत तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के क्षेत्र आते हैं और यहाँ पर लगभग 4-5 लाख टन मछली उत्पादन होती है। इन मछलियों की किस्में दक्षिण-पश्चिम तटीय जैसे ही हैं। इस तट पर महाचिंगड़े, काँकड़ा (क्रैब्स) अत्यधिक संख्या में और कई प्रकार की खाने योग्य और अपरिचित अन्य जातियाँ देखी गई हैं।

उत्तर-पूर्व तटीय क्षेत्रों में उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल के क्षेत्र आते हैं। यह क्षेत्र बहुत ही कम विकसित हुआ है और मात्रा दो लाख टन मछली की उत्पादन की है जिसमें हिलसा प्रमुख मछली है। भारत के उत्तर पूर्व तट पर एक अति प्राचीन युग की जैव विविधता पायी जाती है। इसकी लगभग 35 करोड़ वर्ष पहले उत्पत्ति हुई। इस कारण इसे लिविंग फोसिल कहते हैं। यह महत्वपूर्ण जन्तु केवल पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा राज्य के तट पर राज-काँकड़ा (हार्स-शू-क्रेब) या किंग क्रैब नाम से प्रसिद्ध है। राज काँकड़ा के समूह में दो जातियाँ पायी जाती हैं, यह हैं कार्सिनो स्कोरपियस रोटन्डीकोडा एवं टेकिप्लियस जङ्गास।

प्रायद्वीप समूह के अन्तर्गत लक्षद्वीप से 12-16 हजार टन तक मछली की उपज होती है तथा अण्डमान निकोबार प्रायद्वीप से लगभग 15 हजार टन मछली पैदा की जाती है।

प्राणि-विविधता

अ. सामुद्रिक मछली : समुद्री मत्स्यकी सम्पदा मुख्यतः करीब बारह वर्गों की वेलपवर्ती (पैलेजिक) मछली, पंद्रह प्रमुख वर्गों की तलमज्जी (डैमर्सल) मछली, और करीब 5 वर्गों की क्रस्टेशिया सम्पदा व कटल फिश और स्कीवों का समुच्चय है। भारत में समुद्री मछली उत्पादन 1950 में जो 0.6 मिलियन टन था, वह, बढ़कर 1980 तक 2.2 मिलियन टन हो गया और वर्ष 2000 तक 4.00 मिलियन टन की संभावना है। प्रमुख वर्गों की विविधता इस प्रकार है:

उपास्थिमीन (इलास्मोब्रैक्स) : शार्क, स्केट्स, एवं रेस) जो कि 5-7% मात्रा तक होते हैं और लगभग 60 हजार टन तक उपज होती है। सभी तटीय क्षेत्रों में सामान्य उपज होती है। प्रमुख गण हैं—कैलोस्किलियम, स्कोलियोडान, कार्चरैनस, गैलियोसिराडो, स्फ्रैना, रैनोबेटस,

रिन्कोब्रेटस, प्रिस्टीस, डेसियेटस, एटोबेटस, रेनोप्टेरा, एवं मंटा । कहा जाता है कि इन मछलियों का उत्पादन 175 हजार टन तक जा सकता है।

तारली (आईल सारडीन) का कर्नाटक एवं केरल में अधिक उत्पादन होता है। सारडिनेल्ला लाजिसेप्स लगभग 200 हजार टन तक उपज होती है। अन्य उत्पाद हैं: कोवाला कोवाल, सारडिनेल्ला फिमिआटा एवं सारडिनेल्ला अलबेला, सारडिनेल्ला जसिया।

आंकोवि वर्ग अथवा व्हाईट बैटस समुद्री तट पर अभी अधिक संख्या में पायी जाती हैं। इनमें स्टोलोफोरस कमरसोती, एस. इन्डिका, एस. हेटरोलोबस, एस. बैगेन्सिस प्रमुख हैं। इन मछलियों की उत्पादन क्षमता 30-125 हजार टन तक की जा सकती है।

क्लुपियाडस उपजातियों में हिल्सा, शैसा, पेल्लोना, ओपिस्ताप्टेरस, रेकोंडा, आनोडान्टोस्टोमा, कैरोसेन्द्रस, दसुमोरिया अत्यन्त प्रमुख है। मुम्बई डक (हार्पडान) एवं सीरिडा, सीरस, अति प्रमुख मछली हैं और इनकी उत्पादन क्षमता 70-160 हजार टन तक की जा सकती है।

शिंगटी मछली वर्ग में प्लोटोसस, आस्टियो-जीवियोसस, एवं एरियस का उत्पादन 45-70 हजार टन तक है। पर्वस वर्ग में लेटिस, सेरानस, एपिनेफलस, तेरापान, अपोगान, शिलागो, लूटियानस, नेमिप्टेरस, जेसिस, पोमाडासिस, लेन्नानस, ल्याटाक्स, डेपेन, अकान्तुरिडस एवं कुर्तस प्रमुख हैं।

केरंजिड वर्ग में मेगलासपिस, डेकाप्टोरस, अलोव्हिटस, सेलार, केरान्जाइडस, कोरिनीपस, ट्राकिनोटस, रेकिसेन्द्रान एवं कोरिफेन । ये लगभग 260 हजार टन तक मिल सकती हैं।

अन्य वर्गों में आने वाली एवं भारतीय तटों में अधिकांश मात्रा में मिलने वाली विविधता जैसे सेक्यूटर, लियोनाथस, गज्जा, सूडोसएना, ओटोलिनाइडस, जानियस, सथेना, ट्रैकूरस, लाक्टोरियस, पामफ्रेटस (फारमियो पाम्पास), रेस्ट्रलिगर कतगुर्ता (मेकेरल अथवा बांगड़ा) अकान्टोसैबियम, तूनास, युथैनस, इस्तिफोरस, टेट्राप्टेरस, झिफियास, इत्यादि प्रमुख हैं।

आ. क्रस्टेशिया वर्ग में झोंगा (पेनियस इंडिकस, पेनियस मानोडान, मेटापेनियस, पेरानाप्टेरस स्टैलिफेरा, असिड्स इंडिकस, मेक्रोब्रेकियम रासेनबर्गि); महाचिंगुडों में पेटुलीरस, प्यूकलस, कांकड़ा (क्रेब) वर्ग में स्क्ल्ल सेरेटा, पोरटूनस पेलाजिकस, चारिब्डिस कूसिएटा, प्रमुख हैं।

इ. मोलस्का वर्ग में अधिकतर सेफलोपोडस जैसे सेपिया, सेपियेला, सेपियोट्यूनिस, लोलिगो एवं आवटोपस हैं। इन वर्गों की उत्पादन क्षमता लगभग 10-50 हजार टन की जा सकती है।

विशाल अनन्य आर्थिक क्षेत्र

भारतवर्ष के 320 कि. मी. क्षेत्र के विशाल अनन्य आर्थिक क्षेत्र में लगभग 2.01 मिलियन वर्ग कि. मी. क्षेत्रफल आता है। क्षेत्रीय वितरण इस प्रकार है: पश्चिम तट 42.6%, पूर्वी तट 27.8%, एवं अंडमान-निकोबार प्रायद्वीप समूह में 29.6% और गहराई (तालिका-1 में) दिखाई

गई है। इस क्षेत्र में मछली की संपत्ति लगभग 4.00 मिलियन टन है। किन्तु अन्वेषणात्मक सर्वेक्षण और पकड़ आंकड़ों के आधार पर अनन्य आर्थिक क्षेत्र में 2.3 - 8.5 मिलियन टन की विभिन्न सम्भावित समुद्री मात्स्यिकी संपदाओं का आकलन किया है। इस क्षेत्र का अध्ययन एवं उत्पादन के अनुसार भारतवर्ष में दक्षिणी-पश्चिमी तट तथा उसके बाद मध्य एवं उत्तर पश्चिमी तट सर्वाधिक उत्पादन वाले क्षेत्र हैं। बंगाल की खाड़ी का उत्तरी भाग, पूर्वी तट के शेष भाग की अपेक्षा अधिक उत्पादनशील है।

तालिका 1 : भारत के विशाल अनन्य आर्थिक क्षेत्रों का क्षेत्रफल और उत्पादन क्षमता

गहराई	क्षेत्रफल 000 वर्ग कि. मी.	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत (%)	उत्पादन क्षमता 000 टन	कुल उत्पादन का प्रतिशत (%)
0- से 50 मीटर	180	8.91	2260	53.55
51- से 200 मीटर	235	11.63	1460	34.60
200 मीटर से अधिक	1605	79.46	500	11.85

(आधार : एम पि ई डा ए)

तालिका 2 : भारतवर्ष के विशाल अनन्य आर्थिक क्षेत्रों की रूप रेखा

गहराई	क्षेत्रफल 000 वर्ग कि. मी.	कुल क्षेत्रफल की प्रतिशत (%)
1. महाद्वीपीय शेल्फ (कान्टीनेंटल शेल्फ) 0.200 मीटर	414.5	20.54
2. महाद्वीपीय ढाल (कान्टीनेंटल स्लोप) (200-500 मीटर)	26	1.29
3. महासागरी क्षेत्र	1577.4	78.17

(आधार: मत्स्य सर्वेक्षण विभाग)

तालिका 3: भारतवर्ष में खेलपवर्ती (पेलेजिक) एवं तलमज्जी (डैमर्सल) मछली की औसत उपलब्धता (प्रतिशत)

खेलपवर्ती		तलमज्जी	
1. बोलफ हेरिंग	—1.5%	1. उपास्थि मीन (इलास्मोक्रांक)	—6%
2. तारली (आइलसारडीन)	—15%	2. लिंगटी (केट फिश)	—5%
3. हिलसा	—8%	3. तुमिबल (लिजरड फिश)	—8%
4. कोथलिया	—1.2%	4. पर्थस	—4%
5. स्टोलिफोरस	—5%	5. ब्रेड फिन्स	—3%
6. ग्रैसा	—0.5%	6. गोट फिश	—1%
7. मुम्बाई डक	—5%	7. क्रोकरस	—6%
8. फ्लाईंग फिश	—4%	8. मुम्बन (सिलवर चोम्बिस)	—5%
9. फीता मीन (रिबन फिश)	—0.5%	9. पामफ्रेटस क्रस्टेशिया वर्ग	—5%
10. बंगडा (मेकेरल)	—12.5%	1. पेनिआइड झींगा	—12%
11. स्केडस	—2%	2. नान पेनिआइड झींगा	—8%
12. सीर फिश	—3%	3. महाधिगटे	—1.5%
13. ट्यूनास	—2%	4. कैंकड़ा (क्रेब)	—1.0%
		5. स्टोमाटोपाडस मोलस्का वर्ग	—2.5%
		1. सेफलोपोडा	—4.5%

तालिका 4: भारत में समुद्री मछली एवं अन्य उत्पादन का विवरण और उपलब्धता

विवरण	क्षमता	मूल्य	क्षमता	मूल्य
	टन	000 रु	टन	000 रु
विवरण	1992-93		1993-94	
त्रिप्प	74,474	1,18,69,713	87,168	1,78,75,289
महाधिगटे (लोबस्टर)	1613	4,33,443	1,456	4,26,773
कटलफिश	18,981	11,88,829	19,000	13,81,823
स्किवड्स	30,364	15,18,950	34,740	19,24,676
मछली	75,794	23,35,368	94,021	5,59,972
कैंकड़ा (क्रेब)	52	2884	—	—
सूखी हुई वस्तुएँ	4,316	1,83,223	2,731	1,71,776
जैव वस्तुएँ	572	38,492	745	72,600
अन्य वस्तुएँ	2,859	1,14,681	4,099	2,23,246
योग	209025	17685583	243960	25036160

भारतवर्ष में सागर संपदा एवं विविधता कम नहीं है। जिनका जिक्र हुआ है वे सभी वाणिज्य के रूप से महत्वपूर्ण हैं। इन वर्गों का उतार-चढ़ाव और शोषण गति को देखभाल करने के लिए समुद्री जैव वस्तुओंका निरीक्षण एवं परीक्षण (मानिट्रिंग) अत्यावश्यक है। सामुद्रिक मात्स्यिकी संपदाओं की मानिट्रिंग करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण जाति की उच्चतम उपयुक्त मात्रा का निर्धारण करना चाहिए। इन वाणिज्य संपदाओं का शोषण के अलावा रसायन एवं अन्य वस्तुओं का प्रदूषण, भारी मात्रा में यांत्रिक जहाज, विविध-रूपों से गेयरों का इस्तेमाल करने पर विविध आपत्तियाँ आई हैं और कई जैव संपत्तियों का नाश एवं असर पड़ा है।

समुद्री तट पर होने वाली क्रियाओं (तालिका-5) से समुद्र की प्राणि-विविधता एवं वासस्थानों (हैबिटेट) पर भारी मात्रा में असर पड़ा है। इन बातों को देखते हुए वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवियों को ध्यान देना चाहिए क्यों कि प्राणि-विविधता नष्ट होनेपर मानव विकास एवं उनके रहन-सहन पर गहरा असर पड़ेगा।

तालिका 5. समुद्र तट पर होने वाली क्रियाएं

-
1. समुद्र के जीवों का पालन (मैरीकल्चर)
 - अ. झोंगा की खेती
 - आ. समुद्री सीपियों की खेती
 - इ. आयस्टर की खेती
 - ई. मछली उत्पादन
 2. समुद्री तट के निकट क्षेत्र में मछली पालन (एक्वाकल्चर)
 3. तटीय क्षेत्र के सुदूर भाग से मछली उत्पादन (आफ शोर फिशरीज)
 4. कृषि एवं हरितउत्पादन
 - अ. नारियल उत्पादन
 - आ. चावल उत्पादन
 - इ. अन्य वाणिज्य पौधों (प्लान्टेशन) की उपज और कृषि
 5. मेंग्रोव अरण्य के उत्पादन
 6. विद्युत उत्पादन
 7. सैनिक गतिविधियाँ
 8. समुद्री खनिज संपदा की खोज
 9. तेल और प्राकृतिक तेल (कूड) उत्पादन
 10. लवण उत्पादन
 11. मनोरंजन और पर्यटन जगह
 12. जल क्षेत्रीय क्रीड़ाएँ।
-

धन्यवाद ज्ञापन

लेखक इस कार्य के लिये दिये गए प्रोत्साहन एवं सहयोग के लिए डा० ए. के. घोष, भूतपूर्व निदेशक, डा० जे. आर. बी. अल्फ्रेड, कार्यकारी निदेशक, एवं डा० आर. के. वार्णोय, अतिरिक्त निदेशक, भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण कलकत्ता का आभार प्रकट करता है, तथा अनुवाद के सुझावों के लिए श्री अकमल हुसेन एवं कुमारी दीप्ति रामकृष्ण के योगदान का आभारी है।

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

पश्चिमी समुद्र तटीय प्राणी विविधता

सी. राधाकृष्णन्

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, पश्चिमी घाट प्रादेशिक शाखा, कालीकत (केरल)

एवं

राधेश्याम शर्मा

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, पश्चिमी प्रादेशिक शाखा,

पुणे (महाराष्ट्र)

भूमिका

भारतीय उपमहाद्वीपमें भारत अपने प्राकृतिक एवं भौगोलिक रचनामें पायी जानेवाली विविधता के कारण अपने आप में अनूठा है। जिस तरह इसका भूमि प्रदेश विविधता दर्शाता है उसी तरह यहाँ का सागरी प्रदेश भी अपनी विशेषताएँ प्रदर्शित करता है। सीभाग्यवश भारत का लगभग 7516 कि. मी. लम्बा एवं विस्तीर्ण समुद्रीतट है। भारतीय सागरतट शैलीय, बालूपय तथा पंकील है। इनमें विद्यमान विविध आवास एवं वासस्थान जैसे, मूँगे की चट्टानें, प्रवालद्वीप वलय, तटीय लैगून, झीलें, पश्चजल, प्वारनदमुख और मैंग्रोव (कच्छवनस्पति) इसकी विशेषताएँ हैं। इन विविध आवासोंमें प्राणिजगत के प्रत्येक वर्ग के असंख्य समुद्री जीव-जन्तु प्रचुर एवं कम अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। प्रस्तुत लेख में पश्चिमी समुद्रतट की विशेषताओं, विविध मात्स्यकी उद्यमों तथा उसकी प्राणी विविधता पर संक्षेप में सचित्र प्रकाश डाला गया है।

प्राणिजात और मात्स्यकी

पश्चिमी समुद्र तट एक विस्तीर्ण और एकनिष्ठ आर्थिक क्षेत्र है। उसके लम्बे बल के तटीय तथा उपतटीय क्षेत्रोंमें पाये जानेवाले प्रमुख अकशेरुकी प्राणि समुदायों में क्रस्टेशियाई (परचकवची), मृदुकवची प्राणी (मोलस्का) तथा शूलचर्मियों का समावेश होता है। इसके अलावा स्पन्ज, समुद्रीपुल, समुद्री पिच्छक, प्रवाल, कृमि नेमेरटाइन्स, गेस्ट्रोटाइक्स, पीनट चर्मस, पॉलीकीटस, बॉरनकल्स आदि भी प्रचुरता से पाये जाते हैं। कशेरुकी प्राणियों में कई प्रकार की मछलियाँ, कछुए, मगर आदि पाये जाते हैं। इन प्राणियों की उपलब्धता तथा उसकी माँग के अनुसार इस

क्षेत्रों में विविध मात्स्यिकी उद्यमों का प्रचलन व्यावसायिक रूपसे देखा जाता है।

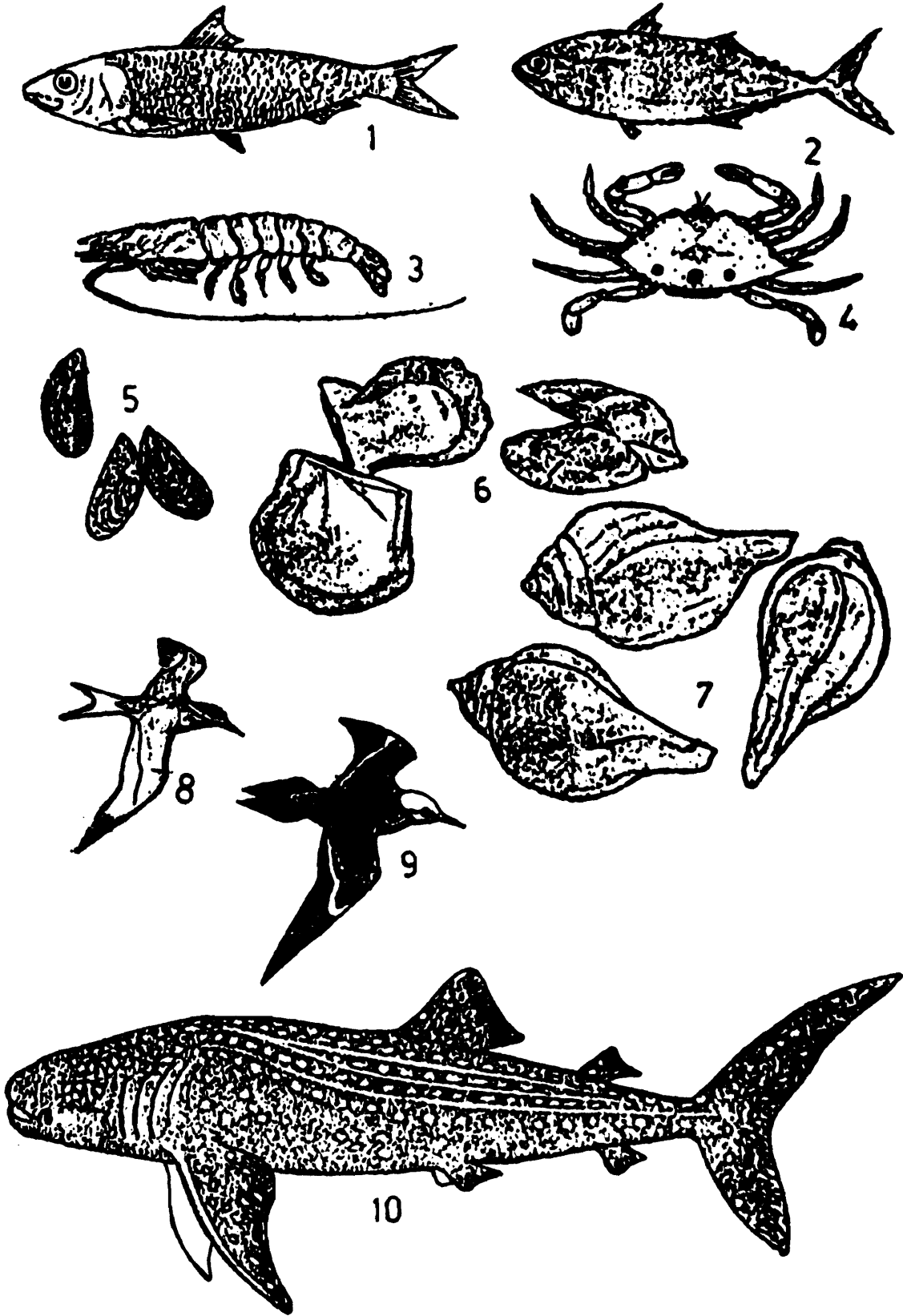
पश्चिमी तट की वेलोपवर्ती मछलियों में सारडीन और बांगडा यह जातियाँ व्यापारी तौर पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं जो यहाँ बहुतायत में पायी जाती हैं। सोलस, सुरा, शंकुश (रे), अशल्क मीन (शिंगटी), सरंगा, कैरेक्स और मुल्लन आदि नामोंसे परिचित मछलियों को भी पर्याप्त व्यावसायिक महत्व प्राप्त है। झींगा मात्स्यिकी में झींगों की शोषणयोग्य अनेक जातियों का समावेश होता है।

भारत के पश्चिम और पूर्व तटीय मात्स्यिकी में विलक्षण भिन्नता पायी जाती है। समस्त भारत देश के समुद्री मछलियों की उपज कुल मत्स्यस्थल के 75 प्रतिशत से भी ज्यादा पश्चिमी तटसे ही प्राप्त होती है। इसका कारण यहाँ के महासागरीय लक्षण हैं। जो प्लवक समविष्ट की अधिकतम उत्पादकता के लिए अनुकूल जलवायु प्रदान करते हैं। इसीलिए सारडीन, बांगडा और झींगा जैसी भारत की प्रमुख मात्स्यिकी अकेले पश्चिमी तट पर ही सीमित हैं।

केरल राज्य के तटीय क्षेत्रोंमें रहनेवाली प्रजा मृदुकवची प्राणियों में बादामी शम्बु और हरित शम्बु को समुद्री खाद्योंमें सर्वाधिक स्वादिष्ट मानती है। जो यहाँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। पश्चिमी तट के व्यावसायिक तथा निर्वाह मत्स्ययन में केंकड़ों की कई जातियां पकड़ी जाती हैं। बम्बई के आसपास के क्षेत्र में केंकड़े बारहमास संग्रहित किये जाते हैं। मुक्ता शुक्तियों से उच्च प्रकार के तथा कीमती मोती पाये जाते हैं। पश्चिमी तट का कच्छ की खाड़ी क्षेत्र भारत के मुक्ता मात्स्यिकी के लिए प्रमुख केंद्र माना जाता है। जबकि, त्रावणकोर और काथियावाड़ का तटीय क्षेत्र पवित्र शंखों के लिए विख्यात हैं। शंखोंका उपयोग मंदिरोंमें तुरही के रूपमें किया जाता है। इसके अलावा विविध कवची प्राणियों का शोषण उनके कवच द्वारा तरह तरह की आकर्षक एवं सजावटी वस्तुएँ तथा आभूषणों के निर्माण के लिए किया जाता है। जिससे इस क्षेत्र के लोगों को अच्छी खासी आमदनी प्राप्त होती है। पश्चिमी तट पर त्रिवेंद्रम से 16 कि. मी. दूर दक्षिण की ओर “कोवालम” नामक एक सुन्दर और प्रेक्षनिय समुद्र तट (बीच) है। इस क्षेत्र की समुद्री प्राणिजात बहुत समृद्ध है। शुली महाचिंगट और बादामी शम्बु यहाँ की विशेष बाँधित जातियाँ हैं।

लक्षद्वीप की उल्लेखनीय प्राणि-जातियां

लक्षद्वीप द्वीपसमूह के आसपास के समुद्रीजलमें प्रवालों की अत्यंत समृद्ध उपज और उनका भारी फैलाव देखने को मिलता है। इन मूँगे की चट्टानों और वेलांचलोंमें मछली तथा अकशेरुकी प्राणियों की अगण्य जातियाँ आश्रय लेती हैं। लक्षद्वीप की विशेषता है वहाँ के तटीय लैगूनों में पाये जानेवाली विलोभक मछलियों की जातियाँ जिनका उपयोग स्किप जैक तथा पीले पंख वाली टयूना जैसी मछलियों को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। यहाँ की शैल-भित्तियां भी अनेक प्रकार की मछलियों और शूलीमहाचिंगट को प्राकृतिक वासस्थान के रूपमें आश्रय प्रदान करती हैं। भारत में समुद्री पक्षियों के काकाश्रयों की संख्या बहुत कम है। लक्षद्वीप



चित्र: 1. सारडीन; 2. बांगडा; 3. झींगा; 4. केंकड़ा; 5. हरत शम्बु; 6. मुक्ता शक्ति; 7. पवित्र शंख; 8. श्वेत गालोंवाली गंगाचील; 9. नौडी गंगाचील (कुकरी); 10. तिमिंगिल मुरा (देवमुरा या खेल)।

समुद्री पक्षियों के काकाश्रयों के लिए विख्यात है। अन्य समुद्री पक्षी जातियां जो बड़े समूहों में यहाँ एकत्रित होती हैं उनमें श्वेत गालोंवाली गंगाचील तथा नौडी गंगाचील (कुररी) प्रमुख हैं। यह जातियां छोटेसे पीट्टी द्वीप पर प्रजनन करती पायी गयी है। लक्षद्वीप के सुहेली, पीट्टी, एवं मीनीकॉय द्वीप हरित कुर्म के नीड़न स्थल के रूपमें प्रसिद्ध हैं। जहरीले कांटोंवाली अश्वमीन तथा बिच्छू मीन लक्षद्वीप के तटीय लैंगूनों की विशेषताएँ हैं।

मछलियों में सर्वाधिक बड़ी मछली तिमिंगिल सुरा (व्हेल) जिसकी लम्बाई लगभग चालीस फीट हो सकती है, भारतीय समुद्री जल को भेंट देती पायी गयी है। इस विशाल सुरा से यकृत तेल प्राप्त करने के लिए गुजरात तट के आसपास इसे अधिक मात्रामें संग्रहित किया जाता है। पश्चिमी तटीय क्षेत्र में ट्यूना, सुरमई, बाहु, मार्लिन, असिमीन, बैराकुडा, डॉलफिन मीन, रेनबो रनर, और वेलोपवर्ती सुरा जैसी आखेट मीनों की जातियां बहुतायत में पायी जाती हैं। इसके लिए रत्नागिरी, गोवा, कारवार, कोचीन और लक्षद्वीप जैसे क्षेत्रों में आखेट मत्स्ययन को बढ़ावा देने की संभावना का पता लगानेकी आवश्यकता है।

मैंग्रोव वनों का महत्व

मैंग्रोव वन केवल समुद्र तट को सुरक्षा ही प्रदान नहीं करते वे असंख्य समुद्री प्राणिजातियों के लिए परिचर्या गृहों की भाँति कार्य करते हैं। जो इन प्राणियों को बाल्य एवं किशोरावस्थामें आवश्यक सुरक्षा प्रदान करते हैं। मात्स्यकी संरक्षण एवं संवर्धन में मैंग्रोव वनस्पतियों के महत्व की ओर हमारा ध्यान हालही में आकृष्ट हुआ है। मैंग्रोव वन एक अपने आपमें अनूठी और भंगुर पारिस्थितिक प्रणाली है जो तटीय गतिविधियोंसे अत्यंत प्रभावित होती है। मैंग्रोव वन उर्जा एवं इंधन के रूपमें भी बहुत उपयुक्त हैं। पश्चिम समुद्र तटीय मैंग्रोव वनोंमें सहचारी झींगों की कम से कम चार ऐसी जातियाँ पायी जाती है जो झींगा मात्स्यकीमें महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

फरवरी से मई मास तक पश्चिमी तटीय समुद्री जीवों पर मान्सून का लक्षणीय प्रभाव पड़ता है। इस अवधिमें खतरनाक डायनोप्लैजेलेट (प्रोटोजोआ) आदि जन्तु द्वारा “लालज्वार” नामक रोग का संक्रमण होता है जिससे मछलियों की मृत्यु बड़े पैमाने पर होती है। इन सूक्ष्म जन्तुओंकी संख्या मान्सून के आरंभ के समय केरल राज्य के तटीय क्षेत्रमें अत्यधिक पायी जाती है। जिससे मीन तथा बहुसंख्य अकेशरुकी प्राणियों की मृत्यु दर में वृद्धि होती है। कभी कभार नील तिमिंगिल के शव भी सागर किनारों पर दिखायी देते हैं। उनकी इस तरह मृत्यु का सही कारण अब तक अज्ञात है।

दक्षिण-पश्चिम मान्सून के दौरान केरल तट पर एक विलक्षण एवं अदभुत घटना घटती है जिससे पंकतटों का निर्माण होता है। स्थानिक भाषामें इसे “चाकरा” कहा जाता है। इस प्रकार की घटना का वृत्त केरल तट को छोड़कर विश्व में कहीं से भी नहीं है। होता यह है कि दक्षिण-पश्चिम मान्सून के प्रभुता के कारण अरबी समुद्र अशांत हो जाता है और समुद्र की

अंधस्तल से पंक उपर की ओर निकल आती है जो तेज वायु और लहरों द्वारा किनारे की ओर फेंक जाती है। यह पंक नदियों द्वारा लायी गयी गाद के साथ मिल जाती है और संयुक्तरूपसे पंकतटीय क्षेत्रों की निर्माण करती होती है। इस प्रकार बने पंकतटीय क्षेत्रों की लम्बाई तथा चौड़ाई लगभग 8 से 10 कि. मी. होती है। इन पंकतटोंका अधस्थल काफी मृदु और ढीला होता है जो पास के अशांत समुद्र के उत्पादन को शांत करता है।

अशांत समुद्र तथा तेज लहरों की चपट से बचने के लिए मछलियां बड़ी मात्रामें इन शांत और सुरक्षित जगहोंपर आश्रय लेती हैं। जहाँ उन्हें प्लवक और पंक मैदानों में स्थित जैवनिक्षेप खाद्य के रूपमें प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। इस तरह की घटना के बाद बड़ी मात्रामें मछलियां आसानीसे संग्रहित की जा सकती हैं। यह घटना अलाप्पी, नाराक्कल और कालीकत में प्रतिवर्ष घटती है। "चाकरा" में मुख्यरूप से झींगे, तेलसारडीन, बांगडा और सोल जैसे प्राणी पकड़े जाते हैं।

समापन

औद्योगिक इकाईयोंसे निरंतर निकलते अपशिष्ट, पीढकनासी रसायन, विघटनाधिक अपशिष्ट तथा तेल जैसी घातक द्रव्यों से नदी, नदज्वार मुख एवं सागरीय जल प्रदूषित होता है जिसका प्रभाव सीधे समुद्री प्राणिजात पर पड़ता है। तेल प्रदूषण की समस्या अत्यंत गंभीर है जिसके दूरगामी परिणाम वर्षोंतक महसूस किये जाते हैं। जलीय प्राणियों के साथ साथ जलपक्षी तथा मानव सहित अन्य प्राणी भी प्रदूषण की समस्या से प्रभावित होते हैं, क्योंकि वे भी समुद्री खाद्यपर निर्भर रहते हैं। विशेषतः पश्चिमी तट तेल प्रदूषण से अति प्रभावित हुआ है क्योंकि प्रतिवर्ष समुद्र से तेल की दुलाई विपुल राशियों की जाती है। प्रवाल-भित्ति तथा बालुई समुद्रीतट जैसी प्राकृतिक परिस्थितिकी प्रणालियां बुरी तरह से प्रभावित होती हैं, जैसे लक्षद्वीप के प्रवालद्वीप को अर्थपूर्ण हानि पहुँची है।

समुद्र एक प्रकृति प्रदत्त अमर्यादा संपदा है। किन्तु उसका विवेकी शोषण ही हमारे हित में है।

आभार ज्ञापन

लेखकगण निदेशक, भारतीय प्राणि सर्वेक्षण, कलकत्ता द्वारा अनुमति एवं सुविधाओं के लिए अत्यंत आभारी हैं।

परिशिष्ट

भारत की प्राणी विविधता

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित, 1997

सामुद्रिक पारि-तन्त्र में जीव-वैविध्य

एन. वी. सुब्बाराव

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण,

कलकत्ता-700 053

पृथ्वी का लगभग 71% भाग समुद्र है, जिसके कारण मनुष्य प्रारम्भ से ही इसके ऊपर आश्रित रहा है। भारत में मनुष्यों की आबादी का लगभग एक चौथाई भाग समुद्र तट के क्षेत्रों में रहता है। क्योंकि भूमि सम्पदा में निरन्तर कमी होने के कारण सामुद्रिक सम्पदा ही एक आखिरी सहारे की भाँति हमारे सम्मुख है, जिसपर मनुष्य का भविष्य निर्भर है।

भारत वर्ष के समुद्रतटीय तथा इसके खुले समुद्र में गतिविधियाँ बढ़ गई हैं। पिछले डेढ़ दशकों से भारत सामुद्रिक आहारों के निर्यातकों में एक प्रमुख देश गिना जाने लगा है। अभी भी समुद्री जीवों की ऐसी कई जातियाँ हैं जिनका मूल्यांकन निर्यात की दृष्टि से नहीं हुआ है। देश में प्राणि-सम्पदा के आकलन के लिए कई संस्थाएँ हैं जिनमें मुख्यतः भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण (जेड. एस. आई.), राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एन. आई. ओ.) और केन्द्रीय नमक और समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान (सी. एस. एम. सी. आर. आई.) आदि हैं। भारतीय प्राणि सर्वेक्षण ने अपने सर्वेक्षण अभियानों द्वारा विगत कई वर्षों से विभिन्न जीव-जन्तुओं का संग्रह किया है तथा उनपर पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

यदि कीड़े-मकोड़ों को छोड़ दिया जाए तो सामुद्रिक पारितन्त्र में जीव वैविध्य भूमि के मुकाबले ज्यादा है। जन्तुओं के 32 वर्गों (फाइलम) में से 24 मुख्य रूप से सामुद्रिक हैं। इनमें कुछ तो पूरी तरह सामुद्रिक हैं, जैसे-प्रियापुलिछा, पोगनोफोरा, किटोगनैथा, इकाइनोडर्मेटा और हेमीकोर्डेटा आदि। यह देखा गया है कि 82060 जातियों में से भारत में 12000 जातियाँ (स्पीशीज) सामुद्रिक पारितन्त्र में मिलती हैं। जबकि इनके मुकाबले पूरे विश्व में 1,50,000 जातियाँ सामुद्रिक पारितन्त्र में मिलती हैं। इन जातियों में से कुछ ऐसी प्राणि जातियाँ हैं जिनसे मनुष्यों को लाभ प्राप्त होता है, कुछ आहार के लिये, कुछ औषधि के लिये तथा कुछ अन्य रसायनों के लिये। बहुत सी प्राणी जातियाँ स्वयं समुद्र का वातावरण बनाए रखती हैं, जैसे—आहार-तन्त्रिका से सम्बन्धित प्राणी। कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जो मर जाने के बाद भी मनुष्यों के

उपयोग में सहायक होती हैं, जैसे—समुद्र की तलहटी पर पाई जानेवाली फोरामीनीफेरा, रेडियोलेरिया आदि।

यद्यपि अधिकतर जातियां मनुष्य के आहार के उपयोग में काम आती हैं, परन्तु इन जीवित सम्प्रदायों में से कुछ जातियां ही भोजन के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं, जिनमें 20 मछलियां, 15 शंख वर्ग (मोलस्क) तथा 15 कर्कट वर्ग (क्रस्टेशियन) हैं। इन जीव-जन्तुओं का भोजन के लिए उपयोग प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है। परन्तु हाल ही में कुछ समुद्री जीव तथा वनस्पतियों की जैविक सक्रियता (बायो-एक्टिव पोटेंशियल) की जाँच की गयी है। सामुद्रिक जीव चिकित्सा अनुसंधान ऐसा प्रमुख क्षेत्र है जहां कई भारतीय समुद्री जीव का चिकित्सा में उपयोग होता है। यह एक विभिन्न विज्ञानों का मिश्रित क्षेत्र है जहां प्रारम्भिक जानकारी प्राणी वैज्ञानिकों को, मुख्यतः वर्गीकरण करनेवालों (टेक्सोनोमिस्ट) को देनी पड़ती है। ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों में जीव चंचल सामग्री जाति-विशेष की होती है। इसलिए किसी जीव की उसकी जाति की सही पहचान पहली आवश्यकता है। यह किसी भी सामुद्रिक जीव चिकित्सा अनुसंधान कार्यक्रम में पहली जरूरत है। पर दुर्भाग्य से टेक्सोनोमी एक नगण्य किया हुआ विषय है। भारत के विश्वविद्यालयों तथा जैव अनुसंधान संस्थानों में इस विषय की पूछ नहीं है।

भारतीय प्राणि सर्वेक्षण ही एक ऐसा संस्थान है जहां पर प्राणि-विज्ञान वर्गीकरण (टेक्सोनोमी) एक मुख्य विषय के रूप में अध्ययन की जाती है। तथ्य यह है कि सन 1875 में भारत में “समुद्री सर्वेक्षण विभाग” का आरम्भ हुआ था। एक अनुसंधान जहाज “इन्वेस्टीगेटर” ने भारतीय समुद्र के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों (एक्सक्लूसिव इकोनामिक ज़ोन) में कई यात्राएँ कीं। डॉ॰ सीवेल, जो कि उस समय भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के निदेशक थे, उन्होंने “इन्वेस्टीगेटर” पर सर्जन प्राकृतिक वेत्ता (सर्जन नेचुरालिस्ट) के पद पर रहकर कई अभियानों में भाग लिया। इस तरह डॉ॰ सीवेल को भारत वर्ष में समुद्री प्राणिविज्ञान का जनक कहा जा सकता है। भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण सामुद्रिक प्राणियों पर अनुसंधान कार्य में बहुत पहले से अग्रणी है। देश के विभिन्न समुद्री क्षेत्रों से कई सर्वेक्षण करके अनेक प्राणि जातियों का संकलन किया गया है तथा गवेषणा करके उनका नामांकन हुआ है। यह बहुमूल्य संकलन अब “राष्ट्रीय प्राणि - संकलन” का भाग है और भारतीय प्राणि सर्वेक्षण विभाग, कलकत्ता में संग्रहित है।

भारत की सामुद्रिक जीव-वैविध्य की वर्तमान स्थिति को तालिका—1 में दर्शाया गया है।

सामुद्रिक जीव-जन्तुओं के वर्गीकरण (टेक्सोनोमी) अनुसंधान को अभी भी पूरा हुआ नहीं कहा जा सकता। हाल के आकलनों से ज्ञात हुआ है कि अभी भी कुछ ऐसे वर्ग हैं, जैसे साफ्ट कोरल, जोएंथेरिया, गार्गोनीड्स, सी पेंस, प्रियापुलिड्स, पिक्नोगोनीड्स, टेनाइड्स आदि जिनके वंश तथा जाति के अध्ययन के लिए कोई भी वैज्ञानिक उपलब्ध नहीं हैं। कुछ प्रमुख वर्गों में जैसे-स्पान्जेस, एक्टीनीथेरियन्स, स्टोनी कोरल्स, ब्रैकीओपोड्स, ब्रायोजोंस, साइपनकुलीड्स, ओफिस्थोब्रांक मोलस्क़्स, आइसोपोड्स, निबेलीसियन्स, माइसिड्स, इकाइनोडर्मस आदि हैं तथा

तालिका-1 : भारत की सामुद्रिक जैव विविधता

जीव वर्ग का नाम	जातियों की संख्या
एल्गी	425
प्रोटिस्टा	
1. सारकोमेस्टीगोफोरा]	750
2. सीलिओफोरा]	
एनीमेलिया	
1. पोरिफेरा	500
2. नीडेरिया	790
3. टीनोफोरा	10
4. प्लेटीहेलमेन्थिस	350
5. गैस्ट्रोट्राइका	88
6. काइनोरिका	99
7. एनेलिडा	440
8. मोलस्का	3370
9. ब्रायोजोआ	170
10. एन्टोप्रोक्टा	8
11. फोरोनिडा	3
12. त्रैकिपोपोडा	3
13. आरम्भोपोडा	
i) क्रस्टेसिया	2430
ii) पिक्नोगोनिडा	16
iii) मेरोस्टोमेटा	2
14. साइपनकुला	38
15. इकियुरा	33
16. टार्डीग्रेडा	5
17. कीटोगनेला	30
18. इकाइनोडरमेटा	765
19. हेम्पीकारडेटा	12
20. कारडेटा	
i) प्रोटोकारडेटा	116
ii) मत्स्य	1800
iii) उभयचर	3
iv) सरीसृप	26
v) पक्षी	145
vi) स्तनपायी	29
योग	12456

समुद्री पक्षियों, स्तनधारी प्राणियों और सरीसृपों पर काम करने वाले वैज्ञानिकों की संख्या प्रति विषय एक वैज्ञानिक ही रह गई है (पारुलेकर 1990 के लेख में बाकुस 1986)। कुछ वर्गों में जैसे मोलस्का, क्रस्टेशिया, पोरीफेरा, निडेरिया आदि, यह आवश्यक हो गया है कि उनपर काम करनेवाले वैज्ञानिकों की संख्या को बढ़ाया जाए। यह एक आवश्यकता है। यद्यपि समुद्री अनुसंधान में यह कमी काफी समय से अनुभव की जा रही है, परन्तु अभी तक कोई सही कदम नहीं उठाये गये कि इन विषयों पर काम करने वाले वैज्ञानिकों की संख्या बढ़ सके।

जीव-जन्तुओं के वर्गों में लगभग 206 जातियाँ ऐसी हैं जिनकी जैव-चिकित्सा संभावनाओं के लिए जाँच की गई है। उनमें से अनेक जातियाँ निःसन्देह औषधियों के लिये उपयुक्त पाई गई हैं। जो वर्ग चिकित्सा क्षेत्र में सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं, वे पोरीफेरा तथा निडेरिया हैं। दुर्भाग्यवश इन वर्गों की जातियों की सही पहचान करना बड़ा दुरूह व जटिल कार्य है और संभवतः इन विषयों पर कोई वैज्ञानिक भी कार्यरत नहीं हैं।

अतः अब वह समय आ गया है कि इन वर्गों के वर्गीकरण तथा वैज्ञानिक वर्गीकरण (टेक्सोनोमी) अध्ययन के लिए वैज्ञानिक आगे आएँ।

जब एक प्राणी जाति की चिकित्सा में उपयोगिता सिद्ध हो जाती है, तब व्यापार में दुर्भाग्यवश उस जाति का दुरुपयोग आरम्भ हो जाता है। ऐसी जाति का जब समुद्र से बहुत अधिक संख्या में संग्रह होने लगता है तब भूमि के जीवों की तरह समुद्र में भी इन जीवों की जातियाँ दुर्लभ व लुप्तप्राय होने की स्थिति में आ जाती हैं। इसलिए इस प्रकार की गलतियाँ नहीं करनी चाहिए। चिकित्सा में उपयोगी जातियों का अनुसंधान करके उनका सामुद्रिक संवर्धन (मेरीकल्चर) करना चाहिये। इसके लिए उन जातियों की सम्पूर्ण जीवनचर्या का अध्ययन कर पर्यावरण के महत्व को भी समझना चाहिए। भारतवर्ष में सामुद्रिक चिकित्सा अनुसंधान में लगे व्यक्तियों को यह विचार करना चाहिए कि किन-किन उपयोगी प्राणि-जातियों का वर्गीकरण (टेक्सोनोमी), उनके जीवनचर्या तथा पर्यावरण के महत्व का अध्ययन करें ताकि प्राकृतिक संतुलन बना रहे। इतना ही नहीं इसके लिए एक अच्छा सूचना केन्द्र भी स्थापित करना होगा जिससे अनुसंधानों का सामुद्रिक जीव सम्पदा के संवर्धन के लिए सदुपयोग किया जा सके तथा पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल असर भी न हो जिससे प्राकृतिक विपदाओं से बचा जा सके।

संदर्भ

बाकुस, जी.जे., 1986. सर्वे आफ इंडियन टेक्सोनमिस्टस (मेरीन बायोलॉजी) : 28 पृष्ठ (मिमीओ).

मार्डरसीआन, ए. एच. दर, 1970. इग्स फ्रॉम द सी-एन ओवरव्यू इन: फूड-इग फ्रॉम द सी (प्रोसीडिंग्स 1969). (संपादक एच. डब्ल्यू. यूंगेकेन जू.) 211-253.

पारुलेकर, ए. एच. 1990. टेक्सोनोमी इन बायोमेडिकल रिसोर्सेज ऑफ द एक्सक्लूसिव इकोनोमिक जोन ऑफ इण्डिया. इन: टेक्सोनोमी इन इन्वायरमेंट एण्ड बायोलॉजी, जूलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित, 1990: 49-57.

अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों की प्राणी विविधता

कैलाश चन्द्र एवं पी. टी. राजन

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह ऐसे खूबसूरत टापुओं का नाम है जो बंगाल की खाड़ी के दक्षिण पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में अक्षांश 6° से 14° उत्तर और देशांतर 91° से 94° पूर्व में स्थित है। यह 572 बड़े, छोटे द्वीपों एवं चट्टानों से मिलकर बना है जोकि 1962 कि०मि० समुद्री किनारों से घिरा हुआ है और क्षेत्रफल 8249 वर्ग कि. मी. है। 572 द्वीपों में से केवल 38 द्वीपों में ही आबादी है। अंग्रेजी में इन्हें प्रायः "आईलैंड्स आफ द मेरीगोल्ड सन" भी कहा जाता है। यह हरे-भरे द्वीप आजादी के पहले "कालापानी" के नाम से जाने जाते थे, क्योंकि ब्रिटिश हुकूमत ने स्वतंत्रता सेनानियों को इन्हीं द्वीपों पर बन्दी बना कर रखा था। आजादी के बाद यहाँ के विकास की प्रक्रिया तेजी से बढ़ी है। यह द्वीप समूह भारतीय महाद्वीप से करीब 1250 कि. मी. की दूरी पर स्थित है जोकि अण्डमान सागर में म्यांमार के निचले हिस्से और इन्डोनेशिया के पश्चिम में 1120 कि. मी. तक फैला हुआ है। अण्डमान-निकोबार द्वीपों में केवल दो जिले अण्डमान एवं निकोबार हैं जिन्हें 10° झोत अलग करता है और जो 14३ कि. मी. चौड़ा एवं 400 फीटम गहरा है।

भारत में इन द्वीपों की विशेष भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति के कारण विशिष्ट स्थान है। इन द्वीपों की उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतों से हुई है जोकि सामान्यतः समुद्री पर्वत शृंखलायें हैं। द्वीपों का भूविशेष जैवा-जीवा, पर्वती एवं पहाड़ी है, जिनके बीच घाटियाँ हैं। अण्डमान वर्ग के उत्तर अण्डमान में सैडलपीक जोकि समुद्र तल से 732 मी. की ऊँचाई पर एवं निकोबार द्वीप समूह में ग्रेट निकोबार के माउंट थुलर समुद्र तल से 670 मी. की ऊँचाई पर है। यह द्वीप समूह उष्णकटिबंधीय घने वर्षा वनों से आच्छादित है। अधिकतर द्वीप प्रवाल शैलमालाओं और छिछले समुद्र से घिरे हैं। दूर-दूर तक संकरे आकार के फैले हुए बालू तट यहाँ की खसालाकृति की मुख्य विशेषता है। इनके समुद्र तटों में मैंग्रोव वनस्पति भी पाये जाते हैं जो

कि विभिन्न प्रकार के समुद्री जीव-जन्तुओं को आश्रय देती हैं और जो विशेषकर उष्णकटिबंधीय महासागरीय द्वीपों में पाये जाते हैं।

जलवायु

इन द्वीपों की जलवायु आमतौर से उष्णकटिबंधीय एवं गरम मानी जाती है। लेकिन समुद्री हवाएँ इन्हें ठंडा बनाये रखती हैं। तापमान 18° से. से 36° से. के बीच रहता है और 5° से. से 10° से. तक घटता-बढ़ता है। इन द्वीपों में वर्षा दोनों मानसूनों में होती है, अर्थात् नवम्बर से दिसम्बर तक उत्तर-पूर्वी हवाओं से तथा मई से अक्टूबर तक दक्षिण पश्चिमी हवाओं से। अधिकतर वर्षा मई से दिसम्बर तक होती है जोकि 3100 मि. मी. तक पहुँच जाती है। मौसम केवल जनवरी से अप्रैल तक तथा कुछ हद तक अक्टूबर में साफ रहता है। यहाँ की मिट्टी रेतीली एवं बहुत पतली सतह में होती है जिसका कि अधिक वर्षा के कारण कटने का खतरा बना रहता है।

प्राणी विविधता

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह की प्राणी विविधता भारत देश में अपना अनोखा स्थान रखती है (तालिका-1)। इन द्वीपों का प्राकृतिक संसाधन वैविध्यपूर्ण है और प्राणी विविधता उष्णकटिबंधीय क्षेत्र की विशेषता रखती है। भारतीय प्राणी सर्वेक्षण ने जोकि यहाँ का सर्वेक्षण बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही कर रहा है और यहाँ के सभी तरह के वातावरण में पाये जाने वाले प्राणियों का अध्ययन किया है, कुल मिलाकर अभी तक करीब 5,500 जातियों को सूचीबद्ध किया है। जिनमें से कुछ ऐसी जातियाँ भी पायी जाती हैं जोकि भारत या अन्य किसी देश में अन्यत्र नहीं मिलतीं। इन द्वीपों में प्राणियों की वितरण प्रणाली भी बहुत रोचक है जैसे कि कुछ प्राणी यदि पूरे द्वीपों में पाये जाते हैं तो कुछ प्राणी कुछ ही क्षेत्रफल में या किसी विशेष द्वीप में ही पाये जाते हैं। इनमें कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जो कि अण्डमान या निकोबार द्वीप में ही प्रतिबंधित हैं। यहाँ की प्राणी विविधता की वितरण प्रणाली का विस्तार पूर्वक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि अधिकतर अण्डमान द्वीप समूह के प्राणी इंडोचीन एवं म्यांमार क्षेत्र से समानता रखते हैं और निकोबार का प्राणी जंगल इण्डो-मलाया के प्राणी जातियों से मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ जातियाँ दोनों क्षेत्रों में समानरूप से पायी जाती हैं।

इन द्वीपों में सभी तरह के प्राणी पाये जाते हैं जो कि विभिन्न पारिस्थितिकी में रहते हैं। प्रोटोजोवा जोकि सूक्ष्म प्राणी हैं, इनका अध्ययन बहुत कम हुआ है। फोरेमीनीफेरा, पैस्ट्रीगोफोरा, सीलियेटा एवं स्पोरोजोवा समुदाय की केवल कुछ जातियों की संख्या का पता लगा है। स्पंज

की करीब 72 जातियाँ मिलती हैं जोकि मीठे जल एवं समुद्री जल में पायी जाती हैं। इन स्मजों में कई प्राण-रक्षक औषधियों के होने की जानकारी मिली है जिनकी विस्तृत खोज जारी है। यहाँ पर प्रवाल या मूंगों की बटानें द्वीपों के चारों ओर फैली हुई हैं। अधिकांशतः प्रवाल भित्ति फिजिंग तरह के हैं। यह प्रवाल-भित्ति इन द्वीपों की मिट्टी के कटाव को रोकने में मदद करते हैं एवं इन प्रवाल भित्तियों में असंख्य जीव-जन्तुओं का आवास है। इन प्रवालों की 179 जातियाँ इन द्वीपों में पायी जाती हैं। प्रवाल की मुख्य जातियाँ एक्लोपोरा, मोन्टीपोरा, फैविया, फन्जिया, पोराईड्स एवं गोनिएसिट्टा वंश के सदस्य हैं। यह प्रवाल भित्तियाँ हजारों वर्षों में विभिन्न समुद्री जीवों की क्रियाओं द्वारा बनती हैं। ये गर्म जलवायु के द्वीपों और महाद्वीपों के बाहरी किनारों जहाँ पानी का ताप 22-28° से होता है, में विकसित होती हैं। दुर्भाग्यवश यह प्रवाल भित्तियाँ इन द्वीप समूहों के अत्याधिक दबाव पर हैं। इनमें से कुछ प्रदूषित हो गयी हैं और कुछ का तटीय विकास, प्रवाल खनन, अत्यधिक मत्स्य दोहन और प्रवाल भिम्बे रहने वाले प्राणियों के संग्रह से समाप्त हो रही है। एनीलिडा वर्ग के प्राणी जैसे केंचुआ, जोंक एवं छोटे पालीकीट कृमियों की जातियों की संख्या क्रमशः 21,10, एवं 186 है। इन प्राणियों का प्राकृतिक पारिस्थितिकी में अपना-अपना योगदान है, खासकर केंचुए जो कि जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। इनमें अधिकतर परजीवी हैं। एस्केलमिन्यस एवं प्लैटीहेल्मिन्थस की प्रजातियों का अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है, जबकि ज्वार-भाटा क्षेत्र एवं समुद्र तट के अकशेरुकी प्राणियों जैसे ऐरिकिनीलिडा, गैस्ट्रोट्रिका, काइनोरिका, टरबलोरिया, कोपियोडा एवं नेमैटोडा की 300 से अधिक जातियों को यहाँ से रिकार्ड किया गया है जिनमें से अधिकतर नई हैं और जिन्हें हम मोओफोना भी कहते हैं।

विकसित अकशेरुकी प्राणियों की पारिस्थितिकी एवं वितरण प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है जिनमें से मुख्यतः क्रस्टेशियन, आर्थ्रोपोडा, मोलस्का एवं इकाईनोडरमेटा हैं। कोपीपोडा जोकि क्रस्टेशियन समुदाय से सम्बंध रखते हैं, इनकी 200 से अधिक जातियों को समुद्रीतट एवं ज्वार-भाटा क्षेत्र से रिकार्ड किया है। इसी तरह आइसोपोड, एम्फोपोड एवं केंकड़े जो कि सामान्यतः इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं इनकी 600 से अधिक जातियों का ज्ञान प्राप्त है। इनमें से एक विशेष प्रकार का केंकड़ा जिसे महादम्यु केंकड़ा (जयन्ट रोबर क्रैब) कहते हैं, इन द्वीपों में विभिन्न जगहों पर पाया जाता है। यह 1½ फुट लम्बा एवं 9" चौड़ा होता है। इसकी जनसंख्या कम हो रही है, इसलिए संरक्षण के लिए इसे वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अध्याय (1) में रखा गया है। मकड़ियाँ एवं बिच्छुओं की 94 जातियाँ इन द्वीपों में पायी हैं लेकिन इस समुदाय का इन द्वीपों में विस्तार-पूर्वक सर्वेक्षण करने से इनकी जातियों की संख्या बढ़ सकती है। अण्डमान कनखजूर (सेन्टीपोड) इन द्वीपों में बहुतायत मिलता है, जिसकी लम्बाई 10 इंच तक हो सकती है। यह कीड़े-मकोड़ों को खाता है और इसके काटने से बेहद दर्द होता है और सूजन भी आ जाती है। इन द्वीपों में सेन्टीपोड एवं मिनीमीड की 22 जातियों का उल्लेख है। कीट समुदाय की जो कि सामान्यतः प्राणी जगत में

75% के अनुपात में होता है केवल अभी तक 1750 जातियाँ ही ज्ञात हैं। इनके 30 आर्डर में सभी समुदाय के कीट पाये जाते हैं। जिनमें से मुख्यतः पतंगे, तितलियाँ, मच्छर, मक्खी, टिट्ठियाँ, मधुमक्खियाँ, चींटी, गुबरेले, दीमक, इंगनप्लार्ईज, पादप-बग एवं थ्रिप्स इत्यादि हैं। इन कीटों में स्थानिकता की बहुतायत है। खासकर तितलियों में स्थानिकता 70% से अधिक पाई गई है। इनमें से लेपीडोप्टेरा समुदाय की जातियों की संख्या 700 से अधिक पायी गयी है। छोटे कीट जो कि एप्टेरिगोटा उपवर्ग के सदस्य हैं जिनमें थाइसेन्यूरा, डिप्लूरा, प्रोटूरा, एवं कोलेम्बोला आते हैं। इनका अध्ययन बहुत कम हुआ है एवं कुछ जातियाँ ही अभी इन द्वीपों से दर्ज की गयी हैं। कीटों के जीवनवृत्त, जनसंख्यागति, पारिस्थितिकी, वर्गीकरण एवं नाशक जीव नियंत्रण का भी अध्ययन किया गया है। मोलस्का (मृदकवची) समुदाय में बहुत तरह के सीपी, गैस्ट्रोपोड, शंख एवं काईटन्स आते हैं। इस समुदाय की जातियाँ बड़ी संख्या में यहाँ पायी जाती हैं जोकि समुद्र में, मोठे पानी में एवं भूमि में सभी जगह मिलते हैं। इनकी 1100 से अधिक जातियाँ इन द्वीपों में पायी गयी हैं। कुछ समुद्री मोलस्क जैसे कि सीपी, शंख, ट्रोक्स, टरबो एवं बड़ी कौड़ी वगैरह हैं जिनका कि अत्यधिक मात्रा में दोहन हो रहा है और इनकी संख्या समुद्री पारिस्थितिकी में कम होती जा रही है। साईपनकुलिड्स जोकि समुद्री तट पर रेतीले या सड़ी जगहों पर मिलते हैं इनकी अभी तक 22 जातियों का ही ब्योरा प्राप्त है। इकाईनोडर्मेटा (शूलचर्म) में तारामछली, समुद्री अरचिन, समुद्री खोरा की जातियाँ आती हैं जिनकी यहाँ पर 336 जातियाँ पायी जाती हैं। समुद्री खोरा की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनका यहाँ से निर्यात होता है और इनके सूखे हुए शरीर से सूप बनाया जाता है जोकि कई देशों में प्रचलित है।

कशेरुकी प्राणियों को मुख्यतः पाँच वर्गों में बाँटा गया है जोकि मछली, उभयचर, सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी प्राणी हैं। इन द्वीपों में मोठे पानी की मछलियों की संख्या कम है लेकिन समुद्री मछलियों की जातियों की संख्या 1000 से ऊपर है जोकि यहां की मुख्य संसाधन हैं। अण्डमान सागर में विस्तीर्ण और एकनिष्ठ आर्थिक क्षेत्र प्राप्त है, जहाँ मत्स्य उद्योग की सम्भावनायें अत्यधिक हैं। ऐसा अनुमान है कि इस क्षेत्र से प्रतिवर्ष 2,00,000 टन मछलियों की उपज प्राप्त हो सकती है। लेकिन इन द्वीपों में आधुनिक तरीके से मछली पकड़ने के साधन प्राप्त न होने के कारण उपलब्ध संपदा का उपयोग कम हो रहा है। उभयचर प्राणियों में मेंढक और टोड जातियाँ रखी गयी हैं जिनकी 18 जातियाँ इन द्वीपों में मिलती हैं, जिनमें से अण्डमान और निकोबार मेंढक मुख्य है। सरीसृप एक ऐसा वर्ग है जिसमें मगर, छिपकली, सर्प एवं कछुवे आदि आते हैं। इनकी इन द्वीपों में 90 जातियाँ मिलती हैं जिनमें से 23 स्थायिक हैं जोकि इन्हीं द्वीपों में प्राप्ती जाती हैं। इनमें से मुख्य अण्डमान हरी छिपकली, अण्डमान गार्डन लिजर्ड, वाटर मोनीटर, जालिकारूपी अजगर, अण्डमान क्रेट, नागराज, लवणजल मगर, सूँ कछुवे हैं। विभिन्न पक्षियों की लगभग 270 जातियाँ इन द्वीपों पर मिलती हैं जिनमें से 95 जातियाँ स्थानिक हैं। मुख्य पक्षी नारकोन्डम धनेश, अण्डमान डील, अस्त्रमिल, हस्मिल, निकोबार

मेगापोड, निकोबार कबूतर एवं अण्डमान क्रो-फीजेन्ट आदि हैं। यह द्वीप पक्षियों के लिए स्वर्ग है लेकिन पिछले कुछ वर्षों से निरन्तर मनुष्यों की आबादी में वृद्धि और वनोन्मूलन के कारण इन पक्षियों को वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अन्तर्गत रखा गया है जोकि इनके संरक्षण के लिए कारगर कदम है। स्तनपायी प्राणियों की 58 जातियाँ इन द्वीपों में पायी जाती हैं, जिनमें से 33 स्थानिक हैं। स्थानिक जातियों में अधिकतर चूहे एवं चमगादड़ आते हैं। बड़े मांसाहारी स्तनधारी प्राणियों का अभाव है। कुछ स्तनधारी जातियाँ जैसे हिरन, बिल्ली, हाथी, कुत्ते, बकरी, घोड़े, गाय, भैंस आदि को यहां पर दूसरे महाद्वीपों से लाया गया है। इनमें से हिरन, बिल्ली, हाथी, कुत्ते, बकरी वगैरह अब जंगली हो गये हैं। इन द्वीपों के मुख्य स्तनधारी प्राणी निकोबार शूक, अण्डमान चमगादड़, निकोबार चमगादड़, अण्डमान जंगली सुअर, केंकड़े खाने वाला बंदर, हस्तिमकर (इयूगॉग), डाल्फिन एवं डेल आदि हैं।

संरक्षण

विविधता एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण ये द्वीप प्रचुर वन सम्पदा एवं कई तरह की पारिस्थितिकी रखते हैं। हालांकि इन द्वीपों का 86 प्रतिशत क्षेत्र वनों से आच्छादित है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से इन द्वीपों में तेजी से अव्यवस्थित विकास, आबादी में वृद्धि, वनोन्मूलन के कारण वन्य एवं समुद्री प्राणियों की जनसंख्या का तीव्र ह्रास हो रहा है। इनके लिये अण्डमान-निकोबार प्रशासन ने एक जीव मंडल, आठ राष्ट्रीय उद्यान एवं 94 वन्य प्राणियों के अभयारण्य घोषित किये हैं जोकि 6% क्षेत्र पर फैले हुए हैं। यह आरक्षित क्षेत्र संख्या देश की किसी भी दूसरे प्रांत की अपेक्षा अधिक है लेकिन अधिकतर पशुविहार दूर-दराज के इलाकों पर हैं जिनका रख-रखाव सही ढंग से कर पाना मुश्किल होता है। भारतीय प्राणी सर्वेक्षण का पोर्ट ब्लेयर स्टेशन 1977 से इन द्वीपों के प्राणियों का सर्वेक्षण करता रहा है। इस दौरान इस विभाग ने इन द्वीपों के वन्य जीवों के संरक्षण के बारे में बहुत सी जानकारीयाँ प्राप्त की हैं जिन्हें अंग्रेजी एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में किताबों, लेख एवं छायाचित्र के रूप में प्रकाशित किया है। इस जानकारी ने न केवल अण्डमान-निकोबार प्रशासन को वन्य जीवों के संरक्षण में कोमल दृष्टि है बल्कि सभी जागरूक जनता में भी यहाँ तक की कोशिश की है। इन द्वीपों की वन संरक्षा की सुरक्षा एवं पारिस्थितिक संतुलन को बिगड़ने से रोकने के लिए सभी संबंधित विभागों की जिम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। इसके लिए अण्डमान-निकोबार प्रशासन, भारतीय वन विभाग और भारतीय प्राणी सर्वेक्षण को मिलकर काम करने की जरूरत है। इस संदर्भ में भारतीय वन सर्वेक्षण ने पहले से ही सभी राष्ट्रीय उद्यानों, पशुविहारों एवं जीव मंडलों का सर्वेक्षण शुरू कर दिया है जिससे कि जहाँ की वन्य विविधता को पता लगाकर उनके संरक्षण के लिए कोमल बनायी जा सकें।

तालिका-1. अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह में पाये जाने वाली प्राणी जातियों की संख्या

प्राणी वर्ग	विश्व	भारत	अण्डमान और निकोबार	भारत में प्रतिशत	स्थानिक संख्या	स्थानिक प्रतिशत
स्पंज	5100	519	70	13.48	5	7.14
प्रवाल	700	199	179	89.9	—	—
केंचुआ	4000	585	21	3.5	7	33.33
जोंक	500	59	10	16.9	—	—
पोलिकॉट	8000	428	184	42.9	—	—
एंरिकॉनिनिडा	120	21	14	66.6	—	—
गेस्ट्राट्राइका	2500	88	32	36.3	6	18.75
काइनोरिन्का	100	10	4	40	2	50.00
कस्टेशिया	24375	2970	607	20.4	56	9.22
मकड़ियाँ और बिच्छू	35810	1352	94	6.9	28	45.16
सेन्टीपीड	3000	100	17	17	—	—
मिलीपीड	7500	162	5	3.0	—	—
तितलियाँ	13000	1000	229	22.9	170	74.71
दीमक	2000	300	39	13	19	48.71
अन्य कीट	839052	50717	1447	2.85	265	18.3
मोलस्क (मृदुकवची)	स्थलीय	15000	110	11.5	75	68.18
	असमुद्री	8765	51	17.9	12	23.52
	समुद्री	56235	932	2.8	2	0.2
साइपनकुलिडा	202	38	25	65.7	—	—
एकाइनोडर्म (शूलचर्म)	6226	765	336	43.9	2	0.59
मछली	21723	2546	1184	46.5	—	—
उभयचर	5145	204	18	8.8	3	16.66
सरीसृप	5375	428	90	21.0	23	25.55
पक्षी	9026	1228	270	21.9	95	35.18
स्तनधारी	4252	372	58	15.5	33	56.89

आधार

लेखकगण भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण के भूतपूर्व निदेशक डा० ए० के० घोष एवं भूतपूर्व प्रभारी अधिकारी, डा० जी० सी० राव, अण्डमान-निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर को उनके द्वारा प्रोत्साहन एवं सुविधा प्रदान करने के लिए आभारी हैं।

संदर्भ

कमला देवी एवं बुलगानिन मित्रा 1990. दुर्लभ व संकटग्रस्त मैगापोड,
सागर-तरंग : 18-20

राजन, पी.टी. एवं कैलाश चन्द्र, 1993. काँटों का मुकुट तारामछली,
पर्यावरण 5(4) : 38-39

राजन, पी.टी. 1994 प्रवाल-समुद्री उपवन, पर्यावरण 6 (2) : 6-10

राव, जी. सी. एवं राधेश्याम शर्मा, 1989. अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूहों के वन्य
जीव, प्राणी जगत 2 : 107-125

राव, जी. सी. एवं राधेश्याम शर्मा, 1994. अण्डमान-निकोबार का संकटग्रस्त समुद्री जीव
समुद्री गाय, पर्यावरण 6 (3) : 12-14

संजीव कुमार एवं कैलाश चन्द्र, 1993. महादस्यु कैकड़ा, पर्यावरण, 5 (4) : 41

चन्द्र एवं राजन : अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों की प्राणी विविधता

प्लेट - 10



कच्छ वनस्पतियां (मैंग्रोव पारिस्थितिकी)



प्रवाल भित्ति (कोरल रीफ)



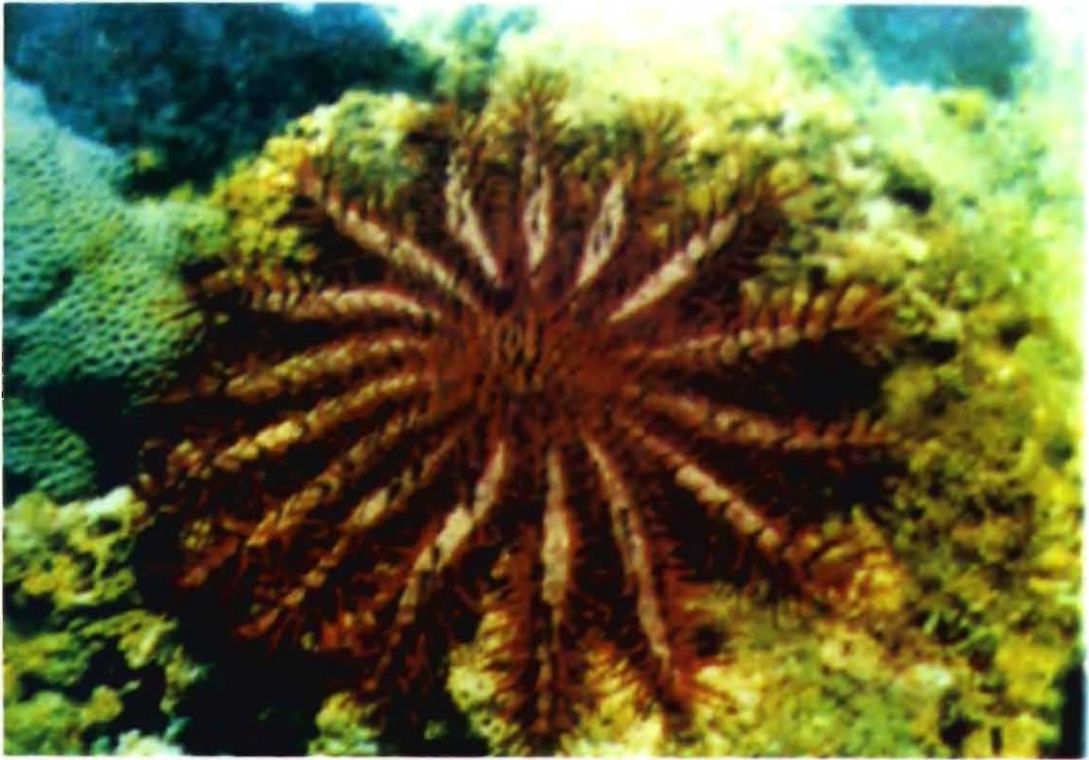
निकोबार मंगापोड (मंगापोडियम फ्रेन्सोनेट ग्यारा)



जालिकाय अजगर (पाइथान रेटिकुलेटस)

चन्द्र एवं राजन : अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों की प्राणी विविधता

प्लेट - 12



तारा मछली (एक्थेस्टेरा स्पीसी)



महादस्य कंकड़ा (बिरगस स्पेटी)

भारत की प्राणी विविधता

प्लेट - 13



क्लिपर तितली (पारथेनोस मिल्विया रोयस्टरफा)



पतंगा (एन्थिया अन्डमाना)

परिशिष्ट—1
भारत के राष्ट्रीय उद्यान

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह			
1.	मैरीन	अंडमान	281.50
2.	पिडिल बटन	..	0.64
3.	माउण्ट हरीयत	..	0.46
4.	नार्थ बटन	..	0.44
5.	सैडल पीक	..	32.54
6.	साउथ बटन	..	0.03
			<u>315.61</u>
आंध्र प्रदेश			
1.	श्री वेंकटेश्वर	चित्तूर और कृष्णा	352.62
			<u>352.62</u>
अरुणाचल प्रदेश			
1.	मौलिंग	पूर्व सिआंग	483.00
2.	नामदाफा (टाइगर रिजर्व)	तिरप	1985.23
			<u>2468.23</u>
असम			
1.	काजीरंगा	जोरहाट	430.00
2.	मानस (टाइगर रिजर्व)	कामरूप गोलपाड़ा	500.00
			<u>930.00</u>
बिहार			
1.	बेतला (टाइगर रिजर्व)	पलामू	231.67
2.	वाल्मीकि (टाइगर रिजर्व)	पश्चिम चम्पारण	335.65
			<u>567.32</u>
गोवा			
1.	भगवान महावीर	गोवा	107.00
			<u>107.00</u>
गुजरात			
1.	गीर	जूनागढ़	258.71

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र
2.	मैरीन	जामनगर	162.89
3.	वन्सदा	वलसाद	23.99
4.	वल्भदर	भावनगर	34.08
			<u>479.67</u>
हरियाणा			
1.	सुलतानपुर	गुड़गाँव	1.43
			<u>1.43</u>
हिमाचल प्रदेश			
1.	ग्रेट हिमालयन	कुल्लू	620.00
2.	पीन वैली	लाहौल स्पिति	675.00
			<u>1295.00</u>
जम्मू और कश्मीर			
1.	सिटी फारेस्ट	श्रीनगर	9.07
2.	डाचिगम	श्रीनगर	141.00
3.	हेमिस हाई अल्टीच्यूड	लेह	3350.00
4.	किश्तवर	किश्तवर	310.00
			<u>3810.07</u>
कर्नाटक			
1.	अंशी	उत्तर कनडा	250.00
2.	बंदिपुर (टाइगर रिजर्व)	मैसूर	874.20
3.	बानेरघट्टा	बंगलोर	104.27
4.	कुदरेमुख	दक्षिण कनडा और चिकमगलूर	600.32
5.	नागरहोल	मैसूर कोडागु	634.39
			<u>2472.18</u>
केरल			
1.	इराविकुलम	इदुक्की	97.00
2.	पेरियर (टाइगर रिजर्व)	इदुक्की	350.00
3.	साइलेंट वैली	पालघाट	89.52
			<u>536.52</u>
मध्य प्रदेश			
1.	बान्धवगढ़ (टाइगर रिजर्व)	शहडोल	105.40
2.	फीसिल	मंडला	0.27

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र
3.	इन्द्रावती (टाइगर रिजर्व)	बस्तर	1258.00
4.	कांगेर वैली	बस्तर	200.00
5.	कान्हा (टाइगर रिजर्व)	मंडला बालाघाट	940.00
6.	माधव	शिवपुरी	337.00
7.	पन्ना (टाइगर रिजर्व)	पन्ना छतरपुर	543.00
8.	पेंच	सेओनी	293.00
9.	संजय	सीधी, सरगुजा	1938.00
10.	सतपुड़ा	होशंगाबाद	524.00
11.	वन विहार	भोपाल	4.45
			<u>6143.12</u>
महाराष्ट्र			
1.	गुगामल (टाइगर रिजर्व)	अमरावती	361.80
2.	नवेगाँव	बन्दा	133.88
3.	पेंच	नागपुर	257.26
4.	संजय गांधी	बाम्बे धाने	86.96
5.	तदोबा (टाइगर रिजर्व)	चन्द्रपुर	116.55
			<u>956.45</u>
मनीपुर			
1.	केबुल लामजावो	इम्फाल विशनपुर	40.00
2.	सिरोही	ईस्ट डिस्ट्रिक्ट	41.80
			<u>81.80</u>
मेघालय			
1.	बालफाकरम	पश्चिमी गारो हिल	339.22
2.	नोक्रेक	पश्चिमी गारो हिल	47.48
			<u>386.70</u>
मिजोरम			
1.	ब्लू माउंटैन		50.00
2.	मुरलन		200.00
			<u>250.00</u>
नागालैंड			
1.	इंतानकी	कोहिमा	202.02
			<u>202.02</u>
उड़ीसा			
1.	उत्तर सिमलीपाल (टाइगर रिजर्व)	मयूरभंज	845.70
2.	भीतर कनिका	कटक	367.00
			<u>1212.70</u>

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र
राजस्थान			
1.	केवलादेव घाना	भरतपुर	28.73
2.	रणथम्बोर (टाइगर रिजर्व)	सवाई माधोपुर	392.00
3.	सरिस्का (टाइगर रिजर्व)	अलवर	273.00
4.	डेजर्ट नेशनल पार्क	जैसलमेर	3162.00
			<u>3856.53</u>
सिक्किम			
1.	खांग्वेंदजोंग	उत्तर सिक्किम	850.00
			<u>850.00</u>
तमिलनाडु			
1.	गुडुन्डी	मद्रास	2.82
2.	इंदिरा गांधी	कोयम्बतूर	117.11
3.	मैरीन	गल्फ ऑफ मन्नार	6.23
4.	मदुमलाई	नीलगिरि	103.24
5.	मुकरथी	नीलगिरि	78.46
			<u>307.86</u>
उत्तर प्रदेश			
1.	कार्बेट (टाइगर रिजर्व)	गढ़वाल	520.82
2.	दुधवा (टाइगर रिजर्व)	लखीमपुर खेरी	488.29
3.	गंगोत्री	उत्तर काशी	2390.00
4.	नंदा देवी	चमोली	630.33
5.	वैली आफ फ्लावर	चमोली	87.50
6.	राजाजी	देहरादून-हरिद्वार	820.03
7.	गोविन्द पशु विहार	उत्तर काशी	472.08
			<u>5409.05</u>
पश्चिम बंगाल			
1.	नेवोरा वैली	दार्जिलिंग	88.00
2.	सिंगलीला	दार्जिलिंग	78.00
3.	सुंदरवन (टाइगर रिजर्व)	24-परगना	1330.10
4.	बक्सा (टाइगर रिजर्व)	जलपाइगुड़ी	117.10
5.	गोरुमारा	जलपाइगुड़ी	79.45
			<u>1692.65</u>
कुल संख्या : 88		योग :	34684.53 वर्ग कि. मी.

परिशिष्ट—2
भारत के वन्यजीव अभयारण्य

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह			
1.	एरियल	अंडमान	0.55
2.	बम्बू	..	0.05
3.	बारिन	..	8.11
4.	बाटीमाल्ब	..	2.23
5.	बेले	..	0.08
6.	बेनेट	..	3.46
7.	बीघम	..	0.08
8.	ब्लीटर	..	0.26
9.	ब्लफ	..	1.14
10.	बांडोवॉइल	..	2.55
11.	ब्रश	..	0.23
12.	बुखानन	..	0.33
13.	चैनल	..	0.13
14.	चीक	..	0.54
15.	क्लेड	..	0.54
16.	कोन	..	0.65
17.	करलू	..	0.03
18.	करलू (बी.पी.)	..	0.16
19.	डीफेंस	..	10.49
20.	डोट	..	0.13
21.	डोट्टेल	..	0.13
22.	डंकन	..	0.43
23.	ईस्ट	..	6.11
24.	ईस्ट औफ ईंग्लिस	..	3.55
25.	एग	..	0.05
26.	इंटर्रेन्स	..	0.96
27.	एलाट	..	9.36
28.	गेंडर	..	0.05
29.	गृज	..	0.01
30.	गुर्जन	..	0.16
31.	हम्प	..	0.47

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
32.	इंटरव्यू	अंडमान	133.87
33.	जेम्स	"	2.10
34.	जंगल	"	0.52
35.	कांगटंग	"	0.57
36.	किड	"	8.00
37.	लैंडफाल	"	29.48
38.	लाद्श	"	0.95
39.	लोहाबैरक	"	106.00
40.	मैग्रोव	"	0.39
41.	मास्क	"	0.78
42.	मायो	"	0.10
43.	मेगापोड	"	0.12
44.	मोंटगोमरी	"	0.21
45.	नरकन्डम	"	6.81
46.	नार्थ	"	0.49
47.	नार्थ ब्रदर	"	0.75
48.	नार्थ रीफ	"	3.48
49.	ओलीवर	"	0.16
50.	ओरकीड	"	2.12
51.	ओस्टर	"	0.21
52.	ओस्टर	"	0.08
53.	आक्स	"	0.13
54.	पॉजेट	"	7.36
55.	पार्किंसन	"	0.34
56.	पैसेज	"	0.62
57.	पैट्रीक	"	0.13
58.	पीकाक	"	0.62
59.	पीटमैन	"	1.37
60.	प्वाईट	"	3.07
61.	पोटनमा	"	0.16
62.	रेंजर	"	4.26
63.	रीफ	"	1.74
64.	रोपर	"	1.46
65.	रोज	"	0.01
66.	रो	"	0.01
67.	संडी	"	1.58

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
68.	सी सरपेंट	अंडमान	0.78
69.	शार्क	"	0.60
70.	शीर्ष	"	7.85
71.	सर ह्यूज रोड	"	1.06
72.	सिस्टर	"	0.36
73.	छेक	"	0.03
74.	छेक	"	0.73
75.	साठथ रीफ	"	1.17
76.	साठथ सेंटीनल	"	1.61
77.	साठथ ब्रदर	"	1.24
78.	स्पाइक	"	11.70
79.	स्पाइक	"	0.42
80.	स्टोट	"	0.44
81.	सुरत	"	0.31
82.	स्वाम्य	"	4.09
83.	टेबल (डेलग्रानो)	"	2.29
84.	टेबल (इक्सेलजीबोर)	"	1.69
85.	टेलेबैचा	"	3.21
86.	टेम्पुल	"	1.04
87.	टीलेनछांग	"	16.83
88.	ट्री	"	0.03
89.	ट्रील्बी	"	0.96
90.	टर्फ	"	0.29
91.	टरटल	"	0.39
92.	वेस्ट	"	6.40
93.	वार्फ	"	0.11
94.	व्हाइट क्लीफ	"	0.47
			437.16

आंध्र प्रदेश

1.	कोरींगा	पूर्व गोदावरी	235.70
2.	इतुरनगरम	वारंगल	803.00
3.	कौंदीन्या	चीत्तूर	357.60
4.	कॉवल	अदीलाबाद	893.00
5.	किन्नरसानी	छाम्पाम	655.41
6.	कृष्णा	कृष्णा, गुंटूर	194.81

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
7.	कोल्लेरू	गुंटूर, पश्चिम गोदावरी	673.00
8.	लंजामदुगु (सीवराम)	अदीलाबाद (करीमनगर)	36.29
9.	मंजीरा	मेडक	20.00
10.	नागार्जुनसागर (टाइगर रिजर्व)	गुंटूर, प्रकाशम, करनूल, महबूबनगर, नालगोडा	3568.00
11.	नेलापत्तु	नेल्लोर	4.404
12.	पखाल	वारंगल	860.00
13.	पापीकोंडा	पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी, खम्माम	591.00
14.	पोचरम	मेडक, निजामाबाद	130.00
15.	प्राणाहिता	अदीलाबाद	136.02
16.	पुलीकट	नेल्लोर	500.00
17.	रोल्लापड्डु	करनूल	614.00
18.	श्री वेंकटेश्वर	चित्तूर, कुड्डपा	153.94
19.	श्री लंकामालेश्वर	कुड्डपा	464.42
20.	गुंडला ब्रह्मेश्वरम	करनूल, प्रकाशम	1194.00
			<u>12084.594</u>
अरुणाचल प्रदेश			
1.	ईगल नेस्ट	पूर्व कमांग	217.00
2.	ईटानगर	पापम पारे	140.30
3.	कमलांग	लोहित	783.00
4.	लाली (डेरिंग)	पूर्व सियांग	190.00
5.	मेही	दीवांग वैली लोहित	281.50
6.	पाखुई	पूर्व कमांग	891.95
7.	सेसा ओरकीड	पश्चिम कमांग	100.00
8.	दीवांग	दीवांग वैली	4149.00
9.	कापे	पश्चिम सियांग	55.00
			<u>6777.75</u>
असम			
1.	बरनाडी	कामरूप	26.00
2.	डिब्रु सैखोवा	कामरूप	640.00
3.	डीपर बील	कामरूप	4.14
4.	गरमपानी	शिवसागर	6.00

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
5.	लावोखोवा	नवगाँव	70.00
6.	मनास (टाइगर रिजर्व)	कामरूप, गोलपाड़ा	391.00
7.	नामेरी	सोनीतपुर	130.00
8.	ओरांग	दरांग 75.60	
9.	पाबीटोरा	नवगाँव	38.84
			<u>1381.58</u>
बिहार			
1.	भीमबाँध	मुँगेर 681.99	
2.	बेतला	पलामू	747.60
3.	डलमा	राँची 193.22	
4.	गीतम बुद्ध	गया	259.00
5.	हजारीबाग	हजारीबाग	186.25
6.	कैमुर	रोहतास	1342.00
7.	कोडरमा	हजारीबाग, गया	177.95
8.	काबर लेक	बेगुसराय	63.11
9.	लवलांग	हजारीबाग	207.00
10.	महुआ डाँट	पलामू	63.25
11.	नागी हैम	मुँगेर 1.91	
12.	नाकती हैम	मुँगेर 3.32	
13.	पारसनाथ	हजारीबाग	49.33
14.	राजगीर	नालन्दा	35.84
15.	तोपचांची	धनबाद	8.75
16.	ठदयपुर	चम्पारन	8.74
17.	वाल्मीकि (टाइगर रिजर्व)	चम्पारन	544.54
18.	विक्रमशीला (गंगटोक डालफोन)	भागलपुर	50.00
19.	पन्त अरन्य	नालन्दा	
			<u>4624.30</u>
चंडीगढ़			
1.	सुखना लेक	चंडीगढ़	25.42
			<u>25.42</u>
दमन और दिउ			
1.	फूडम	दिउ	2.18
			<u>2.18</u>
दिल्ली			
1.	इंदिरा प्रियदर्शिनी (असोला)	दिल्ली	13.20
			<u>13.20</u>

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
गोवा			
1.	भगवान महावीर	गोवा	240.00
2.	बोंदला	गोवा	8.00
3.	कोटीगाव	गोवा	85.65
4.	चोराव (डा० सलीम अली)	गोवा	1.78
			<u>335.43</u>
गुजरात			
1.	बलराम अम्बाजी	बनासकंथा	542.081
2.	बर्दा	जूनागढ़, जामनगर	192.31
3.	धूमखाल (शूलपानेश्वर)	राजपीपला, भारूच	607.70
4.	गागा (जीआईबी)	जामनगर	3.33
5.	गीर	जूनागढ़	1153.42
6.	हींगोलगढ़	राजकोट	6.54
7.	जम्बूघोड़ा	पंचमहल	130.38
8.	जेसोर	बनासकंथा	180.66
9.	कच्छ डेजर्ट	कच्छ	7506.22
10.	खिजडिया	जामनगर	6.05
11.	मैरीन	जामनगर	295.03
12.	नलसरोवर	अहमदाबाद, सुरेन्द्रनगर	120.82
13.	नरायन सरोवर	कच्छ	765.79
14.	पनिया	अमरेली	39.63
15.	पोरबन्दर	जूनागढ़	0.09
16.	रामपुरा	राजकोट	15.01
17.	रतनमहल	पंचमहल	55.65
18.	थोल	मेहसना	6.99
19.	वाइल्ड एस	सुरेन्द्रनगर, बनासकंथा, राजकोट, मेहसना	4953.70
20.	पूर्णा	डांग्स	160.84
21.	कच्छ (बस्टर्ड)	कच्छ	2.03
			<u>16744.27</u>
हरियाणा			
1.	भीडवास	रोहतक	4.06
2.	छिलछिला	कुरुक्षेत्र	0.28
3.	नहर	रोहतक	2.09

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
4.	वीर शिकारगढ़	अम्बाला	7.58
5.	चौटाला	सिरसा	113.96
6.	सरस्वती	कुरुक्षेत्र	49.98
7.	वीर बरबन	जौंद	4.14
8.	कालेसर		46.28
9.	खपरवास		0.81
			<u>229.18</u>

हिमाचल प्रदेश

1.	बंदली	मंडी	41.32
2.	चैल	सोलन	108.54
3.	चुरभर	सिरमौर	56.15
4.	दरांग्याटी I और II	शिमला	167.40
5.	गमगुल सिया-बेही	चम्बा	108.85
6.	गोविन्दसागर	बिलासपुर	100.34
7.	कालाटोप और खज्जर	चम्बा	20.26
8.	कनवर	कुल्लू	60.70
9.	खोखन	कुल्लू	14.05
10.	किआस	कुल्लू	14.19
11.	कुगती	चम्बा	378.86
12.	लिप्सा अश्रांग	किन्नीर	30.89
13.	माजाताल हसरंग	सोलन	39.38
14.	मनाली	कुल्लू	31.80
15.	नारगु	मंडी	278.37
16.	नैनादेवी	बिलासपुर	122.68
17.	पोंग डैम लेक	कांगरा	307.29
18.	रक्षम चितकुल (संगला)	किन्नीर	650.00
19.	रेणुका	सिरमौर	4.02
20.	रूपीभाया	किन्नीर	269.14
21.	सचु तुअन नाला	चम्बा	102.95
22.	शिकारी देवी	मंडी	72.00
23.	शील्ली	सोलन	2.13
24.	शिमला वाटर कैचमेंट एरिया	शिमला	10.25
25.	सिम्बलबारा	सिरमौर	19.03
26.	तलरा	शिमला	40.49
27.	तिरथन	कुल्लू	61.12
28.	टुंडा	चम्बा	64.22
29.	किब्बर	लाहौल-स्पीति	1400.50
			<u>4576.92</u>

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
जम्मू और कश्मीर			
1.	बलताल	श्रीनगर	203.00
2.	चंगथंग	लेह	4000.00
3.	गुलमर्ग	बारामूला	186.00
4.	हीरापोरा	श्रीनगर	110.00
5.	होकरसार	श्रीनगर	10.00
6.	जसरोटा	जम्मू	4.00
7.	कराकोरम	कारगिल	5000.00
8.	लचीपोरा	बारामूला	80.00
9.	लीम्बर	बारामूला	26.00
10.	नन्दिनी	जम्मू	33.34
11.	ओवेरा	श्रीनगर	32.00
12.	ओवेरा-आरू	श्रीनगर	425.00
13.	रामनगर राखा	जम्मू	12.20
14.	सुरीनसर मंसर	जम्मू	39.13
15.	त्रिकूटा	जम्मू	3.00
16.	थाजवास		
			10163.67
कर्नाटक			
1.	अदिचुनचुनागिरी	मंडी	0.84
2.	अरवीथीतू	मैसूर	13.50
3.	भद्रा	शिमोगा और चिकमगलूर	492.46
4.	बिलीगिरी रंगास्वामी टेम्पुल	मैसूर	539.52
5.	ब्रह्मगिरि	मंडीकेरी	181.29
6.	कावेरी	मैसूर, मंदया, बंगलोर	510.51
7.	डंडेली	उत्तर कन्नडा	834.16
8.	घाटप्रभा	बेलगाम	29.78
9.	गुदामी	शिमोगा	0.73
10.	मेलकोट टेम्पुल	दक्षिण कन्नडा	49.82
11.	मुकम्बिका	मांड्या	247.00
12.	नुगू	मैसूर	30.32
13.	पुष्पागिरी	कोडागू	102.92
14.	रंगनथीतू	मैसूर	0.67
15.	रानेबेनूर	धारवाड	119.00

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
16.	शेट्टीहाली	शिमोगा	395.60
17.	शरवथी वैली	शिमोगा	431.23
18.	सोमेश्वरा	दक्षिण कन्नड	88.40
19.	तालकावेरी	कोडागू	105.59
20.	दोरजी बीयर सेन्चुअरी	बेलरी	55.873
			<u>4229.213</u>

केरल

1.	अरलम	कन्नानूर	55.00
2.	चिम्मोनी	त्रिचुर	100.00
3.	चिन्नर	इदुक्की	90.44
4.	इदुक्की	इदुक्की	77.00
5.	नेयर	त्रिवेन्द्रम	128.00
6.	पराम्प्रीकुलम	पालघाट	285.00
7.	पीची भाजानी	त्रिचुर	125.00
8.	पेप्परा	त्रिवेन्द्रम	53.00
9.	पेरीयर (टाइगर रिजर्व)	इदुक्की	427.00
10.	शेनदुरनी	त्रिवेन्द्रम	100.32
11.	थालेकड	इदुक्की	25.16
12.	वायनाड	कालीकट और वायनद	344.44
			<u>1810.36</u>

महाराष्ट्र

1.	अंधेरी	चन्द्रपुर	509.27
2.	अनेरडैम	धूले	82.94
3.	भीमशंकर	पुणे, धाने	130.78
4.	बोर	वरुधा	61.10
5.	चंदोली	सागली सतारा	
		रत्नागिरि, कोल्हापूर	308.97
6.	चपराला	गदचिरोली	134.78
7.	गौटाला आठटरामघाट	औरंगाबाद, जलगाव	260.61
8.	ग्रेट इंडियन बस्टर्ड (नानज)	शोलापूर, अहमदनगर	8496.44
9.	जायकवाडी	औरंगाबाद	341.05
10.	कल्सुबाई हरीशचन्द्रगढ़	अहमदनगर	361.81
11.	करनाला	राजगढ़	4.48
12.	कटपुर्णा	अकोला	52.79
13.	कोयना	सतारा	423.55
14.	मालवन (मैरीन)	सिंधुदुर्ग	29.12

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
15.	मेलघाट (टाइगर रिजर्व)	अमरावती	1597.23
16.	नगजीरा	वान्द्रा	152.81
17.	नन्दूर मदमेश्वर	नासिक	100.12
18.	पाइनगंगा	यावतमल, नंदाद	324.62
19.	फंसाद	रायगढ़	69.79
20.	राधानगरी	कोल्हापुर	371.98
21.	देउलगाँव रेहकारी	अहमदनगर	2.17
22.	सागरेश्वर	सांगली	10.87
23.	तन्सा	थाने	304.81
24.	यावल	जलगाँव	177.52
			14309.51
मध्य प्रदेश			
1.	अचनाकमार	विलासपुर	551.55
2.	बदलखोल	रायगढ़	104.55
3.	बागदारा	सिधी	478.90
4.	बर्नवपारा	रायपुर	244.66
5.	भाईरामगढ़	बस्तर	139.00
6.	बोरी	होसंगाबाद	518.00
7.	गांधी सागर	मंदसौर	368.62
8.	घाटीगाँव (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड)	ग्वालियर	512.00
9.	गोमर्दा	रायगढ़	277.82
10.	करेरा (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड)	शिवपुरी	202.21
11.	केन (घड़ियाल)	पबन्ना छत्तरपुर	45.00
12.	खेओनी	देवास	132.70
13.	नरसिंगगढ़	रायगढ़	59.19
14.	नेशनल चम्बल	मुरैना	320.00
15.	नेउरादेही	सागर, दमोह, नरसिंगपुर	1034.52
16.	पचमढ़ी	होसंगाबाद	461.85
17.	पामेद	बस्तर	262.00
18.	पनपथ	शहडोल	245.84
19.	पालपुर (कुनो)	मुरैना	345.00
20.	पेंच	सेओनी, छिंदवाड़ा	449.39
21.	फेना	मांडला	110.74
22.	रातपानी	रायसेन	686.79
23.	रालामन्दडल	इंदौर	234.55

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
24.	सैलाना	रतलाम	12.96
25.	संजय (दुबरी)	सिधी	364.59
26.	सरदारपुर	धार	348.12
27.	सेमरसोत	सरगुजा	430.36
28.	सिंधोरी	रायसेन	287.91
29.	सीतानदी	रायपुर	553.36
30.	सोन (घड़ियाल)	सिंधो, सतना, राहडोल	209.00
31.	तामोर पिंगला	सरगुजा	608.52
32.	उदंती (वाइल्ड बफेलो)	रायपुर	247.59
			<u>10847.29</u>
मनीपुर			
1.	यागोपोक्मी लोकवाओ	चंडी	184.85
			<u>184.85</u>
मेघालय			
1.	बाघमारा (पिचर प्लांट)	पश्चिम गारो पहाड़ी	0.27
2.	नांगखाइलम	पूर्व खासी पहाड़ी	29.00
3.	सीजू	पश्चिम गारो पहाड़ी	5.18
			<u>34.207</u>
मिजोरम			
1.	दम्पा (टाइगर रिजर्व)	आइजॉल	500.00
2.	नैंगपूई	नैंगपूई	170.00
3.	खुवांगलंग	चेनजॉल	50.00
			<u>720.00</u>
नागालैंड			
1.	फकीम	तेनसांग	6.41
2.	पूलीबाज	कोहीमा	23.24
3.	रंगपाहड़	कोहीमा	4.70
			<u>34.35</u>
उड़ीसा			
1.	बालूखंड-कोनार्क	पुरी	71.72
2.	भीतरकानिका	चंदवाली	170.00
3.	चंदका-दम्पारा	पुरी	175.79
4.	चिलका	पुरी और गंजाम	15.53
5.	देवरीगढ़	संबलपुर	346.91

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
6.	हदगढ़	केंजार मयूरभंज	191.60
7.	खलसूनी	संबलपुर	116.00
8.	कोटगढ़	फूलबानी	399.00
9.	कुलदीहा	बालासोर, मयूरभंज	272.75
10.	लखारी वैली	गंजाम	185.87
11.	महानदी बैसीपल्ली	पुरी	168.35
12.	नन्दनकानन	पुरी	14.26
13.	सतकोसिया गोर्ज	धेनकानाल, पुरी	795.52
		कटक, मयूरभंज	
14.	सिम्लीपाल	मयूरभंज	2200.00
15.	सूनाबेड़ा	कालाहांडी	600.00
16.	उषाकोटी (बद्रमा)	संबलपुर	304.03
17.	कर्लापट	कालाहांडी	147.66
			6175.49
पंजाब			
1.	अबोहर	फिरोजपुर	186.00
2.	बीर बुनेरहेरी	पटियाला	6.50
3.	बीर गुरदीआलपुरा	पटियाला	6.10
4.	बीर मोतीबाग	पटियाला	6.40
5.	हरीके लेक	फिरोजपुर	86.00
6.	तखनी रहमपुर	होशियारपुर	3.82
			294.82
राजस्थान			
1.	बंश्वा बरेंथा	भरतपुर	192.76
2.	बस्सी	चित्तोड़गढ़	152.90
3.	भेन्सरोदगढ़	चित्तोड़गढ़	229.14
4.	दर्रा	कोटा	265.80
5.	जयसमन्द	राजसमन्द	52.00
6.	जमवा रामगढ़	जयपुर	300.00
7.	जवाहर सागर	कोटा	100.00
8.	केलादेवी	सवाई माधोपुर	673.38
9.	कुम्भलगढ़	उदयपुर	578.25
10.	माउण्ट आबू	सिरोही	288.84
11.	नाहरगढ़	जयपुर	50.00
12.	नेशनल चम्बल	कोटा	280.00

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
13.	फुलवारी-की-नाल	उदयपुर, पाली	511.41
14.	रामगढ़ विसधारी	बंटी	307.00
15.	सरीस्का (टाइगर रिजर्व)	अलवर	492.00
16.	सज्जनगढ़	उदयपुर	5.19
17.	शेरगढ़	कोटा	98.71
18.	सीतामाता	चित्तोड़गढ़	422.94
19.	सवाई मानसिंह	सवाई माधोपुर	127.60
20.	ताल छप्पर	चुरू	7.90
21.	तोदगढ़ रावली	अजमेर	495.27
22.	वन विहार	धोलपुर	59.93
			<u>5694.02</u>
सिक्किम			
1.	फम्बुंग एलएचओ	पूर्व सिक्किम	51.76
2.	किऑंगनोसला आल्पाइन	रोंगनेक चू	31.00
3.	मेनम	दक्षिण सिक्किम	35.34
4.	शोंगवा (रहोडोडेन्डन)	यूमथांग	43.00
			<u>161.10</u>
तमिलनाडु			
1.	अन्नामलाई (इंदिरा गांधी)	कोयम्बटूर	841.49
2.	कालाकड (टाइगर रिजर्व)	तिरुनेलवेली	223.58
3.	मुदुमलाई	नीलगिरी	217.76
4.	मुंदन धुराई (टाइगर रिजर्व)	तिरुनेलवेली	567.38
5.	प्वाइंट कालीमेर	तंजावूर	17.26
6.	पुलीकट	चेंगलपट्टूर	153.67
7.	वेदानथंगल	चेंगलपट्टूर	0.30
8.	वेट्टनगुड़ीपट्टी/चित्रनगुड़ी/ कांजीरनकुलम	रामनाथपुरम	1.90
9.	कारीकीली	चेंगाई अन्ना	0.61
10.	श्रीविल्लीपुथुर (ग्रीजल्ड स्क्वरल)	कामराज	485.20
11.	उदयमातईपुरम	तंजीर	0.45
12.	वालंदु	चिदम्बरम	16.41
13.	वदुऊर	कूद-ए-मिलाथ	1.28
			<u>2527.29</u>

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
त्रिपुरा			
1.	गुमती	दक्षिण त्रिपुरा	389.54
2.	त्रिष्णा	दक्षिण त्रिपुरा	194.70
3.	सेपाहिजोला	पश्चिम त्रिपुरा	18.53
4.	रोआ	उत्तर त्रिपुरा	0.85
			603.62
उत्तर प्रदेश			
1.	अस्कॉट	पिथौरागढ़	600.00
2.	बखीरा	बस्ती	28.94
3.	बिन्सर	अलमोड़ा	45.59
4.	चन्द्र प्रभा	वाराणसी	78.00
5.	सोहागी बरवा	महाराजगंज	428.21
6.	गोविन्द पशु विहार	उत्तरकाशी	953.12
7.	हस्तिनापुर	मेरठ, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद	2073.00
8.	कैमूर	मिर्जापुर	500.75
9.	कतरनीघाट	बहराईच	400.00
10.	केदारनाथ	चमोली	957.00
11.	किशनपुर	लखीमपुर खेरी	227.12
12.	लख बहोसी	फर्रुखाबाद	80.23
13.	महाधीर स्वामी	ललितपुर	5.00
14.	नेशनल चम्बल	आगरा, इटावा	633.00
15.	नवाबगंज	उन्नाव	2.24
16.	रानीपुर	बांदा	230.00
17.	समसतपुर	रायबरेली	7.99
18.	सोहेलवा	गोरखपुर	452.57
19.	सोना नदी	पौड़ी गढ़वाल	301.76
20.	टर्टल	वाराणसी	7.00
21.	सांदी	हरदोई	3.00
22.	ओखला	गाजियाबाद	4.00
23.	सामाने	मैनपुरी	5.00
24.	पार्वतीअर्ज	गोंडा	11.00
25.	विजय सागर	हमीरपुर	3.90

क्रम सं.	नाम	जिला	क्षेत्र (वर्ग किलोमीटर)
26.	पटना	एटा	1.00
27.	सुर सरोवर	आगरा	4.00
28.	सुरहा ताल	बलिया	34.00
			<u>8078.52</u>
पश्चिम बंगाल			
1.	बल्लभपुर	बीरभूम	2.00
2.	बेतुआडहरी	नदिया	1.21
3.	बक्स (टाइगर रिजर्व)	जलपाईगुड़ी	251.89
4.	चप्रामारी	जलपाईगुड़ी	9.60
5.	गोकुमारा	जलपाईगुड़ी	8.73
6.	हालीडे	24-परगना	5.95
7.	जल्दापाड़ा	जलपाईगुड़ी	216.51
8.	जोर पोखरी	दार्जिलिंग	0.04
9.	लोधीअन आइलैंड	24-परगना	38.00
10.	महानंदा	दार्जिलिंग	127.22
11.	नरेन्द्रपुर	24-परगना	0.10
12.	परमादन (विभूति भूषण)	नदिया, 24-परगना	0.60
13.	रायगंज	पश्चिम दीनाजपुर	1.30
14.	रमनाबगान	बर्दवान	0.14
15.	सजनाखाली	24-परगना	362.40
16.	सेंचल	दार्जिलिंग	38.60
			<u>1064.29</u>
कुल संख्या : 441		योग— 114164.84 वर्ग कि.मी.	

परिशिष्ट-3

भारतीय प्राणि-सर्वेक्षण कार्यालयों के पते तथा फोन नम्बर

	फोन नं०
1. मुख्यालय	478-6892
	478-3925
(i) प्राणि-विज्ञान भवन, एम-ब्लाक, न्यू-अलीपुर, कलकत्ता-700 053	478-3383 478-6893
(ii) निजाम पैलेस, दूसरी बहुमंजिली आफिस बिल्डिंग 13-14 मंजिल, 234/4 आचार्य जे. सी. बोस रोड कलकत्ता-700 020	247-8219 247-5463
(iii) इन्डियन म्यूजियम, फायर प्रूफ स्प्रिट बिल्डिंग 27 जवाहर लाल नेहरू रोड कलकत्ता-700 013	249-9908 249-9909 249-9910
2. उत्तर क्षेत्रीय केन्द्र 218, कौलागढ़ रोड देहरादून-248195 (उत्तर प्रदेश)	758362 754939 756349
3. पूर्व क्षेत्रीय केन्द्र रीसा कालोनी, फ्रूट गार्डन, शिलोंग-793003 (मेघालय)	226495 223638
4. पश्चिम क्षेत्रीय केन्द्र 1182/2, फर्गुसन कालेज रोड पुणे-411 005 (महाराष्ट्र)	325123 325018 345213
5. दक्षिण क्षेत्रीय केन्द्र 100, सेंथोम हाई रोड मद्रास-600 028 (तमिलनाडु)	4942898 4942892 4943255 4943378
6. मध्य क्षेत्रीय केन्द्र 424, न्यू आदर्श कालोनी कमला नेहरु नगर जबलपुर-482002 (मध्य प्रदेश)	315592

	फोन नं०
7. मरुभूमि क्षेत्रीय केन्द्र एम. के. मंजिल 107, कमला नेहरू नगर चोपासनी रोड जोधपुर-342 009 (राजस्थान)	39152 639465
8. गंगा मैदानी क्षेत्रीय केन्द्र हैन्डलूम भवन, 4 मंजिल राजेन्द्र नगर, पटना-800 016 (बिहार)	650686
9. उच्च क्षेत्रीय प्राणिशास्त्र केन्द्र, ज्ञानदेव निवास, हास्पीटल रोड सोलन-173212 (हिमाचल प्रदेश)	21060 23773
10. समुद्री जीवविज्ञान केन्द्र 100, सेंथोम हाई रोड मद्रास-600 028 (तमिलनाडु)	4942680 4943191 4942101
11. ताजा जल जीवविज्ञान केन्द्र 11-1300/बी, अशोक नगर हैदराबाद-500020 (आन्ध्र प्रदेश)	634662
12. अन्डमान एवं निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र मिडिल पोइन्ट पोर्ट ब्लेयर-744101 (अन्डमान)	21148 30115
13. पश्चिमी घाट क्षेत्रीय केन्द्र कमला बिल्डिंग, पहली मंजिल एली हाल रोड कोझीकोड-673002 (केरल)	63928
14. सागर संगम जीवविज्ञान केन्द्र हिल पटना बरहामपुर-760005, जिला गंजम (उड़ीसा)	3094
15. अरुणाचल प्रदेश क्षेत्रीय केन्द्र 158, पी सेक्टर, ईटानगर-791111 (अरुणाचल प्रदेश)	33754 22401
16. सुन्दरवन क्षेत्रीय केन्द्र पोर्ट केनिंग-743 329, जिला दक्षिण 24-परगना (पश्चिम बंगाल)	5211
17. समुद्री मत्स्यधर एवं अनुसंधान केन्द्र दीघा-721428, जिला मिदनापुर (पश्चिम बंगाल)	66310 66311 66312

जे. आर. बी. अल्फ्रेड

तमिलनाडु में जन्मे डा० अल्फ्रेड की शिक्षा मदुराई कामराज विश्वविद्यालय में हुई है। आप पी. एच. डी. की उपाधि पाने के उपरान्त नीर्थ ईस्ट हिल यूनीवर्सिटी, शिलांग में प्राध्यापक रहे तथा 1983 से भारतीय प्राणि सर्वेक्षण में आए। आपके विशेष अध्ययन के क्षेत्रों में पारिस्थितिकी, जलीय वातावरण, तथा भारत के वनमानुष (हुलक) हैं। आपने यू. एस. ए., कनाडा, सिंगापुर, मालदीव आदि कई देशों का भ्रमण किया है। वर्तमान में आप भारतीय प्राणि सर्वेक्षण के निदेशक पद पर हैं।

राजेन्द्र कुमार वाष्णोय

अलीगढ़ (उ. प्र.) में जन्मे राजेन्द्र कुमार वाष्णोय ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा पटना विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है। आपके अध्ययन का क्षेत्र भारतीय कीड़े हैं, जिनमें लाख के कीड़ों, स्केल तथा मिलीबग, और भारतीय उपमहाद्वीप की तितलियों का विशेष अध्ययन सम्मिलित है। लगभग 125 शोध पत्र प्रकाशित किये हैं, जिनमें कुछ पुस्तकें हैं। पी. एच. डी. तथा डी. एस. सी. की डिग्री ली है। हंगरी तथा मालदीव का भ्रमण किया है। 1997 में भारतीय प्राणि सर्वेक्षण के अतिरिक्त निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं।

